संक्षिप्त बाल-हितोपदेश

की

सरलार्थ दीपिका

जिस में

गद्य-पद्य भाग का सरलार्थ, कठिन शब्दार्थ, सन्धियाँ, समास,
कथा-संक्षेप, लोकोक्तियों का सरलार्थ तथा प्रत्येक भाग
के आदर्शपत्र यूनिवर्सिटी के प्रश्नों के
अनुसार दिये गये हैं।

SRI RAMAKRISHNA ASHRAMA
LIBRARY SRINAGAR.
Accession No. 4739
Date

लेखक

श्री धर्मपाल विद्यालङ्कार
एम. ए., साहित्यरत्न

श्री ऐम. ऐल. मैत्रेय,
प्रभाकर

प्रकाशक

भावां दी हट्टी

पुस्तकों वाले, माई हीरां गेट, जालन्धर शहर।

मूल्य २॥)

96/ cN-W
S' I RAMAKRISHNA ASHRAM
LIBRARY SRINAGAR.
Accession No- 4739
Date

दो शब्द

संक्षिप्त बाल हिदोपदेश के कई एक नोटों के होते हुए भी इस के लिखने की क्यों आवश्यकता पड़ी, यह एक स्वाभाविक प्रश्न है। प्रत्येक लेखक अपने २ नोट को उपयोगी तथा अत्युत्तमबतलाएगा। परन्तु इस की उपयोगिता इसे आद्योपान्त पढ़ने से स्वयं विदित हो जाएगी। प्रायः लेखक कुछ कठिन शब्दार्थ देकर सरलार्थ दे देते हैं। उस में भी शब्दार्थ की ओर ध्यान न देते हुए भावार्थ ही देते हैं, जिस से छात्रों को घोटा लगाने की आदत पड़ जाती है। हम ने इसे दूर करने के लिए सरलार्थ का भाग अलग रख कर इसके दूसरे भाग में प्रत्येक पृष्ठ के कठिन शब्दार्थ, सन्धियों तथा समासों को अलग दिया है। छात्र यदि थोड़ा सा भी यत्न करें तो इसकी सहायता से सरलार्थ स्वयं कर सकेंगे। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ की कठिनता को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है।

यूनिवर्सिटी के प्रश्न पत्रों में कथा लेख तथा पूर्वापर प्रसङ्ग देते हुए कुछ पद्यांशों का भावार्थ लिखने के सम्बन्ध में भी प्रश्न आते हैं, इसके लिए अन्त में हम ने आदर्श रूप से मित्रलाभ तथा सुहृद्भेद की कथाऐं दे दी हैं। आगे छात्र स्वयं इसी क्रम का अनुसरन करें। प्रत्येक भाग की सूक्तियों का सरलार्थ भी अन्त में दे दिया है ताकि छात्र इन के पूर्वापर सम्बन्ध जानने का अभ्यास करें। इस तरह प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी बनाते हुए अन्त में यूनिवर्सिटी के प्रश्नपत्रों के अनुसार प्रत्येक भाग का आदर्श प्रश्नपत्र भी साथ दिया गया है जिस से परीक्षा में आने वाले प्रश्नों के क्रम का अभ्यास हो जाए। परीक्षा में शतप्रतिशत् प्रश्न ऐसे ही आते हैं। पूर्ण सम्भावना है कि इन्हें में से बहुत सा भाग आ जाए। हमने इनमें आवश्यक भाग रखने का यत्न किया है।

यदि छात्र इसे अपनाएँगे तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

लेखकः—

विषय-सूची

संख्या विषय पृष्ठ संख्या

१. सरल अर्थ १

२. कठिन शब्दार्थ १५९

३. सन्धि विच्छेद १८५

४. समास २०७

५. लोकोक्तियों का सरलार्थ २२४

६. कथा २३०

७. आदर्श टैस्ट पेपर २३५

SRI RAMAKRISHNA ASHRAM
LIBRARY SRINAGAR.
Accession No- 4739
Date

२७. ७. ५६

बाल-हितोपदेश

पृष्ठ १—सिद्धिसाध्ये—

(१) उस शिव भगवान के प्रसाद से सज्जन पुरुषों को अपनी इच्छित वस्तु में सिद्धि प्राप्त हो, जिस के सिर पर गंगा की झाग की रेखा के समान चन्द्रमा की कला विराजमान है।

गंगा के तट पर पाटलि पुत्र नाम का नगर था। वहाँ पर स्वामी में होने वाले सब गुणों से युक्त सुदर्शन नाम का राजा था। उस राजा ने किसी से पढ़े जा रहे दो श्लोक सुने।

अनेक संशयोच्छेदि—

(१) अनेक संशयों का नाश करने वाला और परोक्ष (आँखों से परे) के अर्थों को जताने वाला शास्त्र ही सब का नेत्र है। जिस के पास (शास्त्र रूपी आँख) नहीं है। वह अन्धा ही है।

यौवनं—

(२) यौवन, धन, सम्पत्ति, प्रभुत्व बुद्धिहीनता इन में से एक २ भी अनर्थकारी है, जहाँ यह चारों हों वहाँ तो कहना ही क्या है।

यह सुन कर सदा कुमार्ग पर जाने वाले, शास्त्र ज्ञान रहित अपने पुत्रों के शास्त्र न पढ़ने के कारण उदासीन मन वाला राजा सोचने लगा।

कोऽर्थ :—

(३) उस पैदा हुए पुत्र से क्या लाभ जो न विद्वान् है न धार्मिक है। कानी आंख से क्या लाभ है, वह केवल आँख की पीड़ा के लिए ही होती है।

स जातो येन—

(४) वस्तुतः पैदा तो उसे ही मानना चाहिये जिस से वंश

उन्नति की ओर जाये। इस बदलने वाले संसार में मर कर कौन नहीं पैदा होता।

वरमेको गुणी—

(५) सौ मूर्ख पुत्रों से एक गुणी पुत्र अच्छा है, एक चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर देता है। किन्तु तारों का समूह भी दूर नहीं कर सकता।

पुण्यतीर्थे—

(६) जिस मनुष्यने किसी पुण्य तीर्थ में कभी काफी कठिन तप किया हो, उस का ही पुत्र आज्ञाकारी, समृद्ध, धार्मिक, और बुद्धिमान होता है।

"तो किस उपाय से मेरे पुत्र गुणवान बनाए जाएं" तब उस राजा ने पण्डितों की सभा को बुलाया।

राजा ने कहा—हे पण्डतो! सुनो—

पृष्ठ २—कोई ऐसा विद्वान है जो मेरे पुत्रों को, सदा ही जो कुमार्ग की ओर जाने वाले, शास्त्रों को जिन्हों ने नहीं पढ़ा है, अब नीति शास्त्र के उपदेश से इनका पुनर्जन्म करने में समर्थ है। क्योंकि—

कांचोऽपि—

(७) काँच सोने के संसर्ग से हीरे की शोभा को धारण कर लेता है। उसी प्रकार विद्वान् के सम्पर्क में रह कर मूर्ख भी चतुराई को पा लेता है।

इसी बीच में विष्णु शर्मा नाम वाले महापण्डित ने जो कि सभी नीतिग्रंथों और शास्त्रों का ज्ञाता था। बृहस्पति देवता की तरह कहा—राजन्! इन राजपुत्रों का जन्म महान् कुल में हुआ है। मैं इन्हें नीति को ग्रहण कराने के योग्य हूं। क्योंकि—

RAMAKRI LIBRARY SRINAGAR.
Accession No. 4739
Date

नाद्रव्य—

(८) अपात्र में लगाई गई कोई भी क्रिया फल देने वाली नहीं होती। सौ बार प्रयत्न करने पर भी बगुले को तोते की तरह नहीं पढ़ाया जा सकता।

अस्मिंस्तु—

(९) इस राजकुल में गुणहीन संतान उत्पन्न नहीं हो सकती, जैसे पद्म मणियों की खान में कांच मणि का जन्म कहाँ हो सकता है ?

इस लिए मैं छः महीने के भीतर तेरे पुत्रों को नीति को जानने वाला कर दूंगा। राजा ने विनय से पुनः कहा—

कीटोऽपि—

(१०) कीड़ा भी पुष्पों के साथ सज्जनों के सिर तक चला जाता है। पत्थर भी महान् लोगों द्वारा प्रतिष्ठित होने से देव की पदवी को धारण कर लेता है।

यथोदयगिरे—

(११) जिस प्रकार उदय गिरि की वस्तु सूर्य के पास रहने से चमकने लगती है, इसी प्रकार सज्जनों के संसर्ग से मूर्ख भी चतुरता को प्राप्त कर लेता है अर्थात् चतुर हो जाता है।

तो इन मेरे पुत्रों को नीति शास्त्र का उपदेश देने के लिए आप प्रमाण हैं ऐसा कह कर उस ने अत्यन्त आदर सहित पुत्रों को सौंप दिया।

इस के अनन्तर महल पर आराम से बैठे हुए राजपुत्रों के सम्मुख प्रस्ताव के क्रम से उस पण्डित ने कहा—

काव्य शास्त्र विनोदेन—

(१२) काव्य और शास्त्र के विनोद से बुद्धिमानों का समय गुज़रता है और मूर्खों का समय किसी प्रकार के व्यसन, निद्रा और झगड़े में गुज़रता है।

तो आप के विनोद के लिए मैं कौए और कछुए आदि की विचित्र कथा कहता हूं—

पृष्ठ ३—राजपुत्रों ने कहा—आर्य कहिये।

विष्णुशर्मा ने उत्तर दिया—अब मित्रलाभ प्रारम्भ किया जाता है।

मित्रलाभ

जिस का पहला श्लोक है—

असाधना इति—

(१३) साधन और धन से रहित, बुद्धिमान् और अच्छे मित्र अपने कार्यों को शीघ्र ही पूर्ण कर लेते हैं जैसे कौए, कछुए, मृग और चूहे ने किया।

राजपुत्रों ने कहा—कैसे ?

विष्णुशर्मा ने कहना प्रारम्भ किया।

काक-कूर्म-मृग-मूषक-कथा

गोदावरी नदी के तट पर बहुत बड़ा शीशम का पेड़ है। उस पर अनेक दिशाओं से आ कर रात्रि में पक्षी रहते थे।

एक बार रात्रि के समाप्त होने पर कमलनियों के स्वामी चन्द्रमा के अस्ताचल पर्वत पर जाने पर (अस्त होते समय) लघुपतनक नामक जागे हुए कौए ने दूसरे यमराज के समान आते हुए एक व्याध को देखा।

उस को देख कर वह सोचने लगा—कि आज तो प्रातः—काल अनिष्ट के दर्शन हो गए हैं। पता नहीं वह क्या बुरा दिखाएगा। यह कह कर उस का अनुसरण करता हुआ व्याकुल सा चल पड़ा।

पुनः उस बहेलिये ने चावल के दानों को बखेर कर जाल

फैला दिया और आप छिप कर बैठ गया।

उसी समय चित्रग्रीव नाम के कबूतरों के राजा ने अपने परिवार के साथ आकाश में उड़ते हुए, उन चावल के कणों को देखा।

इस के अनन्तर कपोतराज ने चावलों के कणों के लोभी कबूतरों से कहा कि इस निर्जन जंगल में चावल के कण कहाँ से आए हैं? इसकी जाँच करो। मैं इस में शुभ नहीं समझता। इन चावलों के कणों के लोभ में फंस कर हमारे साथ भी ऐसा न हो—

पृष्ठ ४—कंकणस्य—

(१४) जैसे सोने के कंकन के लोभ से पार न करने योग्य कीचड़ में फंसा हुआ मुसाफिर बूढ़े व्याघ्र से पकड़ा गया और मारा गया।

कबूतर बोले—"यह कैसे"

उसने कहा—

कंकणलोभी पथिक की कथा

मैंने एक बार दक्षिणारण्य में घूमते हुए देखा—

एक बूढ़ा बाघ नहा कर हाथ में कुशों को पकड़े हुए तालाब के किनारे कह रहा था—"अरे पथिको! इस सोने के कंकण को मुझ से ले लो।"

फिर लोभ में फंसे हुए किसी यात्री ने सोचा—"भाग्य से इस कड़े की प्राप्ति हो सकती है? किन्तु इस सन्देहपूर्ण अर्थात् खतरे वाले काम में मन की प्रवृति ठीक नहीं है। क्योंकि

अनिष्टादिष्ट—

(१५) अनिष्ट से इष्टलाभ होने पर भी अच्छी गति नहीं होती।

क्योंकि विष के संसर्ग वाला अमृत भी मारने वाला होता है।

किन्तु सभी स्थानों में पैसे कमाने में लगना सन्देह ही है उस से हानि की संभावना है। कहा भी है—

न संशयं—

(१६) संदेह में न पड़ कर मनुष्य कल्याण को नहीं देखता। संशय में पड़ कर यदि जीता रहता है तो भलाई को देखता है।

सो पहले मैं जांच करता हूं। उसने शेर से कहा—"आप का कंकण कहाँ है? बाघ ने हाथ फैलाकर दिखा दिया।

पथिक ने कहा—तुझ हिंसक पर मैं कैसे विश्वास करूँ?

बाघ ने कहा—पथिक सुन! मैं युवावस्था में बड़ा दुराचारी था। मैं ने अनेक गौओं और मनुष्यों को मारा इसी कारण मेरी स्त्री व पुत्र भी मर गए हैं। मैं अब वंशरहित हूं। अब किसी धार्मिक से आज्ञा किया गया हूँ कि आप दान धर्म आदि करें।

पृष्ठ ५—उस के उपदेश को स्वीकार कर मैं अब स्नान दान देने वाला बूढ़ा और टूटे हुए नाखून और दांतों वाला हूँ, फिर भी तुम विश्वास क्यों नहीं करते। क्योंकि—

इज्या—

(१७) यज्ञ करना, पढ़ाना, दान, तप, सत्य, धैर्य, क्षमा और लोभ न करना आठ प्रकार का यह धर्म का मार्ग माना गया है।

तत्र—

(१८) उन में से पहिले चार का पालन दूसरे को दिखाने के लिए भी किया जाता है, परन्तु पिछले चार की स्थिति तो महात्माओं में ही होती है।

और मैं इतना लोभ रहित हूं कि अपने हाथ में पहिने हुए

कंकण को भी किसी को देना चाहता हूँ। फिर भी लोगों में फैले हुए इस भ्रम को कौन दूर कर सकता है "कि बाघ मनुष्य को खा लेता है।"

मैंने धर्म शास्त्रों को पढ़ा है—सुनो—

मरुस्थल्यां—

(१६) हे पाण्डुनन्दन! जैसे रेगिस्तान में वर्षा और भूखे को भोजन सफल होता है वैसे ही गरीब को दिया गया दान सफल होता है।

प्राणाः—

(२०) जैसे हमें अपने प्राण प्रिय हैं, वैसे ही अन्य प्राणियों को भी। इस लिये सज्जन अपने ही समान प्राणियों पर दया करते हैं।

प्रत्याख्याने—

(२१) निरादर में, दान में और सुख व दुःख में, प्रिय और अप्रिय में, मनुष्य को अपने ही समान दूसरों को समझना चाहिये।

और क्योंकि तुम अत्यन्त गरीब हो, इस लिये मेरी इच्छा है कि इस कंकण को तुम्हें दूं। कहा भी है—

दरिद्रान् भर—

(२२) हे कुन्ती के पुत्र! दरिद्रों का पालन कर, धनी को धन मत दो। बीमार को औषधि लाभ पहुंचाती है, स्वस्थ को दवाइयों से क्या लाभ!

दातव्यमिति—

(२३) देने योग्य जो दान उपकार न करने वाले को दिया जाता है देश, काल और पात्र को देख कर दिया जाता है उसे सात्विक दान कहते हैं।

तो इस तालाब में स्नान कर के सोने के कंकण को ले लो।

जब उसके वचनों पर विश्वास कर लोभ के कारण उस पथिक ने तालाब में नहाने के लिये प्रवेश किया, तभी बड़ी कीचड़ में पड़ कर भागने में असमर्थ हो गया।

पृष्ठ ६—उस को कीचड़ में फंसा देख कर बाघ बोला—ओहो तुम तो कीचड़ में फंस गए हो अब मैं तुम्हें बाहर निकालता हूँ इस प्रकार कह कर धीरे धीरे समीप जा कर उस बाघ से पकड़ा गया वह यात्री सोचने लगा—

न धर्म शास्त्रं पठतीति—

(२४) चाहे धर्मशास्त्र को पढ़ ले, चाहे वेदों का अध्ययन कर ले, धर्मशास्त्र का पढ़ना दुरात्मा के स्वभाव के परिवर्तन में कोई कारण नहीं और न ही वेद का अध्ययन स्वभाव बदलने में कारण है। स्वभाव सर्वोपरि है। दुष्ट का स्वभाव नहीं बदलता अर्थात् जैसे गौओं का दूध स्वभाव से ही मीठा होता।

और फिर मैं ने अच्छा नहीं किया जो इस हिंसक पर विश्वास किया। कहा भी है—

नदीनां—

(२५) नदियों, हाथ में हथियार वालों, लम्बे नाखून वालों और सींग वाले (पशुओं) तथा स्त्रियों और राजकुलों का विश्वास नहीं करना चाहिए।

सर्वस्य—

(२६) सब के स्वभाव ही परीक्षा किए जाते हैं, न कि गुण। क्योंकि सब गुणों को छोड़ कर स्वभाव ही सब के ऊपर है, प्रधान है।

स हि—

(२७) आकाश में स्वच्छन्द विहार करने वाला अन्धेरे के समूह का नाश करने वाला, सैंकड़ों किरण रूपी हाथों को धारण करने वाला और नक्षत्रों के मध्य में भ्रमणशील चन्द्रमा भी भाग्यवश राहु से ग्रास कर लिया जाता है, ठीक है कि मस्तक में लिखे भाग्य को कौन मिटा सकता है।

इस प्रकार उसे सोचते हुए को बाघ ने मार कर खा लिया।

इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि "कंकण के लोभ से"। इस लिए पहिले भली प्रकार न सोचे हुए काम को नहीं करना चाहिये। क्योंकि

सुजीर्ण—

(२८) अच्छी तरह से पचा हुआ अनाज, चतुर लड़का, अच्छी तरह से वश में रखी गई स्त्री और अच्छी तरह सेवा किया हुआ राजा, विचार कर किया हुआ काम, लम्बे समय की अवधि में भी विकार को प्राप्त नहीं होता। अर्थात् खराबी का कारण नहीं बनता।

उसके वचन को सुन किसी कबूतर ने घमण्ड से कहा—क्या कहते हो?

पृष्ठ ७—वृद्धानां—

(२९) बूढ़ों के वचन विपत्ति आने पर ही सुनने चाहिये। यदि सभी स्थानों पर वृद्धों का वचन ग्रहण करने लगें तो रोटी खाने के भी लाले पड़ जाएंगे।

शङ्काभि—

(३०) भूमि पर खाने और पीने में सदा ही (हानि का) डर रहता है, तो यदि सन्देह में ही पड़े रहें तो प्रवृति कहां की जाए और कैसे जीवित रहा जाए?

ईर्ष्यी—

(३१) ईर्षा करने वाला, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी और सदा ही पग पग पर आशङ्का करने वाला और दूसरे के भाग्य पर गुजारा करने वाला ये छः व्यक्ति दुःख पाते हैं।

यह सुन कर सभी कबूतर वहाँ बैठ गए। क्योंकि—

असम्भवं—

(३२) यद्यपि सोने के मृग का जन्म असम्भव है। फिर भी राम ने उस मृग के लिए लोभ किया। अकसर विपत्ति आने के समय बुद्धिमानों की बुद्धि भी मलिन हो जाती है। उस पर भी परदा पड़ जाता है।

इसके पीछे सभी जाल में बन्ध गए।

फिर जिस के वचन से सभी वहां उतरे थे उसको सभी कोसने लगे।

न गणस्य—

(३३) क्योंकि—समूह के आगे न जाए, यदि कार्य सिद्ध हो तो सब को समान फल है। यदि कार्य सिद्ध न हो तो बोलने वाले (ले जाने वाले) की निन्दा होती है।

उसके तिरस्कार को सुन चित्रग्रीव ने कहा—"इस में इस का दोष नहीं है।" आफत आने पर घबरा जाना ही कायर पुरुष का लक्षण है। तो अब धैर्य धारण कर इसका प्रतिकार सोचो क्योंकि—

विपत्ति—

(३४) आफत में धैर्य धारण करना, उन्नति में क्षमा, सभा में वाणी की चतुरता और युद्ध में शूरता, यश की इच्छा रखना,

और शास्त्रों में अभिरुचि स्वभाव से ही महात्माओं में ये गुण पाए जाते हैं।

संपदि—

(३५) जिसे उन्नति में खुशी, आफत्त में दुःख और युद्ध में डर न हो ऐसे तीनों लोकों में तिलक अर्थात् शिरोमणि विरले ही पुत्र को माता जन्म देती है।

षड् दोषा :—

(३६) उन्नति की इच्छा करने वाले मनुष्य को, अत्यधिक सोना, लेटे रहना, डर, गुस्सा, आलस्य और किसी काम को पड़े रहने देना इन छः दोषों को त्यागना चाहिये।

तो अब हमें यह करना चाहिये कि सभी मन में एक ही विचार वाले हो कर जाल को लेकर उड़ चलें। क्योंकि—

पृ० ८—अल्पानाम्

(३७) छोटी छोटी वस्तुओं का भी समूह महान् कार्यों को सिद्ध करने वाला होता है जैसे तिनकों से बनी रस्सियों से मदमत्त हाथियों को बांध दिया जाता है।

यह सोचकर सभी पक्षी जाल को लेकर उड़ चले। फिर पीछे भागते हुये व्याध ने जाल को उड़ा ले जाने वाले पक्षियों को दूर से देख कर सोचा—

संहताः—

(३८) इकट्ठे हो कर ये पक्षी मेरे जाल को ले जा रहे हैं, जब ये गिरेंगे तभी मेरे वश में आ जायेंगे।

पीछे उनके आँखों से ओझल हो जाने पर वह व्याध लौट गया।

इस बहेलिये को लौटा देख कर कबूतर बोले "अब क्या करना चाहिये" चित्रग्रीव ने उत्तर दिया—

माता मित्रम—

(३६) "माता, मित्र और पिता स्वभाव से ही ये तीनों हितकारी होते हैं। और लोग तो किसी कार्य वा कारण से हित करने वाले बनते हैं।

सो हमारा मित्र हिरण्यक चूहों का राजा गण्डकी के तट पर स्थित चित्र वन में रहता है। वह हमारे बन्धनों को काट डालेगा"।

यह सोच कर सभी हिरण्यक के बिल के पास पहुँचे। वहाँ हिरण्यक सदा ही अनिष्ट के भय से सौ मुँह वाला बिल बना कर उस में रहता था। हिरण्यक कबूतरों के नीचे गिरने के भय से चकित हो कर चुप रहा।

चित्रग्रीव ने कहा "मित्र हिरण्यक, हम से क्यों नहीं बोलते"।

तब हिरण्यक ने उसकी आवाज़ को पहचान कर एकदम बाहिर निकल कर कहा "आह पुण्य वाला हूँ जो मेरा प्रियमित्र चित्रग्रीव आया है।"

परन्तु जाल में बँधे उन कबूतरों को देख कर आश्चर्य सहित क्षण भर ठहर कर बोला "मित्र यह क्या ?

चित्रग्रीव ने कहा—"मित्र ! यह हमारे पूर्वजन्म के कर्मों का फल है"।

पृ० ९—रोग शोक

(४०) मनुष्य के रोग, दुःख, बीमारी, कैद (बन्धन) और बुरी आदतें ये प्राणियों के अपने अपराध रूपी वृक्षों के फल हैं।

यह सुन हिरण्यक, चित्रग्रीव के बन्धन को काटने के लिए जल्दी ही पास गया।

चित्रग्रीव ने कहा "मित्र ऐसा न करो। पहिले मेरे इन सेवकों के बन्धन को काटो, पीछे मेरे बन्धन को काटना"।

हिरण्यक ने भी कहा—"मुझ में थोड़ी ताकत है, मेरे दाँत कोमल हैं अतः इनके बन्धनों को काटने के लिए मैं कैसे समर्थ हूँ। जब तक मेरे दाँत नहीं टूटते तब तक तुम्हारे जाल को काटता हूँ। पीछे इन के भी पाशों को अपनी शक्ति के अनुसार काट दूँगा।"

चित्रग्रीव ने कहा—"ऐसा ही सही! फिर भी शक्ति के अनुसार इन के बन्धन को काट दो"।

हिरण्यक ने कहा—"अपने शरीर के त्याग से नौकरों की रक्षा करना नीतिज्ञों को सम्मत नहीं है। क्योंकि—

आपदर्थ—

(४१) विपत्काल के लिए धन बचाए और स्त्रियों की रक्षा धन से भी करे परन्तु अपने शरीर की रक्षा निरन्तर स्त्रियों और धन से भी करे। आपनी रक्षा सब से बढ़ कर है।

धर्मार्थ—

(४२) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन को टिकाये रखने वाले प्राण ही हैं। उनकी हत्या करने वाले ने क्या नहीं नष्ट कर दिया और उनको रक्षा करते हुए ने क्या नहीं बचा लिया—

चित्रग्रीव ने कहा—कि नीति तो ऐसी ही है। किन्तु मैं अपने आश्रित इन लोगों के दुःख को सहन नहीं कर सकता। इसी से यह कहता हूँ—

जातिद्रव्य—

(४३) जातिद्रव्य और गुणों में मेरी इन से समता है परन्तु मेरी प्रभुता का फल कब और क्या होगा? यह बताओ।

बिना वर्तन—

(४४) आजीविका के बिना भी ये मेरा साथ नहीं छोड़ते। इस लिए मेरे प्राणों के दान से भी इन मेरे आश्रितों को जीवन दो।

यह सुन कर प्रसन्नचित्त वाले हिरण्यक ने पुलकित हो कर कहा—शाबाश मित्र ! शाबाश !! अपने आश्रितों पर इतना प्यार करने से तुम्हें त्रिलोकी का स्वामी बनाना भी उपयुक्त है।

पृ० १०—यह कह कर उसने सभी के बन्धन काट दिए।

फिर हिरण्यक ने सब का आदर सहित सत्कार करके कहा—

"सखे चित्रग्रीव ! इस जाल के बन्धन के सम्बन्ध में दोष की आशङ्का करते हुए अपने आप को भला बुरा नहीं कहना चाहिये।

योऽधिकात्—

(४५) जो पक्षी सौ योजन से अधिक दूरी से यहाँ मास को देख लेता है, वही मृत्यु नज़दीक आने वर जाल के बन्धन को नहीं देख सकता।

शशि—

(४५) सूर्य और चाँद का ग्रहों (राहु, केतु) द्वारा ग्रसा जाना, हाथी और साँप का भी बाँधा जाना और बुद्धिमानों की गरीबी को देख कर भाग्य बलवान है, यह मेरी सम्मति है।

व्योमैकान्त—

(४७) आकाश के एकान्त कोने में विचरने वाले पक्षियों को भी मुसीबत उठानी पड़ती है, समुद्र के अथाह पानी में रहने वाली मछलियों को निपुण लोग पकड़ लेते हैं, इस संसार में क्या बुरा कार्य है ? और क्या अच्छा चरित्र है ? तथा अच्छे सम्मान के मिलने में क्या लाभ है ? अर्थात् कुछ नहीं, क्योंकि

काल मृत्यु) व्यसन रूपी हाथों को फैलाए हुए दूर से भी पकड़ लेता है।

इस प्रकार समझा कर काफी अतिथि सत्कार कर और पुनः आलिंगन कर उस ने चित्रग्रीव को विदा किया, वह सपरिवार अपने घर को सकुशल पहुंच गया।

हिरण्यक भी अपने बिल में घुस गया।

उधर लघुपतनक नाम के कौए ने इस सारे दृश्य को आश्चर्य से देख कर कहा—हे हिरण्यक तुम प्रशंसा पाने के योग्य हो। मैं भी तुम्हारी मित्रता चाहता हूं। मुझे भी अपना दोस्त बनाने की कृपा करो।

यह सुन कर हिरण्यक भी बिल के अन्दर से ही बोला—"तुम कौन हो?" उस ने कहा—"मैं लघुपतनक नाम का कौआ हूँ।"

हिरण्यक ने हँस कर कहा—"तेरे साथ कैसी मित्रता?" क्योंकि

पृ० ११—यद्येन—

(४८) संसार में जो जिस के साथ जुड़ सकता है अर्थात् जो जिस के यौग्य हो बुद्धिमान उस को उसी के साथ जोड़ दे। मैं तो अनाज हूँ और आप उस को खाने वाले हैं, हम दोनों की प्रीति कैसे हो सकती है?

भक्ष्यभक्षकयोरिति—

(४९) खाने योग्य खुराक और खाने वाले की दोस्ती या प्रेम आफत को लाने वाला होता है। गीदड़ द्वारा जाल में फंसाये हुए उस हिरण को कौए ने बचाया था।

कौए ने पूछा—"यह कैसे?

हिरण्यक ने कहा—

काक रक्षित मृग कथा

मगध देश में चम्पकवती नाम की बड़ी भारी बनस्थली है। उस में बड़ी देर से हरिण और कौआ बड़े प्रेम से रहते थे।

वह मृग किसी दिन मटरगस्त कर रहा था कि उस अच्छे डील डौल और भारी शरीर वाले को किसी गीदड़ ने देखा।

उस को देख गीदड़ सोचने लगा "इस स्वादु माँस को मैं कैसे खा सकता हूँ? अच्छा, इन में (अपनी प्रीति) विश्वास पैदा करता हूँ (यकीन दिलात हूँ कि मैं तेरा मित्र हूँ)"

यह सोच कर उस के पास जाकर बोला—'मित्र! आप कुशल प्रसन्न तो हो?"

हरिण ने पूछा "आप कौन हैं"।

उस ने कहा "मैं क्षुद्रबुद्धि नाम का गीदड़ हूँ। इस बन में बन्धुहीन हो कर मैं मरा हुआसा अपने दिन काटता हूं। आज तुम्हारे जैसे मित्र को पा कर फिर से बन्धुवाला संसार में रहने योग्य बन गया हूं अब मैं हर तरह आप का सेवक बन कर रहूंगा।

हरिण ने कहा—ऐसा ही हो।

फिर किरणों की माला वाले सूर्य के अस्त होने पर वह दोनों कौए के रहने की जगह पर गए। चम्पक वृक्ष की टहनी पर इस का पुराना मित्र सुबुद्धि नाम का कौआ रहता था।

उन दोनों को देख कर कौए ने पूछा—मित्र चित्रांग; यह दूसरा तुम्हारे साथ कौन है? हरिण ने उत्तर दिया यह गीदड़ है जो हमारा मित्र बनने की इच्छा से आ गया है। कौए ने कहा—"मित्र! एक दम अचानक आने वाले के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए"—कहा भी है—

अज्ञातकुल—

(५०) जिस व्यक्ति के वंश और चरित्र का न पता हो, उसे कभी मकान (ठहरने) का स्थान नहीं देना चाहिए, बिल्ले के दोष से जरद्गव नाम का गीध मारा गया।

उन्होंने पूछा—कैसे। कौए ने कथा सुनाई—

जरद्गव गृध्रस्य कथा

जरद्गव गीध की कथा

गंगा तट पर गृध्रकूट नाम के पहाड़ पर एक बड़ा पर्कटी का पेड़ था। उसके खोल में भाग्य के फेर से गले हुए नाखून और नेत्रों वाला जरद्गव नाम का गीध रहता था। कृपा करके वहाँ रहने वाले पक्षी उसके जीवन का निर्वाह करने के लिये अपने भोजन में से कुछ कुछ निकाल कर उसे दे देते थे। उसी से उसका जीवन चलता था और इसके बदले वह पक्षियों के बच्चों की देखभाल या रक्षा करता था।

इसके बाद कभी दीर्घकर्ण नाम का बिल्ला पक्षियों के बच्चों को खाने गया। उस को आते देख भय से घबराए हुए पक्षियों ने शोर मचाया।

शोर सुन कर जरद्गव ने कहा—"यह कौन आया है"

दीर्घकर्ण ने गीध को देख कर भय के साथ कहा—हाय मैं मारा गया अब इस के सामने मैं दौड़ने में असमर्थ हूं, तो जो होना है सो होवे। पहले विश्वास पैदा कर के समीप जाता हूँ। क्योंकि -

तावद्भयस्य—

(५१) जब तक भय न आया हो तभी तक उससे डरना चाहिए। आए हुए भय को देख कर मनुष्य को जो अच्छा लगे

(जो कुछ सूझे) वही करना चाहिए।

इस प्रकार सोच कर पास जा कर बोला—हे आर्य! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

गीध ने पूछा—"तू कौन है?"

उसने कहा—मैं बिल्ला हूँ।

गीध ने कहा—"दूर भाग जा, नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा।"

बिल्ले ने कहा—पहिले मेरी बात तो सुनिये। यदि उस के बाद मुझे मारना ठीक समझें तो मार डालें।

क्योंकि—

पृ० १३–जातिमात्रेण :—

(५२) क्या कोई केवल जाति के कारण मारा जाता है अथवा पूजा जाता है, मनुष्य कर्म से मारने वा पूजने के योग्य होता है।

गीध ने पूछा—तो बता, तू यहां किस काम से आया है।

उसने कहा—मैं यहां गङ्गा के किनारे नित्य स्नान करता हूँ, मांस नहीं खाता, ब्रह्मचारी हूँ और चान्द्रायण व्रत का पालन करता हूँ। "तुम धर्म के ज्ञान को रखते हो" इस प्रकार विश्वासपात्र सब पक्षी सदा मेरे सामने तारीफ करते हैं। आप मुझ से आयु और ज्ञान दोनों के लिहाज़ से बड़े हैं, अतः आप से धर्म का उपदेश सुनने आया हूँ। परन्तु आप ऐसे धर्म के जानने वाले विद्वान् निकले कि मुझ अतिथि को मारने पर उतर आए। गृहस्थ का धर्म तो यह है—

अरावप्युचित—

(५३) घर में आये हुए शत्रु का भी उचित अतिथि सत्कार करना चाहिये। पेड़ अपने काटने वाले के पास गई हुई छाया को नहीं हटा लेता।

यदि घर में अनाज न भी हो, तो प्रेम के वचनों से ही अतिथि का आदर किया जाए। क्योंकि—

तृणानि:—

(५४) तिनके अर्थात् तिनकों से बना आसन, भूमि (बैठने योग्य जगह), पानी और चौथी मीठी वाणी, यह चीज़ें सज्जनों के घर से कभी समाप्त नहीं होतीं।

अतिथिर्यस्य—

(५५) जिस घर से अतिथि निराश होकर वापिस लौटता है मानों वह उसको तो पाप दे जाता है और आप पुण्य ले कर जाता है।

उत्तमस्यापि:—

(५६) किसी उत्तम वर्ण वाले के यहाँ यदि नीच वर्ण का अतिथि भी पहुंच जाए तो उसकी उचित रीति से सेवा की जानी चाहिए, अतिथि में सभी देवता निवास करते हैं।

गीध ने कहा—"बिल्ला मांस खाने वाले स्वभाव का है"। और यहाँ पक्षियों के बच्चे रहते हैं। तभी तो मैं तुम से ऐसा कह रहा हूँ।

इस बात को सुन बिल्ले ने ज़मीन को छू कर कानों को छूआ और कहा—धर्म शास्त्रों को सुन कर विरक्त हुए हुए मैंने चान्द्रायण व्रत जैसे कठिन व्रत को धारण किया है। क्योंकि आपस में मत-भेद रखते हुए भी धर्म शास्त्रों की "अहिंसा परम धर्म है।" इस विषय में एक मति है।

क्योंकि—

सर्व हिसा निवृत्ता:—

(५७) क्योंकि किसी प्रकार की हिंसा न करने वाले, सभी

कुछ सहने वाले और सभी को आश्रय या रहने का स्थान देने वाले मनुष्य ही स्वर्ग जाते हैं।

पृष्ठ १४—योऽत्ति—

(५८) जो जिस के मांस को खाता है उन दोनों में भेद देखो। एक तो कुछ क्षण मज़ा ले लेता है परन्तु दूसरे के प्राण चले जाते हैं।

फिर सुनो—

स्वच्छन्दः—

(५६) पेट तो अपने आप ही जंगल में पैदा हुए साग से भी भरा जा सकता है। इस जले पेट के लिये कौन हिंसा के बड़े पाप को करे।

इस प्रकार विश्वास दिला कर वह बिल्ला भी पेड़ की कोटर में रहने लगा।

फिर कुछ दिनों के बीतने पर वह बिलाव उन पक्षियों के बच्चों को पकड़ कर कोटर में लाकर प्रतिदिन खाने लगा।

जिन पक्षियों के बच्चे खाए गए थे उन्हों ने रो पीट कर दुःख मना कर इधर उधर खोज शुरू की।

जब इस बात का बिल्ले को पता चला तो वह बिल्ला कोटर से निकल बाहर भाग गया।

पीछे पक्षियों ने इधर उधर जाँच पड़ताल करते हुए पेड़ के कोटर में बच्चों की हड्डियां पाईं, पीछे "इसी जरद्गव ने हमारे बच्चे खाए हैं" यह निश्चय कर उस गीध को मार डाला।

अतः मैं ने कहा था कि—अज्ञात कुल शीलस्य इत्यादि।

यह सुन गीदड़ गुस्से में बोला—"जब आप ने पहिली बार हिरण को देखा तो आप को भी इस के कुल और चरित्र का पता

नहीं था। तो कैसे इस के साथ आप की प्रेम परम्परा लगातार बढ़ती ही जा रही है—

अयं निज—

(६०) छोटे दिल वाले ही सोचा करते हैं कि यह मेरा है यह दूसरे का है। उदार हृदय वाले तो संसार को ही अपना घर समझते हैं।

इसलिए जिस प्रकार यह हिरण मेरा बन्धु जैसा है वैसे आप भी हैं।

हिरण ने कहा—"बहस से क्या फायदा। सभी यहां आपस में विश्वास पूर्ण बातें करते हुए सुख से रहें। क्योंकि—

न कश्चित्—

(६१) कोई किसी का मित्र नहीं, कोई किसी का शत्रु नहीं, यह अपना अपना व्यवहार है जिस से मित्र और शत्रु होते हैं।"

पृ० १५—कौए ने कहा—ऐसा ही हो।

एक दिन एकांत में गीदड़ ने कहा—"मित्र हरिण! इस बन में एक दूसरे स्थान पर अनाज से लदा हुआ खेत है, सो चल तुझे ले चल कर दिखाऊँ। ऐसा सुन मृग वहाँ जा कर नित्य अनाज खाता था। पीछे उस खेत वाले ने देख कर फंदा लगाया। इसके पीछे जब वहाँ मृग चरने को गया त्यों ही जाल में फँस गया और सोचने लगा "मुझे इस काल की फाँसी के समान व्याध के फंदे से मित्र को छोड़ और कौन बचा सकता है? "इसी बीच में शृगाल वहाँ उपस्थित होकर विचारने लगा" मेरी छल की चाल से मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ और इस अधेड़े हुए माँस और खून से भरी हुई हड्डियां मुझे अवश्य मिलेंगी और वे

खाने के लिये काफी होंगी। मृग उसे देख प्रसन्न हो कर बोला—अरे मित्र ! मेरा बन्धन काटो और मुझे शीघ्र बचाओ।

क्योंकि

आपत्सु—

(६२) आपत्ति में मित्र, युद्ध में शूर, कर्ज में सच्चा व्यवहार, निर्धनता में स्त्री और दुःख में भाई बन्धु परखे जाते हैं।

गीदड़ जाल को बार बार देख विचारने लगा—"यह काफी कड़ा बन्धन है" और बोला—"मित्र ! ये फँदे ताँत के बने हैं इसलिए आज रविवार के दिन इन्हें दाँतो से कैसे छुऊँ"। मित्र ! जो बुरा न मानो तो प्रातः काल जो कहोगे वह करूँगा। ऐसा कह कर उसके पास ही वह अपने को छिपा कर बैठ गया। पीछे जब कौआ शाम को मृग को न आया देख कर इधर उधर देखने लगा, तो उसे (बन्धन में) देख कर बोला—मित्र ! यह क्या है ?" मृग ने कहा—मित्र के वचन न मानने का यह फल है। जैसे कहा है—

सुहृदां—

(६३) जो मनुष्य अपने हितैषी मित्रों के वचन नहीं सुनता है, उस के पास विपत्ति रहती है। वह शत्रुओं को प्रसन्न करने वाला है।

पृ० १६—कौआ बोला—"वह ठग कहाँ है ?" मृग ने कहा "मेरे मांस का लोभी यहीं बैठा है।" कौआ बोला—"मैं ने पहले ही कहा था"—

कौए ने लम्बी सांस भर कर कहा—अरे ठग ! तुझ पापी ने क्या किया है ?

संलापितानां—]

(६४) क्योंकि—संसार में मीठे वचनों से वार्तालाप कर फुसलाए हुए, मिथ्या कपट से वश में किए हुए, आशा रखने वाले, भरोसा रखने वाले और धन के मांगने वाले लोगों का ठगना क्या बड़ी बात है।

दुर्जनेन—

(६५) दुष्ट के साथ वैर और मित्रता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि गर्म अङ्गारा हाथ को जलाता है और यदि ठण्डा हो तो हाथ को काला कर देता है।

अथवा यह दुर्जनों का स्वभाव ही है।

प्राक्पादयोः पतति—

(६६) मच्छर दुष्ट के से सब चरित्र करता है अर्थात् जैसे दुष्ट पहले पैरों पर गिरता है, पीठ पीछे बुराई करता है। वैसे ही यह पैरों में फिर पीठ में काटता है। जैसे दुष्ट कान में मीठी मीठी बात करता है वैसे ही यह भी कान के पास मधुर शब्द करता है और जैसे दुष्ट आपत्ति को देख कर निडर हो बुराई करता है, वैसे ही मच्छर भी छिद्र अर्थात् रोम के छिद्र में प्रवेश कर काटता है।

दुर्जन—

(६७) दुष्ट आदमी प्रियवादी है इतने से ही विश्वास न कर लेना चाहिये। उसकी जीभ के आगे मिठास और हृदय में हलाहल विष भरा है।

पीछे प्रातःकाल कौए ने किसान को लाठी हाथ में लिये उस स्थान पर आता देखा, उसे देख कर कौए ने हरिण से कहा— “मित्र हरिण! तू अपने शरीर को मरा हुआ सा दिखा कर पेट को हवा से फुला कर और पैरों को अकड़ा कर ठहर”। जब

मैं आवाज़ करूँ तो उठ कर जल्दी ही भाग जाना। हरिण कहे हुए वचनों के अनुसार लेट गया। प्रसन्नता से खिली हुई आँखों वाले किसान ने उस अवस्था में उस मृग को देखा और कहा ओहो! यह तो आप ही मर गया" ऐसा कह कर हरिण की फाँसी को खोल कर जाल को समेटने का यत्न करने लगा इस के अनन्तर कव्वा काँय काँय करने लगा। पीछे कौए का शब्द सुन कर मृग जल्दी से उठ कर भाग गया इस को देख उस खेत वाले ने लकड़ी ऐसे फैंक कर मारी कि उस से गीदड़ मारा गया।

पृष्ठ १७—जैसे कहा है—

त्रिभिः—

(६८) प्राणी अपने भारी पुण्यों और पापों का फल तीन वर्ष, तीन मास, तीन पक्ष और तीन दिन में यहां ही भोग लेता है।

भक्षितेनापि—

(६९) फिर कौआ कहने लगा—"तुझे खा लेने से भी मेरा काफी आहार नहीं होगा। अर्थात् मेरा पेट नहीं भरेगा। हे पाप रहित मित्र! मैं तो चित्रग्रीव की तरह तेरे जीवित रहने पर ही जीवित रहूँगा।

तिरश्चामपि—

(७०) पुण्यात्मा मृग-पक्षियों का भी विश्वास देखा गया है। सज्जनों का स्वभाव सज्जनता के कारण कभी नहीं पलटता।

हिरण्यक ने कहा—तू चंचल है, ऐसे चञ्चल के साथ स्नेह कभी न करना चाहिए।' जैसे कहा भी है—

मार्जारो—

(७१) बिल्ली भैंसा, मेढ़ा, काक और कायर मनुष्य, ये

विश्वास करने से अपनी प्रभुता दिखाते हैं, इस लिये इन में विश्वास करना उचित नहीं है। और भी। आप मेरे शत्रु पक्ष के हैं। शत्रु के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिए।

शत्रुणा—

(७२) वैरी चाहे जितना मीठा बन कर मेल करना चाहे परन्तु उस के साथ मेल न करना चाहिए, क्योंकि तपा हुआ अर्थात् गरम जल भी आग को बुझा देता है।

महता—

(७३) बड़ा भारी प्रयोजन पड़ने पर भी जो शत्रुओं और व्यभिचारणी स्त्रियों पर विश्वास करता है, उस के जीवन का वहीं पर ही अन्त हो जाता है।

लघुपतनक कौआ बोला—"मैंने सब कुछ सुन लिया है, तो भी मेरा इतना संकल्प है कि तेरे संग मित्रता अवश्य करनी चाहिए, नहीं तो तेरे दरवाजे पर बिना अन्न जल खाये भूखा मर जाऊंगा।

पृ० १८—जैसे कि—

मृद्घट—

(७४) दुर्जन मनुष्य मिट्टी के घड़े के समान सहज टूट सकता है और फिर उस का जुड़ना कठिन है और सज्जन सोने के घड़े के समान है जो कभी टूट नहीं सकता है और जो टूट भी जाये तो शीघ्र जुड़ भी सकता है।

द्रवत्वात्—

(७५) सोना, चाँदी आदि धातु पिघलाने से, पशुपक्षियों का पूर्वजन्म के संस्कार से, मूर्खों का भय और लोभ से और सज्जनों का केवल दर्शन से ही मेल होता है। यह जान कर ही

सज्जनों से मेल चाहा जाता है।

नारिकेल—

(७६) सज्जन पुरुष नारियल के समान आकार वाले दिखाई देते हैं अर्थात् ऊपर से कठोर और अन्दर से मीठे, और दुर्जन बेर के समान हैं, बाहिर से ही भले प्रतीत होते हैं। भीतर से कठोर होते हैं।

स्नेहच्छेदोऽपि—

(७७) प्रेम के समाप्त होने पर भी सज्जनों के गुणों में विकार नहीं आता, जैसे कमल की डंडी के टूटने पर भी उसके तंतु जुड़े ही रहते हैं।

और सुनिए।

शुचित्व—

(७८) पवित्रता, त्याग, शौर्य, सुख दुःख में एकसा रहना, चतुरता प्रीति और सत्यता ये मित्रों के गुण हैं।

इन गुणों से युक्त तुम्हें छोड़ और किस मित्रको पाऊँगा? "उसकी ऐसी बातें सुन कर" हिरण्यक बाहिर आकर बोला—"आपने वचन रूपी अमृत से मुझे तृप्त कर दिया है", कहा भी है—

घर्मार्त—

(७९) सुन्दर युक्तियों से युक्त पुण्यात्माओं के आकर्षण मंत्र के समान प्रेम-सिक्त सज्जनों का वचन जैसा चित्त को अत्यन्त सुखकारी होता है, वैसा शीतल जल से स्नान, मोतियों की माला, अँग-अँग में लगा हुआ चन्दन का लेप, धूप के सताए हुए को सुख नहीं देता है।

रहस्य—

(८०) दूसरे की गुप्त बात को प्रकट करना, धन आदि

की याचना, कठोरता, चित्त की चंचलता, क्रोध, असत्य और जुआ, ये अमित्र के लक्षण हैं।

सो ऐसा ही हो, जैसा आप को पसंद है। यह कह कर हिरण्यक मित्रता कर के खास प्रकार के भोजनों से कव्वे को प्रसन्न कर बिल में दाखिल हो गया।

कौआ भी अपने स्थान को चला गया।

उस दिन से ले कर प्रतिदिन एक दूसरे को आहार देने, कुशलता के प्रश्न पूछने और विश्वास पूर्ण बातों के करने से उन दोनों का समय व्यतीत होने लगा।

पृ० १६-एक बार लघुपतनक ने हिरण्यक को कहा—मित्र! इस स्थान पर भोजन कठिनता से प्राप्त होता है। अतः मैं इस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में जाना चाहता हूं। हिरण्यक ने कहा—मित्र! कहाँ जाओगे? जैसे कहा भी है—

स्थान—

(८१) क्योंकि अपने स्थान से हटा दिए गए, दांत, केश, नख और आदमी शोभा नहीं देते। यह सोचकर बुद्धिमान् अपने स्थान को न छोड़े।

कौए ने कहा—यह तो डरपोकों का वचन है—क्योंकि—

को वीरस्य—

(८२) वीर मनस्वी का कौनसा अपना देश होता है और कौन सा विदेश होता है। वह तो जिस देश में ठहरता है, उसी को अपनी भुजाओं से जीत लेता है। जिस किसी बन में दाढ़, नख और पूंछ से प्रहार करने वाला सिंह प्रवेश करता है, वहीं पर मरे हुए हाथियों के खून से अपनी तृष्णा को शान्त कर लेता है।

चलत्येकेन—

(८३) ऐसा कहा है—बद्धिमान एक पैर से चलता है और

दूसरे से ठहरता है। इसलिए दूसरे स्थान का निश्चय किए बिना पहिला स्थान नहीं छोड़ना चाहिए।

कौआ बोला—"एक अच्छी तरह जांचा हुआ स्थान है।"

हिरण्यक ने कहा—वह कौनसा है।

कौआ बोला—"दण्डकवन में कर्पूरगौर नाम का एक सरोवर है उस में मन्थर नाम का एक धर्मशील कछुआ मेरा बड़ा पुराना प्यारा मित्र रहता है और वह भांति भांति के भोजनों से मेरा सत्कार करेगा। हिरण्यक बोला—तो मैं यहाँ रह कर क्या करूँगा। क्योंकि

यस्मिन्देशे—

(८४) जिस देश में सन्मान, आजीविका, भाई-बन्धु और विद्या का कुछ लाभ न हो उस देश को छोड़ देना चाहिए।

लोकयात्रा—

(८५) और जीविका, अभय, लज्जा, सज्जनता और उदारता ये पाँच बातें जहाँ पर न हों वहाँ पर नहीं बसना चाहिये।

पृ० २०—तत्र मित्र—

(८६) और हे मित्र जहाँ ऋण देने वाला, वैद्य, वेदपाठी और सुन्दर जल से भरी नदी ये चार न हों वहाँ पर नहीं रहना चाहिये।

इसलिए मुझे भी वहाँ ले चल। पीछे कौआ उस मित्र के साथ तरह तरह की बातें करता हुआ आराम से तालाब के पास गया। मन्थर ने भी दूर से ही देख कर लघुपतनक का यथोचित अतिथि-सत्कार करके चूहे का भी अतिथि-सत्कार किया क्योंकि—

बालो वा यदि—

(८७) बालक, बूढ़ा और युवा इन में से घर पर कोई आया हो तो उसका सत्कार करना चाहिए क्योंकि अभ्यागत सबका पूज्य गुरू है।

कौआ बोला—'मित्र मन्थर! इसका विशेष सत्कार कर। क्योंकि यह पुण्यात्माओं का अग्रणी और करुणा का सागर हिरण्यक नाम का चूहों का राजा है। इस के गुणों की प्रशंसा दो हज़ार जीभों से शेषनाग भी नहीं कर सकता है"। यह कह कर चित्रग्रीव का वृत्तान्त सुनाया। मन्थर बड़े आदर से हिरण्यक का सत्कार कर पूछने लगा—"हे मित्र! इस निर्जन वन में अपने आने का कारण तो कहो। हिरण्यक बोला—

चम्पक नाम की नगरी में सन्यासियों का एक बड़ा डेरा था वहां चूड़ाकर्ण नाम का सन्यासी रहता था और वह भोजन से बचे-खुचे भिक्षा के अन्न से भरे भिक्षापात्र को खूंटी पर टांग कर सो जाया करता था। और मैं उस भोजन के पदार्थ को उछल उछल कर नित्य खाता था। इसके बाद उसका प्रिय मित्र वीणाकर्ण नामक सन्यासी आया। चूड़ाकर्ण बीच बीच में उसके साथ कथा के प्रसंग में लगा हुआ डराने के लिए एक पुराने बांस के टुकड़े से पृथ्वी खटखटाने लगा। वीणाकर्ण बोला मित्र यह क्या बात है कि मेरी बातों को सुनते ही नहीं और ही तरफ लगे हो। चूड़ाकर्ण ने कहा—मित्र मैं बातें सुन रहा हूं परन्तु देखो यह चूहा मेरा अपकारी, पात्र में धरे भिक्षा के अन्न को उछल उछल कर खा जाता है।

वीणाकर्ण—खुंटी (किल्ली) को देख कर बोला! क्योंकर यह चूहा थोड़ी सी शक्ति रखता हुआ भी इतनी दूर उछल रहा है।

इस में कोई कारण अवश्य होगा।

पृष्ठ २१—थोड़ी देर बाद परिव्राजक ने कहा—इस में धन का अधिक होना ही कारण है।

धनवानबलवान्—

(८८) क्योंकि सर्वत्र संसार में सब मनुष्य धन से ही सदा बलवान् होते हैं और राजाओं की प्रभुता की जड़ धन ही होता है।

फिर कुदाली लाकर उस परिव्राजक ने बिल को खोद कर चिरसंचित मेरा धन ले लिया। उसी दिन से अपनी शक्ति से रहित, बल और उत्साह से हीन, अपना आहार भी खोजने के अयोग्य डर के मारे धीरे धीरे चलते हुये मुझे चूड़ाकर्ण ने देखा—

फिर उसने कहा—

धनेन बलवान्—

(८९) संसार में मनुष्य धन से बलवान् और धन से पण्डित होता है इस पापी चूहे को देखो (धनहीन होने पर) यह अपनी जाति के समान हो गया।

अर्थेन तु विहीनस्य—

(९०) धन से रहित, बुद्धि रहित मनुष्य के सब काम बिगड़ जाते हैं जैसे गर्मी की ऋतु में छोटी छोटी नदियां सूखकर बिगड़ जाती हैं।

तानीन्द्रियाणि—

(९१) वही (धनहीन मनुष्य की धनवान् जैसी) विकार रहित इन्द्रियां हैं, वही नाम है। वही निर्मल बुद्धि है, वही वचन है, परन्तु धन की गर्मी से रहित मनुष्य कुछ का कुछ हो जाता है। यह विचित्र बात है।

यह सब सुनकर मैंने विचारा—मेरा अब यहां रहना ठीक नहीं है और दूसरे से यह समाचार कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि—

अर्थनाशं—

(६२) बुद्धिमान् मनुष्य को अपने धन का नाश, मन का संताप घर का दुराचार, ठगा जाना और अपमान, ये प्रकट नहीं करने चाहिए ।

पृ० २२—मनस्वी म्रियते—

(६३) उदार चाहे मर जाए परन्तु कृपणता नहीं करता है, जैसे अग्नि भले ही बुझ जाए, परन्तु ठंडी नहीं होती ।

और भी ।

कुसुमस्तवकस्येव—

(६४) फूलों के गुच्छे के समान उदार मनुष्य की दो तरह की वृत्ति अर्थात् दो ही स्वभाव होते हैं या तो सब के सिर पर रहे या वनमें कुम्हला जाए ।

और जो भीख मांग कर यहां ही जीना है, वह भी अच्छा नहीं है—

दारिद्र्याद्धियम्—

(६५) निर्धनता से मनुष्य को लज्जा होती है, लज्जा से पराक्रम नष्ट हो जाता है, पराक्रम न होने से अपमान होता है, अपमान होने से दुःख होता है, दुःख से शोक होता है, शोक से बुद्धिहीन हो जाता है और बुद्धि न होने से नाश हो जाता है सचमुच ! निर्धनता सब आपत्तियों का स्थान है ।

वरंमौनं—

(६५) चुप रहना अच्छा है, पर असत्य वचन कहना उचित नहीं है । मर जाना अच्छा है परन्तु धूर्तों की बातों में फंसना अच्छा नहीं और भीख माँगना अच्छा है परन्तु दूसरे के धन का स्वाद लेना अच्छा नहीं । वन में रहना अच्छा है, परन्तु मूर्ख राजा के नगर में रहना अच्छा नहीं है ।

यह सोचकर कि मैं किस प्रकार पराए भोजन से अपने को पालूँ अहो बड़े कष्ट की बात है कि वह भी दूसरा मृत्यु का द्वार है।

यह सोचकर भी लोभ से फिर उसका धन लेने की ठानी।

जैसे कहा है—

लोभेन बुद्धिः—

(९७) लोभ से बुद्धि चलती है, लोभ ही तृष्णा को उत्पन्न करता है और तृष्णा से दुःखी व्यक्ति इस लोक और परलोक में कष्ट पाता है।

फिर उस वीणाकर्ण संन्यासी ने धीरे धीरे चलते हुये मुझ को एक जीर्ण (फटाहुआ) बांस का टुकड़ा मारा और मैं सोचने लगा—

धनलुब्धों—

(९८) जिस के मन में सन्तोष नहीं है उस को सभी विपत्तियाँ आती हैं। क्योंकि धन का लोभी असन्तोषी, अस्थिर मन वाला और अजितेन्द्रिय हो जाता है।

सन्तोषामृत—

(९९) सन्तोष रूपी अमृत को पिए हुए शांतचित वालों को जो सुख है, वह सुख इधर उधर फिरने वाले धनलोलुपों को कहाँ है।

पृ० २३—तेनाधीतं—

(१००) जिसने आशा को छोड़ निराशा का सहारा लिया है, उसी ने पढ़ा उसी ने सुना और उसी ने सब कुछ कर लिया।

और भी—

न योजन शातं—

(१०१) जिसे तृष्णा ने सताया है उसे सौ योजन भी

कहाँ दूर है और असन्तोषी के हाथ में धन आने पर भी वह उस का आदर नहीं करता।

सो यहाँ इस अवस्था के योग्य कार्य का निश्चय करना कल्याणकारी है।

त्यजेदेकं—

(१०२) कुल की मर्यादा के लिए एक को, गाँव भर के लिए कुल को, देश के लिए गांव को और अपने लिये पृथ्वी को छोड़ देना चाहिए।

पानीयं वा निरायासं—

(१०३) एक ओर बिना प्रयत्न के मिला पानी है और दूसरी ओर डर से युक्त मिला हुआ स्वादु भोजन है इन दोनों में से विचार पूर्वक देखता हूँ तो उसी में सुख पाता हूँ, जिस में सन्तोष हो।

यह विचार कर मैं इस निर्जन बन में आया हूँ।

वरं बनं व्याघ्र—

(१०४) शेरों और हाथियों से भरे बन में पेड़ों के नीचे पके हुए कन्द मूल फल खाकर जलपान करना और घास के ऊपर सोना और छाल का पहिरना अच्छा है परन्तु भाई बन्धुओं के बीच में धनहीन जीना अच्छा नहीं।

फिर मेरे पुण्य के उदय से इस मित्र ने परम स्नेह से मुझे अनुगृहीत किया। और अब पुण्य की परम्परा से तुम्हारा आश्रय मुझे स्वर्ग के समान मिल गया।

संसार विषवृक्षस्य—

(१०५) क्योंकि संसार रूपी विषवृक्ष के दो ही रसीले फल हैं अर्थात् एक तो अमृत के रस का स्वाद और दूसरा सज्जनों का संग।

मन्थर ने कहा—

अर्थाः पादरजोपमाः—

(१०६) धन तो पैरों की धूलि के समान है, यौवन पहाड़ी नाले के वेग के समान है, आयु चपल जल की बूंद के समान चंचल है, जीवन झाग (फेन) के समान है इस लिए जो निबुर्द्धि स्वर्ग की अर्गला अरल को खोलने वाले धर्म को नहीं करता, वह पीछे बुढ़ापे में पछता कर दुःख की आग से जलता रहता है।

तुमने बहुत (धन) इकट्ठा किया था उस का यह दोष है, सुनो—

उपार्जितानाम्—

(१०७) गहरे तलाब में भरे हुए जल के चारों ओर निकलने के समान (पानी निकलने से तालाब स्वच्छ रहता है) कमाए हुए धन का दान करना ही रक्षा है।

निजंसौख्यं—

(१०८) जो मनुष्य अपने सुखों की ओर ध्यान न करता हुआ धन इकट्ठा करने की इच्छा करता है वह दूसरे के निमित्त भार ढोने वाले के समान क्लेश भोगने वाला है।

दानो—

(१०६) यदि धनी—दान और उपभोगहीन धन से धनी होते हैं, तो—क्या उसी धन से हम धनी नहीं हैं?

और सूनिए।

कर्तव्यः—

(११०) धन को इकट्ठा तो करना चाहिए, पर अधिक इकट्ठा न करना चाहिए, देखो अधिक संचय करने वाला वह गीदड़ धनुष से मारा गया।

उन्होंने ने कहा—कैसे? मन्थर कहने लगा।

संचयशील शृंगाल की कथा

कल्याण कटक बस्ती में एक भैरव नाम का बहेलिया रहता था। वह एक दिन हिरण को ढूंढता हुआ विन्ध्या चल के आरण्य में गया। वहां पर मरे हुए मृग को लेकर जाते हुए उस (शिकारी) ने एक भयानक सूअर को देखा, तब उस व्याध ने हरिण को भूमि पर रख कर सूअर को बाण से मारा। सूअर ने भी भयंकर गर्जना कर उस बहेलिये की कमर में ऐसी चोट मारी कि वह कटे हुए वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ा।

उन दोनों के पैरों की रगड़ से एक सांप भी मारा गया। वहां भोजन को ढूँढता हुआ दीर्घराव नाम का गीदड़ भाग्यवश आया जिसने मृग, बहेलिया, सूअर और साँप सभी को मरे देख सोचा—"कि आज मेरे लिये बड़ा भोजन तैयार है।"

जो कुछ भी हो, इन के मांस से मेरे तीन महीने सुख से कटेंगे।

मासमेकं नरो—

(१११) एक महीना मनुष्य को खा कर, दो महीने हरिण और सूअर को खा कर तथा एक दिन सांप को खा कर व्यतीत होगा और आज धनुष की डोरी चबानी चाहिये।

पृ० २४—फिर पहिली भूख में स्वादरहित धनुष में लगी हुई डोरी को खाता हूँ। यह सोच ऐसा करने पर तांत के बन्धन के टूटते ही उछले हुए धनुष से उसका हृदय फट गया और वह दीर्घराव गीदड़ मर गया। इसलिए कहता हूँ "कर्तव्यः सञ्चयः नित्यम् इत्यादि"

इसलिये मित्र तुम को सदा ही उत्साह से रहना चाहिये।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति—

(११२) शास्त्रों को पढ़ कर भी मूर्ख होते हैं परन्तु जो क्रिया में चतुर है, वही सच्चा पण्डित है, जैसे अच्छी प्रकार से निर्णय की गई औषधि भी केवल नाम मात्र से बीमारी को दूर नहीं कर देती।

इसलिये हे मित्र, इस विशेष दशा में शान्ति करनी चाहिये। और इसे भी तुम्हें अधिक क्लेश नहीं मानना चाहिये।

क्योंकि—

निपानमिव मण्डूका—

(११३) जैसे मैंडक बावड़ी में और पक्षी भरे तालाब की ओर आते हैं वैसे ही सब सम्पत्तियां उद्योगी पुरुष के पास जाती हैं।

सुखमापतितं सेव्यं—

(११४) जैसे आया हुआ सुख सेवनीय है, वैसे ही दुःख भी क्योंकि सुख और दुःख पहिये की तरह घूमते हैं (सुख के पश्चात् दुःख और दुःख के पश्चात् सुख आते हैं)।

उत्साहसंपन्नमदीर्घसूत्रं—

(११५) उत्साही, अनालस, कार्य की विधि को जानने वाले और जुआ आदि कुकर्मों से रहित, शूर, उपकार को मानने वाले और पक्की मित्रता वाले पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं रहने के लिये खास तौर पर आती है।

विनाप्यर्थैवीरः—

(११६) वीर पुरुष बिना ही धन के सम्मान की ऊँची पदवी को पाता है और कृपण धन वाला होने पर भी तिरस्कृत होता है। क्या कुत्ता सोने की माला पहन कर भी, स्वभाव से प्रकाशमान, सम्पूर्ण गुणों को प्रकट करने वाली सिंह की कांति को

पा सकता है ?

धनवानिति हि—

(११७) मैं धनवान हूं, यह मुझे मद है, क्या धनहीन हो कर विषाद को प्राप्त हो जाऊँ ? मनुष्यों का ऊँचा नीचा होना हाथ से उछाली हुई गेंद के समान है।

हे मित्र !

पृ० २६—येन शुक्लीकृता हंसा—

(११८) जिसने हंसों को सफेद, तोतों को हरा और मोरों को विचित्र बनाया है वही तुझे आजीविका (काम) देगा।

और हे मित्र ! सत्पुरुषों का रहस्य सुनिये—

जनयन्त्यर्जने दुःखं—

(११९) जो कमाने में दुःख, और आपत्तियों में संताप करते हैं और अधिक बढ़ने से मदांध कर देते हैं। ऐसे धन कैसे सुखदायक हो सकते हैं।

हे भ्रातः और भी सुन—

धनस्तावदसुलभः—

(१२०) पहिले तो धन का मिलना कठिन, मिल जाये तो उसकी रखवाली कष्ट से होती है और मिले हुए धन का नाश मृत्यु के समान है इस लिये ये धन भला किस प्रकार सुखदायी हो सकते हैं।

यद्यदेव हि—

(१२१) मनुष्य ज्यों ज्यों इच्छा करता है, त्यों त्यों बढ़ती जाती है। वास्तव में मिला हुआ धन वह है जिस से इच्छा की निवृत्ति होती है।

और मेरे बहुत पक्षपात से क्या है ? अपना समय मेरे साथ

ही यहां बिताएँ। यह सुन कर लघुपतनक ने कहा—हे मन्थर! तुम धन्य हो और तुम प्रशंसनीय गुणों वाले हो।

क्योंकि—

सन्त एव—

(१२२) सत्पुरुष ही सत्पुरुषों की विपत्तियों को सदा दूर करने के योग्य होते हैं जैसे कीचड़ में फँसे हुए हाथियों के निकालने में हाथी ही समर्थ होते हैं।

श्लाघ्यः स एको—

(१२३) पृथ्वी पर मनुष्यों में वही श्लाघ्य है वही उत्तम पुरुष है और वही धन्य है जिस के पास याचक और शरणागत लोग (विमुख होकर) निराश फिर कर नहीं जाते हैं।

तब वे इस प्रकार इच्छा के अनुसार खाते-पीते, खेलते कूदते सन्तोष कर सुख से रहने लगे।

फिर कभी एक दिन चित्राङ्ग नाम का मृग किसी के डर के मारे उनसे आकर मिला। इसके पीछे कोई डर का कारण है यह सोच मन्थर तो पानी में घुस गया, चूहा बिल में घुस गया और कौआ उड़ कर पेड़ पर चला गया। तब लघुपतनक ने दूर तक देख कर "डर का तो कोई कारण नहीं है" यह सोचा। पीछे उसके वचन के आश्वासन से सभी मिल कर वहां आ गए।

पृष्ठ २७—मन्थर ने कहा—हे हरिण! तुम्हारा स्वागत हो। अपनी इच्छानुसार जल आहार आदि को ग्रहण करो और यहां रह कर इस बन को सनाथ करो।

चित्रांग ने कहा—"व्याध के भय से मैं तुम्हारी शरण आया हूँ और तुम्हारे साथ मित्रता करना चाहता हूँ।"

हिरण्यक ने कहा—'हमारे साथ आपकी मित्रता तो बिना यत्न के ही हो गई है।

क्योंकि –

औरसं कृतसंबन्धं—

(१२४) चार प्रकार के मित्र होते हैं। एक तो औरस या जन्मादि से (जैसे पुत्र, पुत्री), दूसरे विवाहादि सम्बन्ध से, तीसरे कुल-परम्परा से और चौथे जो आपत्तियों से बचावें।

"इसलिए आप यहाँ अपने घर से भी अधिक आनन्द से रहें।" यह सुन कर मृग सानन्द होकर अपनी इच्छानुसार भोजन करके तथा जल पीकर सरोवर के पास वाले पेड़ की छाया में बैठ गया। इसके अनन्तर मन्थर ने कहा "हे मृग! इस निर्जन वन में तुम्हें कौन डराता है? क्या यहाँ शिकारी फिरते हैं।

मृग ने उत्तर दिया—"कलिंग देश में रुकमाङ्गद नाम का राजा है और यह दिग्विजय करने के लिए आकर चन्द्रभागा नामक नदी के किनारे अपनी सेना के साथ टिका है। शायद प्रातःकाल वह इस कर्पूर सरोवर के किनारे ठहरेगा।' ऐसी चर्चा शिकारियों के मुख से सुनी जाती है। इसलिए प्रातःकाल यहां रहना भी भय का कारण है, यह सोच समय के अनुसार कार्य करना चाहिए।

यह सुन कछुये ने डर से कहा—'दूसरे तालाब में चलते हैं, कौए और हरिण ने भी कहा कि ऐसा ही हो।

तब हिरण्यक ने कहा—दूसरे सरोवर में पहुंचने पर तो मन्थर का कुशल है,—परन्तु इस का स्थल पर चलते हुए कौन रक्षक होगा?

पृ० २८—क्योंकि—

अम्भांसि जलजन्तूनां—

(१२५) जल में रहने वाले प्राणियों का जल (दुर्गवासियों का

दुर्ग) सिंहादि बनचरों को अपनी भूमि और राजाओं का मन्त्री परम बल होता है।

उसके हित के बचन का तिरस्कार कर बड़े मूर्ख की भांति वह मन्थर उस सरोवर को छोड़ कर चला।

वे हिरण्यक आदि भी स्नेह के कारण अनिष्ट की आशङ्का करते हुए मन्थर के पीछे पीछे चले।

फिर वन में घूमते हुए किसी व्याध ने स्थल में जाते हुए मन्थर को पाया।

उसे पाकर, उठा कर और धनुष में बांध कर क्लेश से उत्पन्न हुई भूख और प्यास से सताया हुआ अपने घर की ओर चला।

पीछे मृग, कौआ और चूहा, ये बड़ा दुःख मानते हुए उस के पीछे पीछे चले।

हिरण्यक विलाप करने लगा—

एकस्य दुःखस्य—

(१२६) समुद्र के छोर के समान जब तक मैं एक दुःख के पार नहीं पाता हूँ, तब तक मेरे लिए दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है क्योंकि एक अनर्थ (आपत्ति) के साथ अनेक बहुत से अनर्थ उपस्थित हो जाते हैं।

स्वाभाविकं तु—

(१२७) स्वाभाविक तौर पर स्नेह करने वाला मित्र है, वह तो अच्छे भाग्य से मिलता है, वह स्वाभाविक मित्रता को आपत्तियों में भी नहीं छोड़ता है।

न मातरि—

(१२८) मनुष्यों का माता में, न पत्नी में, न सगे भाई

में और न पुत्र में ऐसा विश्वास है जैसा स्वाभाविक मित्र में होता है।

अथवा यह ऐसा ही है—

कायः संनिहितापायः

(१२९) शरीर के पास ही उस का नाश है, सम्पत्तियाँ आपत्तियों का मुख्य स्थान हैं, संयोग के साथ वियोग है, इस संसार में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु नष्ट होने वाली है।

और फिर विचार कर बोला—

शोकाराति भय त्राणं—

(१३०) शोक और शत्रु के भय से बचाने वाला तथा प्रीति और विश्वास का पात्र यह दो अक्षर का 'मित्र' रूपी रत्न किस ने रचा है।

पृष्ठ २९—और भी

मित्र प्रीति रसायनं—

(१३१) जो मित्र नेत्रों और मन को प्रसन्न करने वाला, सुख दुःख में साथ देने वाला है, ऐसे मित्र से मेल हो, यह दुर्लभ है। विपत्ति के समय धन की अभिलाषा रखने वाले मित्र हर स्थान पर मिल जाते हैं, परन्तु उन के परखने की कसौटी तो विपत्ति का समय ही है।

इस प्रकार बहुत सा विलाप कर के हिरण्यक ने चित्रांग और लघुपतनक से कहा—जब तक यह शिकारी बन से न निकल जाये, तब तक मन्थर को छुड़ाने का यत्न करो।

उन दोनों ने कहा—जल्दी ही कर्तव्य कार्य कहिए।

हिरण्यक ने कहा—चित्रांग जल के पास जा कर मरे हुए के समान अपना शरीर दिखावे और कौआ उस पर बैठ कर चोंच से कुछ कुछ खरोचे। यह व्याध कछुए को अवश्य वहां छोड़

कर हरिण के मांस के लालच के कारण जल्दी जायगा, फिर मैं मन्थर के बन्धन काट डालूँगा । व्याध के समीप आने पर आप दोनों ने भाग जाना ।

चत्रांग और लघुपतनक ने शीघ्र जा कर वैसा ही किया तब उस व्याध ने पानी पी कर एक पेड़ के नीचे बैठ कर मृग को उस प्रकार देखा। फिर कछुए को वहीं रख कर छुरी ले कर आनन्दित हो मृग के पास गया। इतने में हिरण्यक ने आ कर कछुए के बन्धन काट दिए ।

वह कछुआ शीघ्र ही तालाब में घुस गया ।

वह मृग उस व्याध को पास आता देख उठ कर भाग गया ।

जब व्याध लौट कर पेड़ के नीचे आया, तब कछुए को न देख कर चिन्ता करने लगा—बिना विचारे कार्य करने वाले मेरे साथ यही उचित था ।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य—

(१३२) क्योंकि जो निश्चित को छोड़ कर अनिश्चित पदार्थ का विश्वास करता है उस के निश्चित पदार्थ तो नष्ट हो जाते हैं और अनिश्चित तो पहले ही नष्ट हैं ।

फिर वह अपने भाग्य को कोसता हुआ निराश हो कर अपने डेरे में गया। मन्थर आदि भी सभी आपत्तियों से निकल कर अपने अपने स्थान पर सुख से रहने लगे ।

पृष्ठ ३०—इस प्रकार सुन राजपुत्रों ने प्रसन्न हो कर कहा—यदि वे सब सुखी हो कर रहने लगें तो हमारा मनोरथ सिद्ध हो गया ।

विष्णुशर्मा ने कहा—यह आपकी अभिलाषा पूर्ण हो गई ।

बाल-हितोपदेश का 'मित्रलाभ' नाम कहानियों
का पहला संग्रह समाप्त ।

अथ सुहृद्भेद

पृष्ठ ३१

फिर राजपुत्र बोले—आर्य ! हमने मित्रलाभ तो सुन लिया, अब सुहृद्भेद सुनना चाहते हैं।

विष्णुशर्मा ने कहा—सुहृद्भेद सुनिए, जिस का यह पहिला श्लोक है—

वर्धमानो—

(१) बन में सिंह और बैल का बढ़ा हुआ बड़ा स्नेह चुग़लखोर और अति लोभी गीदड़ ने नष्ट कर दिया।

राजपुत्र बोले—"यह कैसे ? विष्णुशर्मा ने कहा—

सञ्जीवक पिंगलक कथा

दक्षिण दिशा में सुवर्णवती नाम की नगरी थी, उस में वर्धमान नाम का एक बनिया रहता था। उस के पास बहुत धन होने पर भी अपने दूसरे भाई-बन्धुओं को अधिक धनवान् देख कर उसकी इच्छा हुई कि और अधिक धन बढ़ाना चाहिए।

क्योंकि अधोऽधः पश्यतः—

(२) नीचे नीचे, अर्थात् अपने से छोटे (या दरिद्री) को देख कर किस की महिमा नहीं बढ़ती है ? अर्थात् सब का अभिमान बढ़ जाता है और अपने से ऊपर ऊपर अधिक धनवानों को देख कर सब लोग अपने को दरिद्री समझते हैं।

ब्रह्महापि नरः—

(३) जिसके पास बहुत धन है, वह ब्रह्म (वेद, ब्राह्मण) घातक मनुष्य भी सत्कार पाता है और चन्द्रमा के समान अतिनिर्मल वंश में उत्पन्न भी निर्धन मनुष्य तिरस्कार प्राप्त करता है।

और जैसे कहा है।

अलब्धं चैव—

(४) न पाये गए धन को पाने की इच्छा करे, पाये हुए धन की चोरी आदि से रक्षा करे, रक्षा किए हुए धन को व्यापार आदि से बढ़ाए और अच्छी तरह बढ़े हुए धन को सत्पात्र में दान करे।

क्योंकि लाभ की इच्छा न करने वाले को उद्योग न करने के कारण धन मिलता ही नहीं एवं प्राप्त हुए परन्तु रक्षा न किये गए धन के खजाने का भी आप नाश हो जाता है। और न बढ़ाया धन कुछ काल के बाद थोड़ा थोड़ा खर्च होकर अञ्जन की तरह नष्ट हो जाता है और यदि भोगा नहीं गया है तो वह वृथा ही है।

और जैसे कहा है।

पृष्ठ ३२—धनेन किं—

(५) उसके धन से क्या, जो न दिया जाता है और न खाया जाता है, उस के बल से क्या जो वैरियों को नहीं सताता है, उस शास्त्र से क्या, जो जितेन्द्रिय नहीं है।

जलबिन्दुनिपातेन—

(६) जैसे जल की एक २ बूँद के गिरने से धीरे २ घड़ा भर जाता है, वही कारण सब प्रकार की विद्याओं का, धन का और धर्म का भी है।

दानोपभोगरहिता—

(७) दान और भोग के बिना जिसके दिन जाते हैं, वह लोहार की धोंकनी के समान सांस लेता हुआ भी मरे हुए के समान है।

इस प्रकार सोच कर नन्दक और संजीवक नाम के दो बैलों को धुरी में जोतकर और छकड़े को नाना प्रकार की वस्तुओं से लाद कर व्यापार के लिए काश्मीर की ओर चला।

फिर जाते हुए उस (व्यापारी) का सुदुर्ग नामक महारण्य में संजीवक नाम का बैल घुटना टूट जाने से गिर पड़ा।

उस को देख वर्धमान सोचने लगा—

करोतुनाम —

(८) नीतिज्ञ मनुष्य इधर उधर चाहे कितना व्यापार करे, पर फल उस को उतना ही मिलता है जितना विधाता के जी में है।

यह विचार कर संजीवक को वहां छोड़ कर, वर्धमान स्वयं धर्मपुर नामक नगर में जाकर एक और दूसरे बड़े शरीर वाले बैल को लाकर और उसे जुए में जोत कर चल दिया।

फिर संजीवक भी बड़े कष्ट से तीन खुरों पर भार डालता हुआ उस बन में रहने लगा क्योंकि—

निमग्नस्य—

(९) समुद्र में डूबे हुए, पर्वत से गिरे हुए तथा तक्षक नाग नामक सर्प से डसे हुए की भी आयु ही रक्षा करती है।

नाकाले—

(१०) यदि मृत्यु का समय न हो तो सैकड़ों बाणों के विंधने से भी प्राणी नहीं मरता है और जो काल आ जाय तो कुशा की नोक से छुआ हुआ भी मर जाता है।

अरक्षितं—

(११) दैव से रक्षा किया हुआ, बिना रक्षा के भी जीता है, और अच्छी तरह रक्षा किया हुआ भी दैव का मारा नहीं बचता

है, जैसे वन में छोड़ा हुआ सहाय-हीन भी जीता रहता है, घर पर उपाय करने से भी नहीं जीता है।

पृष्ठ ३३—फिर कितने ही दिनों के बाद संजीवक अपनी इच्छानुसार खा पी कर बन में फिरता फिरता हृष्ट पुष्ट होकर ऊंचे स्वर से डकारने लगा, उसी बन में पिंगलक नामक एक सिंह अपनी भुजाओं से पाये हुए राज्य के सुख का उपभोग करता हुआ रहता था। जैसे कहा भी है—

नाभिषेको—

(१२) मृगों ने सिंह का न तो राज्यतिलक किया और न संस्कार किया, परन्तु सिंह अपने आप ही पराक्रम से राज्य को पाकर मृगों का राजा बनता है।

और वह एक दिन प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने तट पर गया और वहां उस सिंह ने अनोखी और असमय मेघ की गर्जना के समान संजीवक का डकारना सुना।

यह सुनकर पानी के बिना पिये वह घबराया सा लौट कर अपने स्थान पर आकर यह क्या है? यह सोचता हुआ चुपके बैठ गया।

मंत्री के पुत्र दमनक और करटक नाम के दो गीदड़ों ने उसे उस अवस्था में बैठा देखा। ऐसी स्थिति में दमनक करटक से कहने लगा—भाई करटक यह क्या बात है कि प्यासा स्वामी पानी को विना पिये डर से धीरे धीरे आ बैठा है?

करटक कहने लगा—भाई दमनक! हमारी समझ से तो इसकी सेवा ही नहीं करनी चाहिए। यदि ऐसे बैठा भी है तो हमें स्वामी की चेष्टा क निरूपण करने से क्या लाभ। क्योंकि

इस राजा से बहुत काल तक तिरस्कार किये गए हम दोनों ने बड़ा दुःख सहा है।

सेवया—

(१३) सेवा से धन को चाहने वाले सेवकों ने जो किया है, उसे देखो, शरीर को जो स्वतन्त्रता थी मूर्खों ने उसे भी गंवा दिया है।

पृष्ठ ३४—शीतवातातपक्लेशान्—

(१४) पराश्रित, शीत, वायु और धूप के जिन दुःखों को सहते हैं, उस दुःख के छोटे से छोटे भाग से तप करके बुद्धिमान् सुखी हो सकता है।

और भी—

मौनान्मूर्ख—

(१५) चुपचाप रहने से मूर्ख, बातें करने में चतुर होने से उन्मत्त अथवा वातुल, क्षमाशील होने से कायर, न सहने से अकुलीन, सर्वदा पार्श्व में स्थित रहने से घमण्डी कहलाता है, इसलिए सेवा का धर्म बड़ा कठिन है जो योगियों से भी नहीं हो सकता है।

विशेष करके—

प्रणमत्युन्नति हेतोः—

(१६) जो उन्नति के लिये झुकता है, जीने के लिये प्राणों को छोड़ता है और सुख के लिये दुःखी होता है, उस सेवक से बढ़ कर कौन मूर्ख है।

दमनक ने कहा—ऐसी बात तो तुम्हें मन में भी नहीं लानी चाहिए।

कथं नामः—

(१७) स्वामियों की सेवा यत्न से क्यों नहीं करनी चाहिये, अवश्य करनी चाहिये, जो सेवा से प्रसन्न होकर शीघ्र मनोरथ पूरे कर देते हैं।

और भी देखो—

कुतः सेवा विहीनानां—

(१८) जो स्वामी की सेवा नहीं करते उन को चंवर के डुलाने से प्राप्त होने वाला ऐश्वर्य, ऊँचे ऊँचे दंड वाले सफेद छत्र और घोड़े हाथियों की सेना कहाँ मिलती है ?

करटक बोला—तो भी हमें इस काम से क्या वास्ता। क्योंकि अयोग्य कामों में पड़ना सर्वथा त्यागने योग्य है।

दमनक ने कहा—"तो भी सेवक को स्वामी के काम की देखभाल अवश्य करनी चाहिए।

करटक बोला—जो सभी कार्यों के लिए ज़िम्मेवार है उसी प्रधान मन्त्री को यह कार्य करना चाहिए। क्योंकि सेवक को पराए काम की चर्चा कभी नहीं करनी चाहिये देखो—

पराधिकार चर्चा—

(१६) जो स्वामी के हित की इच्छा से पराए अधिकार की चर्चा करता है, वह रैंगने से मारे गये गधे के समान दुःखी होता है अथवा मारा जाता है।

दमनक ने पूछा—यह कैसे ? करटक कहने लगा—

पृष्ठ ३५—

कर्पूरपट रजक कथा

वाराणसी में एक कर्पूरपटक नामक धोबी रहता था। एक बार वह रात्रि को सोया तो उसके घर की चीजों को चुराने चोर आया।

उसके आङ्गन में गधा बंधा था और कुत्ता बैठा था।

इतने में गधे ने कुत्ते से कहा—"मित्र यह तुम्हारा काम है क्योंकर तुम ऊँचे शब्द से भौंक कर स्वामी को नहीं जगाते"।

कुत्ते ने कहा—"भाई! मेरे काम की चर्चा तुम्हें नहीं करनी चाहिए। क्या तू नहीं जानता जैसे मैं रात-दिन इनके घर की रक्षा करता हूँ, फिर भी यह बहुत काल से निश्चिन्त होकर मेरे उपयोग को नहीं मानता है। इस लिए आजकल वह मुझे भोजन देने में भी अनादर दिखा रहा है। आपति जब तक न आए तब तक स्वामी सेवकों की परवाह नहीं करते।

याचते कार्य काले—

(२०) गधे ने कहा—मूर्ख सुन! जो काम के समय मांगे वह निन्दित सेवक और निन्दित मित्र है।

कुत्ता बोला—जो कार्य के समय ही नौकरों से बात चीत करे, वह भी तो निन्दित स्वामी है।

फिर गधे ने क्रोध से कहा—अरे दुष्टमति! तू पापी है जो विपत्ति में स्वामी के काम का अनादर करता है। जो हो सो हो, जैसे स्वामी जाग पड़े, ऐसा कार्य मैं स्वयं करूँगा।

क्योंकि—

पृष्ठतः—

(२१) पीठ की तरफ से धूप सेके, पेट की ओर से अग्नि तापे, स्वामी, की सब प्रकार से, और निष्कपट भाव से परलोक की सेवा करे।

ऐसा कह कर उसने जोर से चीत्कार किया।

तब धोबी उसके रेंगने से जाग पड़ा और नींद के टूटने से उसने क्रोध के मारे उठ कर दण्ड से गधे को मारा जिस से वह मर गया। इस लिए मैं कहता हूँ 'पराये अधिकार की चर्चा को'।

देख पशुओं को ढूँढना हमारा काम है। अपने काम की चर्चा करो। (विचार कर) परन्तु आज उस चर्चा से भी कुछ प्रयोजन नहीं क्योंकि दोनों के भोजन से बचा हुआ आहार बहुत धरा है।

पृ० ३६—दमनक क्रोध से बोला—क्या तुम केवल भोजन के लिए ही राजा की सेवा करते हो? यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। क्योंकि—

सुहृदामुपकारकारणाद्—

(२२) मित्रों के उपकार के लिए और शत्रुओं के नाश के लिए चतुर मनुष्य राजा का आश्रय लेते हैं, केवल पेट कौन नहीं भर लेता?

जीविते यस्य—

(२३) जिसके जीने से ब्राह्मण, मित्र और भाई जीते हैं उसी का जीवन सफल है अपने लिए कौन नहीं जीता, अर्थात् सभी जीते हैं।

यस्मिञ्जीवतिः —

(२४) जिसके जीवित रहने पर बहुत से लोग जिएं वह तो जिये, और यूँ तो कौआ भी चोंच से अपना पेट भर लेता है।

पञ्चभिर्याति—

(२५) कोई मनुष्य केवल पांच ही पुराणों (सक्का विशेष) से दासत्व (नौकरी) को स्वीकार करता है, कोई लाखों से काम करता है और कोई लाखों से भी नहीं मिलता है।

और उसी प्रकार कभी कभी थोड़ा भी बहुत गिना जाता है।

कभी कभी—
स्वल्प स्नायुः—

(२६) कुत्ता थोड़ी सी नस और चरबी से मलिन बिना मांस की हड्डी को पाकर उसमें सन्तोष कर लेता है, यद्यपि उससे उस की भूख दूर नहीं होती है, परन्तु सिंह गोद में आए हुए सियार को छोड़ कर हाथी को मारता है कष्ट में फँसे हुए भी सब प्राणी अपने पराक्रम के अनुसार फल को चाहा करते हैं।

यज्जीव्यते:—

(२७) और विज्ञान, पराक्रम तथा यश से विख्याति पाकर जो मनुष्य क्षण भर भी जीते हैं, उसी जीने को इस संसार में पण्डित लोग सफल जीवन कहते हैं यों तो कौआ भी जीता है और देर तक बलि को खाता है।

यो नात्मजे—

(२८) और भी जो न अपने पुत्र पर, न गुरु पर और न सेवकों पर, न दीन बांधवों पर दया करता है, उसके जीने से मनुष्य-लोक में क्या लाभ है, अर्थात् कुछ भी नहीं। और यों तो कौआ भी बहुत काल तक जीता है और बलि खाता है।

और भी -
पृ० ३७—अहितहित—

(२९) कल्याण और अकल्याण के विचार से रहित बुद्धि वाले वेदों के नियमों से तिरस्कृत, अर्थात जिस का जीवन वेदों के अनुकूल नहीं है। और जिस की इच्छा केवल पेट भरना ही है ऐसे पुरुष रूप पशु में और केवल पशु में क्या अन्तर है अर्थात् ज्ञान से हीन केवल भोजनार्थी मनुष्य पशु के समान है।

करटक ने कहा—"हम दोनों मन्त्री नहीं हैं, फिर हमें इस विचार से क्या ?"

दमनक ने कहा—"कुछ काल में मन्त्री प्रधानता और अप्रधानता को पा लेते हैं।"

न कस्यचित्:—

(३०) इस संसार में कोई किसी के लिए स्वभाव से (जन्म से) हितचिन्तक या दुष्ट नहीं समझा जाता है; मनुष्य को उस के कर्म ही बड़प्पन अथवा नीचपन तक पहुंचा देते है।

यात्यधोऽधः:—

(३१) मनुष्य अपने कर्मों से ही कुएँ के खोदने वाले के समान नीचे, और राजभवन के बनाने वाले के समान ऊपर जाता है अथात् मनुष्य अपने उच्च कर्मों से उन्नति को और हीन कर्मों से अवनति को पाता है।

इस लिए यह ठीक है कि सब की आत्मा अपने ही यत्न के आधीन रहती है।

करटक ने कहा—फिर तुम अब क्या कहते हो ?

उसने कहा—हमारा यह स्वामी पिंगलक किसी न किसी कारण से घबराया-सा घेरा बना कर बैठा है। करटक ने कहा—क्या तुम इसका भेद जानते हो ? दमनक ने कहा—इस में क्या अविदित (न जाना हुआ) है ?

उदीरतोऽर्थः:—

(३२) जताए हुए अभिप्राय को पशु भी समझ लेता है, इशारों से समझाए हुए घोड़े और हाथी बोझ को ढोते हैं। पण्डित बिना ही कहे मन की बात तर्क से जान लेता है; क्योंकि पराए चित्त का भेद लेना ही बुद्धियों का फल है।

आकारः—

(३३) आकार से, ईशारों के भाव से, चाल से, काम से, बोलने से, नेत्र और मुँह के विकार से औरों के मन की बात जान ली जाती है।

पृ० ३८-इस भय के समय पर बुद्धि के बल से मैं इस स्वामी को अपना कर लूँगा।

करटक ने कहा—मित्र! तुम सेवा धर्म से अनभिज्ञ हो

अनाहूतो—

(३४) जो मनुष्य बिना बुलाये किसी काम में दखल दे, बिना पूछे बहुत बोलने लग जाए और अपने को राजा का मित्र समझे वह मूर्ख है।

दमनक ने कहा—कैसे मैं सेवा विधि से अनभिज्ञ हूं। देखो—

किमप्यस्ति—

(३५) क्या कोई वस्तु स्वभाव से सुन्दर या असुन्दर होती है। क्योंकि जो वस्तु जिस को रुचती है, वह उस को सुन्दर लगती है।

यस्य यस्य—

(३६) बुद्धिमान को चाहिये कि जिस मनुष्य का जैसा भाव हो, उस के अनुसार ही उस का अनुसरण करे अर्थात् उस से मिल कर उसे वश में कर ले।

करटक ने कहा—शायद कभी तुम्हारे बगैर मौके जाने पर स्वामी तेरा अनादर कर दे।

उस ने उत्तर दिया—"ऐसा हो, तो भी सेवक को स्वामी के पास अवश्य जाना चाहिए" क्योंकि—

दोष भीते—

(३७) दोष के डर से किसी काम का आरम्भ न करना कायर पुरुष का चिह्न है, हे भाई! अजीर्ण के भय से कौन भोजन को छोड़ देता है। देखिए—

आसन्नमेव—

(३८) पास रहने वाला कैसा ही विद्याहीन, मलिन तथा कुलहीन मनुष्य क्यों न हो राजा उसी से हित करने लगता है, क्योंकि राजा स्त्रियाँ और बेलें; इन के जो पास रहता है, ये उसे ही लपेट लेती हैं।

करटक बोला—'वहां जा कर आप क्या कहोगे'। वह बोला—सुनो। पहिले यह जानूँगा कि स्वामी मेरे ऊपर प्रसन्न है अथवा विरक्त है। करटक बोला इस बात को जानने का क्या चिह्न है।

दमनक ने कहा - सुनो!

पृष्ठ ३९—दूरादवेक्षणं—

(३९) दूर से देखना, हँसना, समाचारादि पूछने में अधिक आदर करना, पीठ पीछे गुणों की बड़ाई करना और प्रिय वस्तुओं के प्राप्त होने पर स्मरण रखना।

तत् सेवके—

(४०) सेवक में भी प्रेम दिखाना, अच्छी तरह से बोल कर धन आदि का देना, दोषों में भी गुणों का ग्रहण करना ये स्नेह युक्त स्वामी के चिह्न हैं।

यह जान कर जैसे यह मेरे वश में हो जाएगा वैसे करूँगा।

अपाय संदर्शनजां—

(४१) पण्डित लोग नीति शास्त्र के अनुसार बुराई के होने से उत्पन्न विपत्ति को और उपाय से उत्पन्न हुई कार्य सिद्धि को आंखों के सामने साफ झलकती हुई सी दिखला देते हैं।

करटक ने कहा—तो भी बिना प्रसंग के तुम न बोलना।

दमनक ने कहा—मित्र! डरो मत, मैं बिना अवसर की बात नहीं करूँगा।

क्योंकि -

आपद्युन्मार्गगमने:—

(४२) आफत में, कुमार्ग में चलने पर, और कार्य का समय टल जाने पर भला चाहने वाले सेवक को विना पूछे भी कहना चाहिये।

और जो अवसर पा कर भी मैं परामर्श नहीं दूंगा तो मेरा मन्त्री होना ही अयुक्त है। क्योंकि

कल्पयति येन—

(४३) मनुष्य जिस गुण से धन कमाता है, जिस गुण के कारण इस संसार में अच्छे लोगों से प्रशंसित होता है, गुणी को उस गुण की रक्षा करनी चाहिए और बड़े यत्न से उसे बढ़ाना चाहिए।

इसलिए हे प्यारे! मुझे आज्ञा दो। मैं जाता हूं।"

करटक ने कहा—"आप का कल्याण हो। तुम्हारा मार्ग शुभ हो। इच्छानुसार कार्य कीजिए।

इस प्रकार दमनक कुछ चकित सा पिंगलक के पास गया।

तब दूर से ही बड़े आदर से राजा से अन्दर प्रविष्ट किया हुआ वह साष्टाङ्ग प्रणाम करके बैठ गया। राजा ने कहा - बड़ी देर बाद देखे गये हो।

दमनक ने कहा—यद्यपि मेरे जैसे सेवक से महाराज को कोई मतलब नहीं है, तो भी समय आने पर सेवक को (सहायता करने के लिए) अवश्य पास आना चाहिए—इसलिए मैं आया हूं। और भी

पृष्ठ ४०—दन्तस्य—

(४४) हे राजन्! दांतों के कुरेदने वाले और कान को खुजलाने वाले तिनके से भी राजाओं को काम पड़ता है, फिर

शरीर, वाणी, और हाथों वाले मनुष्य का तो कहना ही क्या अर्थात् उस से तो काम अवश्य ही पड़ता है।

यद्यपि बहुत काल से मुझ अनादर किये गए की बुद्धि के नाश की महाराज शंका कर रहे हैं, अर्थात् समझ रहे हैं कि मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है आप को यह शंका नहीं करनी चाहिए—क्योंकि

कदर्थितस्यापिः—

(४५) आदर न किये गए अर्थात् तिरस्कृत भी धैर्यशाली की बुद्धि के नाश की शंका नहीं करनी चाहिए, जैसे नीचे की ओर की गई भी आग की लपट कभी नीचे की ओर नहीं जाती, हमेशा ऊँची ही रहती है।

हे महाराज! इस लिए हमेशा स्वामी को विशेषज्ञ होना चाहिए। क्योंकि—

निर्विशेषो—

(४६) जब राजा अच्छे और बुरे सब के साथ समान बर्ताव करता है, उन में विशेषता नहीं रखता तब उद्योगियों का भी उत्साह टूट जाता है।

और भी—

त्रिविधापुरुषाः—

(४७) हे राजन! उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के मनुष्य हैं, उसी क्रम से इन तीनों प्रकार के मनुष्यों को तीन प्रकार के कार्यों में नियुक्त करना चाहिए।

स्थान एवं—

(४८) सेवक और गहनों को उनके उचित स्थान में लगाया जाता है, जैसे मुकुट को पैर में और पायजेब को सिर पर नहीं पहिना जाता।

कनकभूषणः—

(४६) सोने के गहने में जड़ने लायक मणि को यदि सीसे अथवा काँच आदि धातु के गहने में जड़ दिया जाए, तो मणि न तो कुछ शब्द करती है, अर्थात् बोलती है कि यह मेरे अयोग्य स्थान है और न शोभित होती है, परन्तु जोड़ने वाले कलाकार की बुराई होती है।

और भी—

अवज्ञानाद्राज्ञा—

(५०) राजा यदि अपमान करे तो सेवक बुद्धिहीन हो जाते हैं, पीछे उसकी प्रधानता के कारण पंडित लोग भी उसके पास नहीं जाते हैं। पण्डितों से छोड़े हुए राज्य में नीति फलदायक नहीं होती और नीति के बिगड़ जाने से संसार बेबस हो कर पुनः दुःख पाता है।

बालादपिः—

(५१) पंडितों को बालक से भी योग्य बात ग्रहण करनी चाहिए क्या सूर्य के न होने पर दीपक का उजाला नहीं होता।

पिंगलक ने कहा—भद्र दमनक ! यह क्या बात है। तू हमारे प्रधानामात्य का पुत्र होकर भी इतने काल तक किसी दुष्ट के सिखाने से नहीं आया। इस समय जो तेरी इच्छा है कर।

दमनक ने कहा—"देव मैं कुछ पूछता हूँ।"

पिंगलक ने कहा—"कहिए"

पृष्ठ ४१—दमनक ने कहा—प्यासे होकर भी आप पानी बिना पिये कुछ चकित से क्यों बैठे हैं ?

पिंगलक ने कहा—तूने अच्छी बात पूछी ? यह एकान्त में कही जाने वाली बात के लिए कोई विश्वासपात्र नहीं है। फिर भी

यहां एकान्त में कहता हूं। सुनिये अब यह वन अजीब वन्य पशुओं से युक्त है। अतः मुझे इसे त्यागना पड़ेगा। इसी कारण मैं घबराया हुआ हूं। तुमने भी उस भयंकर और नई आवाज़ को सुना होगा। शब्द से तो ऐसा पता चलता है कि उस प्राणी में काफी बल है।

दमनक ने कहा—महाराज! यह बड़े भय का कारण तो है। वह शब्द तो हमने भी सुना है परन्तु वह अच्छा मन्त्री नहीं जो पहिले भूमि को छोड़ने का तथा पीछे लड़ने का उपदेश देता है। परन्तु इस संशयपूर्ण काम में ही सेवकों की उपयोगिता (आवश्यकता) जाननी चाहिए। क्योंकि—

बन्धु स्त्री—

(५२) बन्धु, स्त्री, सेवक, अपनी बुद्धि और अपनी शक्ति इनके उत्कर्ष को मनुष्य विपत्तिरूपी कसौटी पर जान लेता है।

सिंह ने कहा—भद्र! मुझे तो यह बड़ा भय दुःखी कर रहा है।

फिर दमनक ने अपने मन में कहा—यह न होता तो राज्य का सुख छोड़ कर दूसरे स्थान में जाने के लिये मुझ से क्यों कहते?

(प्रकट कहता है)—महाराज! जब तक मैं जीता हूं, तब तक भय नहीं करना चाहिए। किन्तु करटक आदियों को भी आश्वासन देना चाहिए, क्योंकि विपत्ति के प्रतिकार के समय मनुष्यों का इकट्ठा होना आसान नहीं।

तब राजा ने सभी प्रकार से उन दोनों (दमनक करटक) का सत्कार किया और वे दोनों भय के उपाय की प्रतिज्ञा करके चले गए।

चलते चलते करटक ने दमनक से कहा—'मित्र ! भय के कारण का उपाय सम्भव है अथवा असम्भव है यह बिना जाने भय के दूर करने की प्रतिज्ञा कर कैसे यह बड़ी कृपा स्वीकार करली ? क्योंकि उपकार करने वाले को किसी की भेंट नहीं लेनी चाहिए बिशेष करके राजा की। देखो—

यस्यप्रसादे:—

(५३) जिसके प्रसाद में लक्ष्मी रहती है, पराक्रम में जय रहती है और गुस्से में मौत रहती है वह सचमुच तेजस्वी होता है।

जैसे—

बालोऽपि—

(५४) बालक राजा को भी मनुष्य समझ कर छोटा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि यह मनुष्य के रूप में बड़ा देवता है।

दमनक ने हंसकर कहा—मित्र तुम चुप बैठे रहो। मैंने भय का कारण जान लिया है। यह तो बैल की आवाज़ थी और बैल तो हमारा भी भोजन है फिर सिंह का क्या कहना है ? करटन ने कहा"—यदि ऐसा ही है तो फिर स्वामी का भय वहीं क्यों नहीं दूर कर दिया ? दमनक ने कहा—यदि स्वामी का भय का कारण वहीं बता देता तो इन सुन्दर वस्त्र आभूषणों का लाभ कैसे होता ?

और भी—

निरपेक्षो—

(५४) सेवकों को चाहिए कि स्वामी को कभी निश्चिन्त न बैठने दें (कुछ न कुछ झगड़ों में लगाते रहें) क्योंकि सेवक स्वामी को अपेक्षारहित (बेपरवाह) करके दधिकर्ण बिल्ले के समान मारा जाता है।

दधिकर्ण विडालस्य कथा

उत्तर दिशा के मार्ग में अर्बुद शिखर नामक पहाड़ पर महाविक्रम नाम का सिंह रहता था। जब यह सिंह पहाड़ की गुफाओं में सोता था तो इस की सटा के बालों को एक चूहा नित्य काट जाता था, तब सटाओं के किनारे को कटा देख कर वृद्ध सिंह बिल में घुसे हुए चूहे को न पा कर सोचने लगा—

क्षुद्रशत्रुः—

(५६) जो शत्रु छोटा हो और पराक्रम से उसका मुकाबला न किया जा सके तो उसको मारने के लिये उसकी बराबरी का सैनिक उसके सम्मुख कर देना चाहिये।

यह सोचकर उस ने गाँव में जा कर और विश्वास दिलाकर दधिकर्ण नाम के बिल्ले को यत्न से ला कर मांस का आहार देकर अपनी गुफा में रख लिया।

पीछे उस के भय से चूहा भी बिल से नहीं निकलता था।

जब शेर के बाल नहीं कटते थे तो वह सुख से सोता था जब जब चूहे के शब्द को सुनता था तब तब अत्यधिक मांस देकर उस बिल्ले को प्रसन्न रखता था।

पृ० ४३—फिर एक दिन भूख से पीड़ित बाहर फिरते हुए चूहे को बिल्ले ने पकड़ कर मार डाला।

पीछे जब उस सिंह ने बहुत समय तक चूहे को न देखा और उसका किया हुआ शब्द भी न सुना, तो उसके उपयोग के न रहने के कारण वह सिंह बिल्ले को रोटी देने में भी कम आदर करने लगा।

तब फिर भोजन के न मिलने से बिल्ला अत्यन्त दुःखी हुआ।

इसलिए मैं कहता हूँ—स्वामी को अपेक्षारहित नहीं करना चाहिए"

इसके पश्चात् दमनक और कटरक दोनों संजीवक के पास गये।

वहां करटक बड़े ठाठ (रोभ) के साथ वृक्ष के नीचे ठहर गया।

दमनक सञ्जीवक के पास जा कर बोला—"ओ बैल ! राजा पिंगलक द्वारा बन की रखवाली के लिए नियुक्त यह सेनापति करटक आज्ञा देता है—"कि शीघ्र आ ! और यदि नहीं आओ तो हमारे बन से दूर चले जाओ। नहीं तो इसका फल तुम्हारे लिए बुरा होगा, न जाने क्रुद्ध स्वामी क्या कर डाले ?

फिर देश व्यवहार को न जानने वाले संजीवक ने डरते डरते पास जा कर करटक को साष्टाङ्ग प्रणाम किया—जैसे कहा है—

मतिरेव बलाद्—

(५७) शक्ति से बुद्धि ही अधिक बड़ी है, जिस बुद्धि के अभाव में हाथियों की यह दशा होती है। (बलवान् होने पर भी मति हीन होने से वह पराधीन होता है) मानों हथवान से बजाया गया नगाड़ा शब्द करता हुआ यही बात घोषित करता है।

फिर संजीवक डर से बोला—'हे सेनापति ! मुझे क्या करना चाहिए ? वह कहिए'।

करटक ने कहा—हे बैल ! इस बन में ठहरने की इच्छा है तो जाकर हमारे महाराज के चरण कमलों में प्रणाम करो।

संजीवक बोला—मुझे 'अभय वचन दो मैं चलता हूँ'।

यह सुन करटक ने कहा—'सुन रे बैल ! ऐसी शङ्का मत कर, क्योंकि—

पृष्ठ ४४—तृणानिः—

(५८) आंधी सब प्रकार से नीचे झुके हुए कोमल छोटे घास को नहीं उखाड़ती है, किन्तु बड़े बड़े फैले हुये पेड़ों को ही उखाड़ती है, क्यों कि बड़ा बड़े पर ही पराक्रम दिखाता है।

प्रतिवाचमदत्त—

(५९) श्रीकृष्ण ने गाली देते हुए चेदिराज शिशुपाल को जवाब नहीं दिया, क्योंकि सिंह बादल की गर्जना सुन कर हुँकार कर गरजता है, न कि सियार के चिल्लाने को सुन कर।

फिर वे दोनों दमनक और करटक संजीवक को कुछ दूर ठहरा कर अपने आप पिंगलक के पास गए।

फिर राजा से आदर सहित देखे गए वे दोनों प्रणाम कर बैठ गये।

राजा ने कहा—तुम ने उसे देखा ?

दमनक ने कहा—हां महाराज ! देखा ! परन्तु जैसा महाराज ने समझा था वैसे ही वह बड़े शरीर वाला है। किन्तु वह महाबली महाराज को देखना चाहता है। इस लिए सावधान हो कर बैठिए। केवल शब्दमात्र से ही नहीं डरना चाहिए। कहा भी है—

शब्दमात्रान्न —

(६०) शब्द का कारण बिना जाने केवल शब्द से ही नहीं डरना चाहिए जैसे शब्द का कारण जान कर कुट्टनी ने आदर पाया।

पिंगलक ने कहा—'यह कैसे ?' दमनक कहने लगा—

बानर-घंटा कथा

श्री पर्वत के बीच में एक ब्रह्मपुर नाम का शहर था। उसकी चोटी पर घंटाकर्ण नाम का राक्षस रहता था, लोगों में यह चर्चा सदा सुनी जाती थी।

एक दिन घण्टे को ले कर भागते हुए किसी चोर को बाघ ने मार डाला। उस के हाथ से गिरा घण्टा बानरों को मिला।

बन्दर उस घण्टे को प्रति क्षण बजाते हैं, तब मनुष्यों ने उस खाए गए मनुष्य को देखा और प्रति क्षण घंटे का शब्द भी सुनाई देता था।

इस के अनन्तर सब नगरवासी लोग—"घंटाकर्ण क्रोध से मनुष्यों को खाता है और घंटे को बजाता है" यह बात फैला कर नगर से भाग चले।

पृष्ठ ४५—तब कराला नाम की स्त्री ने यह सोचा—"कि यह घंटा मौके पर नहीं बज रहा है; तो क्या बन्दर इसे बजाते हैं? इस बात की अच्छी तरह से जांच पड़ताल कर के राजा से कहा—यदि कुछ धन खर्च करो तो इस घण्टाकर्ण राक्षस को मैं अपने वश में कर लूँ।

फिर राजा ने उसे बहुत सा धन दिया।

और कराला ने गोल चक्कर बना कर उस में गणेशादि के पूजा के महात्म्य को दिखा कर, बन्दरों को प्रिय लगने वाले फल ले कर और बन में जा कर उन्हें बिखेर दिया।

बन्दरों ने घण्टा छोड़ दिया और आप फल खाने में लीन हो गए। कराला नगर में घंटा ले आई और सभी ने उस का सत्कार किया। इसी लिए मैं कहता हूँ "केवल शब्द से ही नहीं डरना चाहिए।"

तब संजीवक को ला कर पिंगलक के दर्शन करवाए और वह वहाँ ही बड़ी प्रीति से रहने लगा।

पीछे एक दिन उस सिंह का भाई स्तब्ध कर्ण नाम का सिंह आया। उसका आदर-सत्कार कर के और अच्छी तरह बिठा कर पिंगलक उस के भोजन के लिए पशु मारने चला—

इतने में संजीवक ने पूछा—देव ! "आज मारे हुए हरिणों का माँस कहाँ है ?"

राजा ने कहा—'दमनक व करटक जानते होंगे।'

संजीवक—"पता तो कीजिए कि कुछ मांस बचा है या नहीं।"

राजा—[सोच कर] अब वह नहीं है।

संजीवक—"उन दोनों ने इतना मांस कैसे खा लिया"।

राजा—'खाया, बांटा और कुछ नष्ट कर दिया। यहां तो रोज़ यही क्रम है।

संजीवक—क्या महाराज के ज्ञान के बिना अर्थात् आप को बिना बताए ही ऐसा किया जाता है ?

राजा—"मेरे पीछे ही ऐसा किया जाता है"।

संजीवक—"यह बात ठीक नहीं है"। कहा भी है—

पृष्ठ ४६—नानिवेद्य—

(६१) हे राजन् ! आपत्ति को दूर करने के उपाय के अतिरिक्त स्वामी को बिना सूचित किए और कुछ भी काम सेवक को स्वयं न करना चाहिये।

सद्यमात्य:—

(६२) वही मन्त्री उत्तम है जो कोष को लगातार दमड़ी दमड़ी कर के बढ़ाए। क्योंकि कोष युक्त राजा का कोष ही प्राण

है, केवल प्राण ही प्राण नहीं हैं। अतएव कोष को प्राणों से भी सम्हाल कर रखे। और भी—

किं चान्यैर्न—

(६३) धन आदि के बिना अन्य अच्छे कुल और आचार आदि से मनुष्य आदर नहीं पाता है, क्योंकि धन हीन मनुष्य अपनी स्त्री तक से भी छोड़ दिया जाता है। फिर दूसरे लोगों की तो बात ही क्या कहें?

और यही राज्य में बड़ा भारी दोष है—

अतिव्ययोऽनवेक्षा—

(६४) अधिक व्यय करना, धन की इच्छा न करना, अन्याय से धन इकट्ठा करना, किसी का धन अपहरण करना, धन को दूर ले जाकर रखना इन्हें कोष के व्यसन कहा जाता है (इनसे कोष नष्ट हो जाता है)।

स्तब्धकर्ण बोला—"सुनो भाई! ये दोनों दमनक और करटक बहुत दिनों से तुम्हारे आश्रय में हैं और लड़ाई व मेल कराने के अधिकारी हैं, कभी भी इनको धन के अधिकार में नहीं लगाना चाहिये।

अधिकार के सौंपने के विषय में जो मैंने सुना है, उसे कहता हूं—

ब्राह्मणः क्षत्रियो:—

(६५) ब्राह्मण, क्षत्रिय और भाई-बन्धु इन के हाथ में अधिकार की बागडोर देना अच्छा नहीं क्योंकि ब्राह्मण सिद्ध हुए धन को कठिनता से भी नहीं देता।

नियक्तः क्षत्रियों—

(६६) जो क्षत्रिय को धन के अधिकार पर रखे

तलवार दिखलाने लगता है और बन्धु यदि अधिकारी हों तो ज्ञाति भावना अर्थात् मैं बन्धु हूं, इस विचार से सर्वस्व हर लेता है।

अपराधेऽपि—

(६७) पुराना सेवक अपराध करने पर भी निर्भय रहता है और स्वामी की अवज्ञा करके बे रोकटोक घूमता है।

"यह सब जैसा अवसर हो वैसा जान कर काम करना चाहिये।"

सिंह बोला—यह तो ऐसा ही है, पर ये सर्वथा मेरी बात को नहीं मानते।

स्तब्धकर्ण बोला—यह सब प्रकार से अनुचित है। क्योंकि—

आज्ञाभङ्गकरान—

(६८) राजा, आज्ञाभङ्ग करने वाले अपने पुत्रों को भी माफ न करे, ऐसा न करने पर जीते हुए राजा में और चित्र में लिखे हुए राजा में क्या अन्तर है?

पृ० ४७—स्तब्धस्य नश्यति—

(६९) अहंकारी मनुष्य की कीर्ति, चपलचित्त वाले की मित्रता, दुष्ट इन्द्रियों वाले का परिवार, धन के लोभी का धर्म, जूए आदि में फंसे हुए का विद्याफल, कृपण का सुख और विवेकहीन मन्त्री वाले राजा का राज नष्ट हो जाता है।

हे भाई! सब प्रकार से मेरा कहना करो और व्यवहार तो हमने कर ही लिया है। इस घास चरने वाले संजीवक को धन के अधिकार पर रख लो।

इसके वचन से ऐसा कर लेने पर उस दिन से लेकर पिंगलक

और संजीवक का सब बांधवों को छोड़ कर बड़े प्रेम से समय बीतने लगा।

फिर सेवकों को आहार देने में शिथिलता देख कर करटक और दमनक आपस में सोचने लगे।

तब दमनक ने करटक से कहा—"मित्र! क्या करना चाहिए, यह हमारा अपना किया हुआ दोष है। अपने किए हुए दोष पर पछताना भी उचित नहीं है। (क्षण भर सोच कर) मित्र! जैसे इन दोनों की मित्रता (मैंने) बहुत शीघ्र करवा दी है, वैसे इन दोनों में फूट भी डलवा सकता हूं। करटक बोला—ऐसा ही सही, परन्तु इनका आपस में बढ़ा हुआ बड़ा स्नेह कैसे छुड़ाया जा सकता है?

दमनक ने कहा—कुछ उपाय कीजिए। कहा भी है—

उपायेन हि यच्छक्यं—

(७०) उपाय से जो कुछ हो सकता है, वह पराक्रम से नहीं हो सकता है, जैसे कौए ने सोने के हार से काले सांप को मरवा डाला।

करटक ने कहा—"यह कैसे"।

दमनक ने कहा—

वायस-दम्पत्ति कथा

किसी वृक्ष पर कव्वों का जोड़ा रहता था उन के बच्चों को उस पेड़ के कोटर में स्थित काले सांप ने खा लिया।

पृ० ४८—तब फिर गर्भवती कव्वी ने कौए से कहा—"हे स्वामी! इस पेड़ को छोड़ दें, यहां जब तक काला सर्प रहता है। तब तक हमारी सन्तान कभी भी नहीं बचेगी।

दुष्टा भार्या शठं—

(७१) दुष्ट स्त्री, धूर्त मित्र, उत्तर देने वाला सेवक और सांप वाले घर में रहना मानों साक्षात् मृत्यु है, इसमें सन्देह नहीं।

कौआ बोला—"प्यारी! डरना नहीं चाहिए," बारम्बार मैंने इसका अपराध सहा है, अब फिर क्षमा नहीं करूँगा। कव्वी बोली—किस प्रकार बलवान् के साथ तुम लड़ सकते हो? कौआ बोला—यह शंका मत करो।

बुद्धिर्यस्य बलं—

(७२) जिस के पास बुद्धि है, उस में बल है और जो निर्बुद्धि है उस में बल कहां से आवे। देख, मद से उन्मत्त शेर को खरगोश ने मार डाला—

कव्वी ने कहा—यह कैसे—कौआ बोला—

सिंह शशकयोः कथा

मन्दर नाम पर्वत पर दुर्दान्त नाम का एक सिंह रहता था और वह सदा पशुओं को मारता रहता था।

तब सभी पशुओं ने मिल कर उस सिंह से कहा—"हे सिंह! एक साथ बहुत से पशुओं को क्यों मारते हो? यदि आप राजी हों तो हम ही तुम्हारे भोजन के लिए नित्य एक २ पशु को भिजवा दें।

फिर सिंह ने कहा—जो यह तुम्हारी इच्छा है तो यों ही सही।

उस दिन से वह निश्चित किए हुए एक एक पशु को खाया करता था।

फिर एक दिन एक बूढ़े खरगोश की बारी आई।

वह सोचने लगा—

त्रासहेतोर्विनीतिस्तु—

(७३) जीने की आशा से, भय के कारण (मारने वाले के

आगे) विनय की जाती है और जब मेरी मृत्यु है, तो फिर मुझे सिंह की विनती से क्या काम ? अर्थात् उस के आगे गिड़गिड़ाने से क्या लाभ ।

पृ० ४६—इसलिए धीरे धीरे चलता हूँ ।

पीछे शेर भी भूख से पीड़ित गुस्से से उसे बोला—"तू किस लिए देर करके आया है ।

खरगोश बोला—"महाराज । मैं अपराधी नहीं हूँ मार्ग में आते हुए मुझे दूसरे सिंह ने बल से पकड़ लिया था । उसके सम्मुख फिर लौट आने की शपथ खा कर स्वामी को बताने मैं आया हूं ।

सिंह गुस्से से बोला—जल्दी चल कर उस दुरात्मा को दिखाओ कि वह दुष्ट कहां बैठा है ?

फिर खरगोश उसे साथ ले जा कर एक गहरा कुआं दिखाने को ले गया । वहाँ पहुंच कर "स्वामी आप ही देख लीजिए," यह कह कर उस कूएँ के जल में उसी सिंह के प्रतिबिम्ब को दिखा दिया ।

तब सिंह क्रोध से शब्द करता हुआ घमंड से उसके ऊपर अपने को गिरा कर मर गया ।

इस लिए मैं कहता हूं—"जिस की बुद्धि है"

कव्वी ने कहा—मैं ने सब कुछ सुन लिया है, अब जो कुछ करना है वैसा करो ।

कौए ने कहा—यहां पास ही तालाब में 'राजपुत्र नित्य आ कर स्नान करता है । नहाते समय उसके अंग से उतारे हुए और तीर्थशिला (घाट) पर धरे हुए सोने के हार को चोंच से पकड़ कर इस बिल में ला कर धर लो ।"

पीछे कभी राजकुमार के नहाने के लिए पानी में घुसने पर कव्वी ने वैसा ही किया।

फिर सोने के हार को ढूँढने वाले राज्याधिकारियों ने वहां तरुकोटर में काले सांप को देखा और मार दिया।

इस लिए मैं कहता हूँ—"उपाय से जो हो सकता है"।

करटक ने कहा—यदि ऐसा है तो जाओ। तुम्हारा पथ कल्याणकारी हो। पीछे दमनक पिंगलक के पास जाकर प्रणाम करके बोला महाराज! मैं किसी आने वाले नाशकारी और बड़े भयङ्कर कार्य्य का ख्याल करके आया हूं—क्योंकि

पृष्ठ ५० – आपद्युन्मार्गगमने –

(७४) आपत्ति में, कुमार्ग में जाने पर, काम का समय बीतने पर हितचिन्तक मनुष्य बिना पूछे भी हित की बात कह दे।

वरं प्राणपरित्यागं—

(७५) प्राणों का छोड़ना और सिर का कट जाना भी अच्छा है, परन्तु स्वामी की राजपद की प्राप्ति रूपी पातक की इच्छा करने वाले की उपेक्षा अर्थात् उस पर ध्यान न रखना अच्छा नहीं है।

पिंगलक ने आदर से कहा—तो आप इस समय क्या कहना चाहते हैं?

दमनक ने कहा–यह संजीवक तुम्हारे ऊपर अयोग्य व्यवहार करने वाला सा दीखता है और मेरे सामने महाराज की तीन शक्तियों (प्रभुभक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साह शक्ति) की निन्दा करके राज्य को हड़पना चाहता है।

यह सुन कर पिंगलक भय और आश्चर्य से चुप हो गया।

दमनक फिर बोला—देव! सब मन्त्रियों को छोड़ कर एक

इसी को तुमने सब काम का जो अधिष्ठाता बनाया है, यही दोष है—

अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि—

(७६) राजलक्ष्मी मन्त्री और राजा के अत्यधिक उन्नति कर लेने पर, अपने पैर टिका कर दोनों में निवास करती है। फिर स्त्री-स्वभावानुसार उन दोनों के भार को न सह सकने के कारण दोनों में से एक को छोड़ देती है।

और भी—

एकं भूमिपति—

(७७) जब राजा राज्य में एक मन्त्री को राज्य में प्रधान बना देता है, तब उसे अभिमान से मद हो जाता है और मदान्धता के आलस्य से बिगड़ने पर उसके हृदय में स्वच्छन्दता की अभिलाषा होती है और फिर स्वतन्त्रता के लाभ की इच्छा से वह मन्त्री राजा के प्राण तक लेने के लिए शत्रुता करता है।

विषदिग्धस्य भुक्तस्य—

(७८) विष में सने भोजन का, हिलते हुए दांत का और दुष्ट मन्त्री को मूल से उखाड़ देना ही सुख देने वाला होता है।

यः कुर्यात्सचिव—

(७९) जो राजा मन्त्रियों के व्यसनी होने पर भी लक्ष्मी को उन के वश में कर देता है वह राजा अन्धे के समान सेवकों के बिना दुःख पाता है।

वह सब कार्य्य अपनी इच्छापूर्वक करता है, इसमें स्वामी ही प्रमाण हैं, (जो अच्छा लगे सो कीजिए)।

सिंह ने सोच कर कहा—हे भद्र! यद्यपि ऐसा ही है तो भी संजीवक के साथ मेरा बड़ा प्रेम है।

कुर्वन्नपि व्यली—

(८०) बुरे कामों को करता हुआ भी, जो प्यारा है वह प्यारा ही है जैसे बहुत दोषों से दूषित भी यह शरीर किस को प्यारा नहीं है ?

दमनक ने कहा– हे देव ! यही अधिक दोष है।

क्योंकि आपने बाप दादा से चले आए पुराने सेवकों को छोड़ कर इस नवागत आगन्तुक को आगे किया हुआ है यह अच्छा नहीं किया—

क्योंकि—

मूलभृत्यान्परित्यज्य—

(८१) पुराने सेवकों को छोड़ कर नये आए हुओं का सत्कार न करे क्योंकि इससे बढ़ कर कोई दोष राज्य में भेद डालने वाला नहीं है।

सिंह ने कहा– बड़ा आश्चर्य है, मैं जिसको अभय वचन दे कर लाया हूं, और जिसे बढ़ाया है वह मुझ से कैसे वैर करता है।

दमनक ने कहा—देव !—

दुर्जनः प्रकृति—

(८२) सदा सेवन किया हुआ भी दुर्जन मनुष्य अपने स्वभाव को कैसे पकड़े रखता है जैसे मली गई और तैल आदि लगाने से सीधी की गई कुत्ते की पूंछ सीधी नहीं होती है, अपनी असली अवस्था तिरछेपन को नहीं छोड़ती।

और भी—

वर्धनं वार्थ सम्मानं—

(८३) बढ़ाना व सम्मान करना दुष्टों की प्रसन्नता के लिये

कहां हो सकता है जैसे विष के पेड़ अमृत से सींचने पर भी मीठे फल नहीं देते हैं। इस लिए मैं कहता हूं।

अपृष्टोऽपि—

(८४) मनुष्य जिस के निरादर को न चाहे उसके बिना पूछे भी हितकारी वचनों को कह दे क्योंकि यही सज्जनों का धर्म है और इससे उल्टा अधर्म।

कहा भी है—

स स्निग्धो—

(८५) जो आफतों से बचाए, वह मित्र है। जो निर्मल या दोष रहित है, वही कर्म है, जो पति की आज्ञा माने, वही अच्छी पत्नी है, जिसका सज्जन आदर करें, वही बुद्धिमान् है, जो अहंकार को उत्पन्न न करे वही संपत्ति है जो तृष्णा से रहित है, वही सुखी है, मित्र वह है, जो स्वाभाविक है, पुरुष वह है, जिस ने इन्द्रियों को जीता हुआ है।

पृ० ४२—और जो संजीवक के व्यसनों से पीड़ित स्वामी चेताए जाने पर भी न रुकें तो ऐसे मेरे जैसे भक्त सेवक का कोई दोष नहीं है।

(८६) कहा भी है—राजा भोगों में फंसा हुआ कार्य को और हितवाले वचनों को नहीं गिनता है और मतवाले हाथी की भांति अपनी इच्छानुसार जो अच्छा लगता है सो करता है, अभिमान से वशीभूत जब वह गहरे दुःख में पड़ता है तो सेवक पर दोष मढ़ता है और अपने बुरे आचरण को नहीं जानता है।

पिंगलक—(स्वगत)

न परस्यापराधेन—

(८७) किसी के बहकाये जाने पर दूसरों को दंड न देना चाहिये परन्तु अपने आप जान कर उसे मारे या सम्मान करे। कहा भी है—

गुणदोषौ—

(८८) गुण और दोष का निश्चय किए बिना किसी पर दया करने और दण्ड देने की विधि (आज्ञा) नहीं है, यदि कोई करेगा तो उस की ऐसी दशा होगी। जैसे अभिमान के वशीभूत होकर अपने नाश के लिए सांप के मुंह में अंगुलि देना।

प्रकट बोला—तो संजीवक को क्या जता दिया जाए। दमनक ने घबरा कर कहा—महाराज! ऐसा मत करें, इससे गुप्त बात खुल जाती है।

जैसे कहा है—

मंत्रबीजमिदं—

(८९) इस मंत्र (सलाह, उपाय) रूपी बीज की जिस किसी प्रकार से भी हो रक्षा करनी चाहिए और थोड़ा भी उसे फूटने न दे। क्योंकि वह फूटा हुआ नहीं उगता है।

आदेयस्य—

(९०) लेने देने और करने वाले आवश्यक कार्य को यदि शीघ्र न किया जाए तो इन का रस समय पी लेता है (काम बिगड़ जाता है)।

इस लिये अवश्य आरम्भ किए हुए काम को बड़े यत्न से करना चाहिये।

और भी—

मन्त्रोयोध—

(६१) मन्त्र कायर योधा के समान सब प्रकार से सुरक्षित तथा ढके हुये सभी अङ्गों से शत्रुओं से भेद की शङ्का से देर तक नहीं ठहर सकता। जैसे योधा देर तक नहीं ठहर सकता। इसी प्रकार मंत्र भी भेद की शङ्का से देर तक नहीं ठहर सकता।

दोष देख लेने पर भी दोष को दूर कर फिर यदि दोष पर ध्यान न देते हुए इस से मेल कर लिया तो अति अनुचित होगा।

सिंह बोला—पहिले यह समझ लो कि वह हमारा क्या कर सकता है। अर्थात् क्या बिगाड़ सकता है। दमनक ने कहा—देव!

पृ० ५३ – अङ्गाङ्गिभावं—

(६२) अङ्गाङ्गिभाव, अर्थात् किसी प्राणी और उसके सहायक को बिना जाने उस की सामर्थ्य का निर्णय कैसे हो सकता है? देखो एक टटीहरी ने समुद्र को व्याकुल कर दिया।

सिंह ने पूछा—कैसे। दमनक ने सुनाया—

टिट्टिभ समुद्रयोः कथा

दक्षिण समुद्र के तट पर टटीहरों का जोड़ा रहता था और वहां जिसका बच्चा जनने का समय निकट है, उस टटीहरी ने अपने पति से कहा—हे स्वामी! प्रसव के योग्य एकांत स्थान ढूँढना चाहिए। टटीहरा बोला—हे प्रिये! निश्चय करके यह स्थान प्रसव के लिए अच्छा है।

उसने कहा—इस स्थान में समुद्र की लहरें आ जाती है।

वह कहने लगा—क्या मैं समुद्र से कम बलवान हूं जो मुझे तंग करेगा।

टटीहरी ने उत्तर दिया—स्वामी ! तुम में और समुद्र में बड़ा अन्तर है।

पराभवं परिच्छेतुं—

(६३) इस संसार में तिरस्कार को दूर करने के लिए जो योग्य और अयोग्य को जानता है और जिस को अपने बल का पता है, वह विपत्ति में भी दुःख नहीं भोगता है।

और भी

अनुचितकार्या—

(६४) अयोग्य कार्य का शुरू करना, अपने इष्ट मित्रों से विरोध, बलवान से स्पर्धा और स्त्रियों पर विश्वास ये चार मौत के द्वार हैं।

फिर कष्ट से उसने पति के वचन से वहीं अंडों को दे दिया।

यह सब सुन कर समुद्र भी अपने बल को देखने के निमित्त उसके अंडों को बहा ले गया।

तब टटीहरी शोकाकुल हो कर कहने लगी—हे स्वामी ! बड़ा कष्ट आ पड़ा, वे सब मेरे अंडे नष्ट हो गये।

टटीहरे ने कहा—प्रिये ! डरो मत। ऐसा कह कर वह सब पक्षियों को इकट्ठा करके पक्षियों के स्वामी गरुड़ के पास गया।

वहां जा कर टटीहरी ने सब समाचार भगवान् गरुड़ जी के सामने निवेदन किया—"महाराज ! समुद्र ने अपने घर बैठे हुए मुझे बिना अपराध ही सताया है।"

तब उस की बात सुन कर गरुड़ ने सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण प्रभु नारायण को सूचित किया।

उन्होंने समुद्र को अंडे दे देने की आज्ञा दे दी।

उसके अनन्तर भगवान् की आज्ञा को मानकर समुद्र ने वे अण्डे टटीहरे को दे दिए।

इसी लिये मैं कहता हूँ कि 'अङ्गाङ्गिभाव को देख कर।

राजा ने पूछा—यह कैसे जाना जाए कि वह द्रोह बुद्धि रखने वाला है।

दमनक ने कहा—जब वह मद से चूर हो सींगों की नोक से मारने के लिए सामने हैरान सा होकर आएगा तब स्वामी आप ही जान जाएँगे, यह कहकर संजीवक के पास गया।

वहाँ जा कर धीरे धीरे चलते हुए उसने अपने आप को हैरान सा दिखाया। संजीवक ने आदर से पूछा—मित्र कुशल है।

दमनक ने कहा—सेवकों को कुशल कहां ?

क्योंकि—

संपत्तयः पराधनः—

(६५) जो राजा के सेवक हैं उनकी सम्पत्ति पराधीन है, हृदय बेचैन रहता है और उनको जीवन पर भी विश्वास नहीं होता।

और भी—

कोऽर्थान् प्राप्य—

(६६) कौन सा मनुष्य धन को पा कर अहङ्कारी नहीं होता है ? किस कामी को विपत्तियां नहीं घेरती हैं, स्त्रियों ने किसके मन को नहीं डिगाया, राजाओं का कौन प्यारा है ? कौन मनुष्य काल की भुजाओं में नहीं फंसा ? कौन से याचक का सम्मान हुआ है ? और कौन सा मनुष्य दुर्जनों के कपट जाल में पड़कर सकुशल रहा है ? अर्थात् कोई नहीं।

संजीवक ने कहा—मित्र कहो क्या बात है ?

दमनक ने कहा—मैं मन्द भागी क्या कहूँ।

देख—

मञ्जन्नपि—

(६७) जैसे समुद्र में डूबता हुआ मनुष्य सांप का सहारा पा कर न वह पकड़ सकता है और न छोड़ सकता है, वैसे ही इस समय मैं विमूढ़ हूं।

पृ ५४—इस प्रकार कह कर लम्बी सांस ले कर बैठ गया।

संजीवक ने कहा—मित्र, विस्तार से अपने मन की बात कहो।

दमनक ने एकांत में कहा—यद्यपि राजा की गुप्त बात को नहीं कहना चाहिए, फिर भी आप मेरे विश्वास के कारण आए हैं। अतएव मुझे परलोक की इच्छा के डर से अवश्य ही तुम्हारे हित की बात कहनी चाहिए। तुम से बिगड़े हुए मन वाले स्वामी ने मुझे एकांत में कहा है—संजीवक को मार कर अपने परिवार का पालन करूंगा।

यह सुन संजीवक को बड़ा दुःख हुआ।

दमनक ने फिर कहा—विषाद मत करो, अवसर के अनुसार कार्य करो।

संजीवक (मन में) यह इसीकी चेष्टा है अथवा नहीं, इसे व्यवहार से मैं समझ नहीं सकता।

फिर विचार कर कहने लगा—यह क्या कष्ट आ पड़ा—

आराध्यमानो—

(६८) इस में क्या विचित्रता है कि राजा बड़े यत्न से सेवा करने पर भी प्रसन्न नहीं होता, क्योंकि यह एक ऐसे अनोखे देवता की मूर्ति है जो सेवा करने पर भी शत्रुता करती है।

इस बात का कुछ भेद समझ में नहीं आता।

क्योंकि—

निमित्तमुद्दिश्य—

(६६) जो निश्चय करके किसी कारण से क्रोध करता है वह उस कारण के नाश होने पर अवश्य प्रसन्न हो जाता है परन्तु जिस का मन बिना ही कारण वैर करने लगा है उस को मनुष्य कैसे प्रसन्न करेगा ?

मैंने राजा का क्या बिगाड़ा है ? अथवा राजा लोग बिना ही कारण अपकार करने वाले होते हैं।

दमनक ने कहा—ऐसा ही है—

सुनिए—

विज्ञैः स्निग्धैः—

(१००) विद्वानों और मित्रों से उपकृत होने पर भी शत्रुता करता है, कोई दूसरों से अपकार किया हुआ भी उन से प्रेम ही करता है। एक बात पर दृढ़ न रहने वाले अव्यवस्थित चित्त वाले पुरुषों का चरित्र बड़ा अद्भुत है और सेवा धर्म बड़ा ही गहन है योगियों की पहुंच से भी परे है।

पृ० ५६—मूलं भुजंगै—

(१०१) पेड़ की जड़ सांपों से, फूल भौरों से, डालियां बंदरों से, शिखर पक्षियों से इस प्रकार चन्दन के वृक्ष का कोई भाग नहीं है, जो अतिदुष्ट और हिंसक जीवों से घिरा हुआ नहीं है।

यह स्वामी वाणी में मीठा और हृदय का कपटी है, यह मैंने जान लिया है। क्योंकि—

दूरादुच्छ्रित—

(१०२) दूर से ऊँचे हाथ उठा बुलाना, प्रीति से नेत्रों में जल ले आना, आधा आसन बैठने के लिए देना, अच्छी प्रकार से मिलना, प्रिय बातों के पूछने में दिलचस्पी दिखाना, मन में

जहर और बाहिर (वाणी) में मिठास और अत्यन्त कपट से भरा होना, यह कौन सी नाटक की विधि है, जिसे दुर्जनों ने सीखा हुआ है।

संजीवक फिर सांस लेकर बोला—अरे बड़ा कष्ट है, कैसे सिंह मुझ घास के चरने वाले को मारेगा।

(फिर सोचकर) किसने इस राजा को मुझ से नाराज कर दिया, नहीं जानता, भेद को प्राप्त हुए (बिगड़े हुए) राजा से सदा डरना चाहिए। क्योंकि—

मन्त्रिणा—

(१०३) मंत्री के साथ किसी भी कारण से फटे हुए राजा के चित्त को कांच की चूड़ी के समान कौन जोड़ने में समर्थ हो सकता है ?

इसलिए संग्राम में मरना ही अच्छा है। अब उसकी आज्ञा का अनुसरण करना उचित नहीं है। क्योंकि—

यत्रायुद्धेध्रुवं—

(१०४) जिस समय युद्ध के न करने में मृत्यु का होना निश्चित है और युद्ध करने में जीने का सन्देह है, उसी काल को पण्डित लोग युद्ध का समय कहते हैं।

अयुद्धे हि—

(१०५) जब युद्ध न करने में कुछ भी अपनी भलाई न देखे तो बुद्धिमान् पुरुष शत्रु के साथ युद्ध करता हुआ मर जाए।

यह सोच कर संजीवक बोला—हे मित्र ! मुझ से कहो, कि मुझ को कैसे मालूम हो कि वह मुझे मारना चाहता है।

पृष्ठ ५७—दमनक बोला - जब वह पिंगलक लांगूल (पूँछ) उठाए, पैर ऊँचे किए, मुख खोले हुए तुझे देखे तो तुम भी अपना बल दिखाना। क्योंकि—

बलवानपि—

(१०६) तेज रहित बलवान भी किस के तिरस्कार का पात्र नहीं बनता। अर्थात् किस से तिरस्कृत नहीं किया जाता। देखिए। मनुष्य बिना शङ्का के (निर्भय होकर) राख के ढेर में पैर रखते हैं।

परन्तु यह सभ कुछ गुप्त रूप में (छिपा कर ही) करना चाहिए। नहीं तो (यदि ऐसा न किया तो) न तू रहेगा न मैं।

यह कह कर दमनक करटक के समीप चला गया। करटक ने कहा—क्या बना ? अर्थात् क्या हुआ ?

दमनक ने कहा—कि (उनका) आपस में भेद करवा दिया।

करटक ने कहा—इस में क्या सन्देह है। क्योंकि—

बन्धुः को नाम—

(१०७) दुष्टों का कौन बन्धु है ? मांगने पर (अर्थात् जिस से कुछ मांगा गया हो) कौन क्रोध नहीं करता। धन से कौन अभिमान नहीं करता ? बुरा काम करने में कौन चतुर नहीं है ?

फिर दमनक ने पिंगलक के समीप जा कर कहा—हे देव ! वह पापात्मा (पापी हृदय वाला) आ गया है। सो तय्यार होकर ठहरें। यह कह कर पहले कहे हुए के अनुसार उस का आकार बनवा दिया।

सञ्जीवक ने भी आकर, विकृत आकार वाले स्वामी को देख कर अपनी शक्ति के अनुसार पराक्रम दिखाया।

फिर उन दोनों का युद्ध आरम्भ होने पर सञ्जीवक सिंह से मार दिया गया।

इस के अनन्तर पिङ्गलक सञ्जीवक को मार कर थका हुआ शोक युक्त सा बैठ गया। और कहने लगा कि मैंने कैसा दारुण (कठोर) कर्म किया है। क्योंकि—

परैः सम्भुज्यते—

(१०८) धर्म का उल्लङ्घन करने से राजा स्वयं तो पाप का भागी बनता है, राज्य का उपभोग दूसरे करते है। जैसे—सिंह हाथी को मार कर स्वयं पाप का भागी बनता है, दूसरे मांस खाते हैं।

भूम्यैकदेशस्य—

(१०६) और भी-पृथ्वी के किसी एक भाग का अथवा बुद्धिमान् नौकर के नाश होने पर, सेवक का नाश तो राजाओं का मरण है। क्योंकि नष्ट हुई भूमि तो मिल सकती है। परन्तु बुद्धिमान् सेवक नहीं मिल सकते।

दमनक बोला—स्वामिन्! यह कौन सा नया न्याय है, जो शत्रु को मार कर सन्ताप करते हो।

पृ० ५८—जैसे कहा है—

पिता वा यदि वा—

(११०) पिता हो या भ्राता, पुत्र हो या मित्र यदि इन में से कोई राजा के प्राण लेने को तय्यार हो तो ऐश्वर्य चाहने वाला राजा उसे मार दे।

क्षमा शत्रौ च—

(१११) शत्रु और मित्र पर क्षमा करना संन्यासियों के लिए भूषण है। अपराधी प्राणियों पर वही राजाओं की क्षमा दूषण है। अर्थात् यदि राजा अपराधियों को क्षमा कर देंगे तो उस से बड़ी हानि होगी। वह राजाओं का महान् दोष होगा।

राज्यलोभादहङ्कारात्—

(११२) जो (सेवक) राज्य के लोभ वा अहङ्कार से स्वामी

के पद को (पाना) चाहता है, उस के लिए प्राणों का परित्याग, अर्थात् मर जाना ही एक प्रायश्चित है, और कोई दूसरा नहीं है।

इस तरह—दमनक द्वारा शान्त किया हुआ पिङ्गलक स्वस्थ होकर सिंहासन पर बैठ गया।

प्रसन्न चित्त दमनक "महाराज की विजय हो", समग्र जगत का कल्याण हो, यह कह कर सुखपूर्वक रहने लगा।

विष्णुशर्मा ने कहा—सुहृद्भेद आपने सुन लिया है। राजपुत्र बोले—आप की कृपा से (सुहृद्भेद) सुन लिया। हम सुखी बन गए।

विग्रह

पृ० ५६—फिर कथा के आरम्भ के समय राजपुत्रों ने कहा—हे आर्य! हम राजपुत्र हैं। सो हमारी विग्रह सुनने की इच्छा है।

विष्णुशर्मा ने कहा—(जो विग्रह) इस प्रकार आप को भाता है, उसे कहता हूं।

विग्रह सुनिए। जिस का यह पहला श्लोक है।

हंसैः सह—

(१) हंसों के साथ मोरों के समान पराक्रम वाले युद्ध के आरम्भ होने पर कव्वों ने शत्रु के मन्दिर में ठहर कर विश्वास देकर हंसों को ठग लिया।

राजपुत्रों ने कहा—यह कैसे।

विष्णुशर्मा बोला—

हंस तथा मोरों के युद्ध की कथा

कर्पूर द्वीप में पद्मकेलि नाम का सरोवर था। वहां पर हिरण्यगर्भ नाम का राजहंस रहता था। सभी जलचर पक्षियों ने

मिलकर उसे पक्षियों के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। क्योंकि—

यदि न स्यात्—

(२) यदि ठीक प्रकार से शासन करने वाला राजा न हो तो प्रजा इस तरह दुःख समुद्र में डूब जाती है। जैसे—बिना कर्णधार (मल्लाह) के नौका किसी समुद्र में डूब जाती है।

प्रजां संरक्षति—

(३) राजा प्रजा की रक्षा करता है। सुरक्षित वह प्रजा राजा को बढ़ाती है। बढ़ाने से रक्षा करने का काम बड़ा है, कल्याणकारी है, उस के न होने पर अर्थात् यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे तो उस के अभाव में सत् भी असत् बन जाता है। अर्थात् साधु भी असाधु बन जाते हैं, अथवा विद्यमान वस्तुएँ भी नष्ट हो जाती हैं।

एक समय वह राजहंस विशाल कमलों की शय्या पर सुख पूर्वक बैठा हुआ परिवार से घिरा हुआ था।

(उस समय) किसी देश से आकर दीर्घ मुख नाम का बगला प्रणाम कर के बैठ गया।

पृ० ६०—राजा ने कहा—हे दीर्घमुख! तू दूसरे देश से आया है। कोई बात (समाचार) कहिये (सुनाइये)।

उसने कहा—हे देव! बड़ी बात है उसे कहने की इच्छा से ही मैं शीघ्र आया हूँ। सुनिए।

जम्बुद्वीप में विन्ध्य नाम का पर्वत है। वहाँ चित्र वर्ण नाम पक्षियों का राजा मयूर रहता है। उसके विचरते हुए सेवक पक्षियों ने दग्धारण्य के मध्य में घूमते हुए मुझे देखा और पूछा। तू कौन है? और कहां से आया है?

तब मैंने कहा कि मैं कर्पूर द्वीप के चक्रवर्ती राजा हिरण्यगर्भ राजहंस का सेवक हूँ। कौतुक से दूसरा देश देखने आया हूँ। यह सुनकर पक्षियों ने कहा कि इन दोनों देशों में कौन सा देश और राजा श्रेष्ठ है ?

मैंने कहा, अफसोस आप क्या ऐसा कह रहे हो। बड़ा अन्तर (फरक) है। क्योंकि कर्पूर द्वीप स्वर्ग ही है और राजहंस दूसरा स्वर्गपति (इन्द्र) है। इस मरुस्थल (निर्जलभूमि) में पड़े हुए तुम क्या करते हो। हमारे देश में चलिए।

हमारा वचन सुन कर वे क्रोधयुक्त को गए। वैसे कहा भी है—

पयःपानम्—

(४) सर्पों को दूध पिलाना, केवल उन के विष को बढ़ाना है। (जिस तरह सर्पों को यदि दूध पिलाओगे तो उससे उनकी जहर ही बढ़ेगी) इसी प्रकार मूर्खों को उपदेश देना उनके कोप के लिए है, न कि उनकी शान्ति के लिए है।

विद्वानेवोपदेष्टव्यः—

(५) विद्वान् को ही उपदेश देना चाहिये। मूर्ख को कभी उपदेश मत दो। बानरों को उपदेश देकर पक्षी (अपने) स्थान से भ्रष्ट हो गए।

राजा ने कहा—यह कैसे ?

दीर्घमूख बोला—

पक्षियों और बानर की कथा

नर्मदा नदी के किनारे एक विशाल शाल्मली का वृक्ष था। वहां पर बनाए गए घोंसलों के मध्य में सुख से पक्षी निवास करते थे।

इसके अनन्तर एक बार नीले मेघों से ढके हुए आकाश से बड़ी मूसलाधार वर्षा हुई।

पृ० ६१—फिर वृक्ष के नीचे ठहरे हुए, शीत से पीड़ित कांपते हुए बानरों को देख कर कृपा पूर्वक पक्षियों ने कहा—हे बानरो सुनो।

अस्माभिः—

(६) हमने केवल चोंच मात्र से इकट्ठे किए हुए तिनकों से घौंसले बनाए हैं। तुम तो हाथ पैर आदि से युक्त हो। फिर भी क्यों कांप रहे हो ?

यह सुनकर क्रोधयुक्त बानरों ने सोचा अहो वायु रहित घसलों में स्थित सुखी पक्षी, हमारी निन्दा कर रहे हैं। सो पहले वृष्टि शान्त हो लेने दो।

इसके अनन्तर बर्षा के शान्त होने पर उन बानरों ने वृक्ष पर चढ़ कर सभी घौंसले नष्ट-भ्रष्ट कर दिए। और उनके अण्डे नीचे गिरा दिए।

इस लिए मैं कहता हूँ कि विद्वान् को ही उपदेश देना चाहिए। इत्यादि।

राजा ने कहा—फिर उन्हों ने क्या किया।

बगला बोला—फिर उन पक्षियों ने क्रोध से कहा कि उस राजहंस को किस ने राजा बनाया।

फिर उत्पन्न हुए हुए क्रोध वाले मैंने कहा कि आप का मयूर किस से राजा बनाया गया है ?

यह सुनकर वे सभी मुझे मारने को तय्यार हो गए। फिर मैंने भी अपना पराक्रम दिखाया।

राजा ने हंस कर कहा—

(७) आत्मनश्च परेषांच—

जो अपने और दूसरे के बलाबल, शक्ति और निर्बलता को देखकर दोनों में भेद, अर्थात् कौन बली वा निर्बल है, यह नहीं जानता, वह शत्रुओं से तिरस्कृत किया जाता है।

सुचिरंहि—

(८) अन्न के क्षेत्र में देर तक खेती को खाता हुआ व्याघ्र के चर्म से ढका हुआ मूर्ख गधा वाणी के दोष से (बोलने के दोष से) मारा गया।

बगुले ने पूछा यह कैसे ?

राजा ने कहा—

रजक तथा गर्दभ की कथा

पृ० ६२—हस्तिनापुर में विलास नाम का रजक (धोबी) रहता था। उसका गधा अति बोझ उठाने के कारण दुर्बल होकर मृतप्राय सा (मरा हुआ सा) बन गया।

फिर उस धोबी ने उसे व्याघ्र के चर्म से ढक कर अर्थात् व्याघ्र का चर्म उढ़ा कर बन से समीप अन्न के खेत में छोड़ दिया।

क्षेत्र के स्वामी दूर से उसे देखकर व्याघ्र बुद्धि से अर्थात् उसे व्याघ्र समझ कर शीघ्र भाग गए।

इस के अनन्तर कोई क्षेत्रपति मटियाले (मिट्टी जैसे रंग के) कम्बल से शरीर की रक्षा किए हुए धनुषबाण तैयार करके शरीर को झुकाए हुए एकांत में ठहर गया।

इच्छानुसार खेती के खाने से जिस में बल उत्पन्न हो गया है, ऐसे हृष्ट पुष्ट अंगों वाला गधा उसे दूर से देख कर "यह दूसरा

गधा है"। यह ख्याल करके ऊँचा शब्द करता हुआ उसके सामने (उसकी ओर) दौड़ा।

फिर उस खेती की रक्षा करने वाले ने चीत्कार शब्द से निश्चय करके कि यह गधा है, उसे लीला से ही मार दिया।

इस लिए मैं कहता हूं कि देर तक सदा अन्न खाता हुआ—इत्यादि ।

फिर (इसके आगे)

दीर्घमुख ने कहा—इसके अनन्तर पक्षियों ने कहा कि अरे दुष्ट बगले ? हमारे राज्य में विचरता हुआ तू हमारे ही स्वामी की निन्दा करता है ?

इस लिए अब तू क्षमा के योग्य नहीं।

यह कह कर सभी चोंच से मुझे मार कर क्रोध के साथ कहने लगे।

देख रे मूर्ख ! वह तेरा राजा हँस कोमल स्वभाव का है। उस का राज्य पर अधिकार ही नहीं, अर्थात् उसे राज्य करने का अधिकार ही नहीं। क्योंकि बहुत कोमल स्वभाव वाला करतल (हथेली) पर आए हुए धन की रक्षा करने में भी समर्थ नहीं हो सकता। वह भला कैसे पृथ्वी की रक्षा कर सकता है ? अथवा उसका राज्य क्या है ? तुम तो कूएं के मैंडक (जिसे कूएं के बाहर का कुछ ज्ञान नहीं है)। नातजुर्बेकार व्यक्ति हो, इसी से उसके आश्रय (लेने) का उपदेश कर रहे हो।

सेवितव्यः—

(६) फल और छाया से युक्त बड़े वृक्ष का सेवन करना चाहिए। यदि भाग्यवश फल न प्राप्त हो तो उसकी छाया को कौन रोक सकता है। सदा महान् व्यक्ति का सहारा लो यह इस का तात्पर्य है और भी—

महानप्यल्पताम्—

(१०) आधार (सहारा) और आधेय (सहारा लेने वाली वस्तु) के विचार से यदि निर्गुण में गुण का प्रकाश किया जायगा तो बड़ा भी छुटाई को प्राप्त कर लेगा । जैसे दर्पण में हाथी। अर्थात् आश्रय लेने वाली वस्तु का यदि आधार बड़ा होगा तो वह महान् प्रतीत होगी। यदि आधार छोटा होगा तो वह वस्तु बड़ी होती हुई भी छोटी प्रतीत होगी। जैसे हाथी कितना बड़ा है परन्तु वह शीशे में छोटे आधार के कारण छोटा सा प्रतीत होता है, आश्रय लेने वाला बड़े आधार में बड़ाई और छोटे आधार में छुटाई को प्राप्त करता है, अतः जिस का आश्रय लेना हो, वह आधार सदा बड़ा हो। यह इस का सार है। और खास तौर पर—

पृष्ठ ६३—

व्यपदेशेऽपि—

(११) (शक्ति शाली) राजा के बहाने अर्थात् नाम लेने से ही कि मैं उसका व्यक्ति हूँ सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जैसे चन्द्रमा का नाम लेने से ही खरगोश सुख से रहने लगे।

मैंने कहा—यह कैसे।

पक्षियों ने कहा (उत्तर दिया)

शशक (खरगोश) और गज समूह की कथा

कभी वर्षा ऋतु में भी वर्षा न होने के कारण प्यास से पीड़ित हाथियों के समूह ने अपने दलपति से कहा—हे नाथ! हमारे जीवन का क्या उपाय है?

यहां तो छोटे छोटे जीवों के स्नान के लिए स्थान है । हम तो स्नान का स्थान न होने के कारण अन्धे से बने हुए हैं । कह जाएँ, क्या करें ?

फिर गजराज ने बहुत दूर न जाकर (समीप) ही एक सरोवर दिखाया ।

कुछ दिनों के व्यतीत होने पर उस सरोवर के किनारे रहने वाले छोटे २ खरगोश हाथियों के पैरों की चोट से दले गए (कुचले गए)

तब शिलीमुख नाम वाले शशक ने सोचा—प्यास से पीड़ित गज समूह के प्रति दिन यहाँ आगमन से हमारा कुल नष्ट हो जाएगा ।

फिर विजय नामक बूढ़े शशक ने कहा—विषाद मत करो। मैं इस (संकट) में उपाय करूँगा ।

वह प्रतिज्ञा कर चल पड़ा । जाते हुए उस ने विचार किया। कि गज समूह के पास ठहर कर मैं किस प्रकार (कुछ) कहूँगा। क्योंकि —

स्पृशन्नपि—

(२१) हाथी छूने से ही, सांप सूंघता हुआ ही, राजा सम्मान देता हुआ ही और दुर्जन हँसते हँसते ही मार देता है ।

इसलिए मैं पर्वत के शिखर पर चढ़कर यूथनाथ को पुकारता हूँ (बुलाता हूँ) ।

(उस के द्वारा) ऐसा करने पर यूथपति ने कहा, तू कौन है ? कहां से आया है।

उस ने कहा कि मैं शशक हूँ । भगवान् चन्द्रमा ने मुझे आप के पास भेजा है ।

पृष्ठ ६४—यूथपति (दलपति) ने कहा - कि कार्य बतलाइए।

विजय बोला—

उद्यतेष्वपि—

(१३) शस्त्रों के (प्रहार के लिये) तय्यार होने पर भी दूत कभी (जो कहना हो, उससे उल्ट नहीं कहता, अर्थात् झूठ नहीं बोलता) मैं अवध्य (मारने के अयोग्य) हूँ। इस विचार से दूत सदा यथार्थ बात ही कहता है।

सो मैं उनकी आज्ञा से कहता हूँ। सुनिये।

जो आपने इन चन्द्रसरोवर की रक्षा करने वाले खरगोशों को निकाल दिया है यह ठीक नहीं किया।

क्योंकि ये खरगोश चिरकाल से हम से रक्षित हैं। (रक्षा किए गए हैं) इसी लिए मेरी "शशाङ्क" इस नाम से प्रसिद्धि है।

दूत के ऐसा कहने पर दलपति ने भय से कहा कि हमने यह अज्ञान वश किया है। फिर ऐसा नहीं किया जाएगा।

दूत ने कहा यदि ऐसा है तो इस सरोवर में कोप से कांपते हुए भगवान् चन्द्रमा को प्रणाम कर और प्रसन्न करके जाओ।

इस के अनन्तर रात्रि के समय यूथपति को ले जा कर जल में चलायमान चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब (उसे) दिखा कर यूथपति से चन्द्रमा को प्रणाम करवाया। उस ने कहा—हे देव! अज्ञान के कारण इस ने अपराध किया है। सो क्षमा कीजिए। फिर दूसरी बार ऐसा नहीं करेगा। ऐसा कह उसे भिजवा दिया (विदा कर दिया)।

इस लिए हम कहते हैं कि बलवान राजा के नाम लेने से ही सिद्धि हो जाती है। इत्यादि—

फिर मैंने कहा—वह हमारा स्वामी राजहँस बड़ा प्रतापी और अति शक्तिशाली (बलवान) है। वह त्रिलोकी के राज्य के भी

योग्य है, इस राज्य की तो बात ही क्या है ? तब मैं उन पक्षियों से "हे दुष्ट ! तू क्यों हमारी भूमि में फिर रहा है" ऐसा कह कर राजा चित्र वर्ण के पास लाया गया ।

फिर राजा के सामने मुझे दिखा कर और प्रणाम करके उन्होंने कहा—हे देव ! ध्यान दीजिए "यह दुष्ट बगला हमारी भूमि (हमारे देश) में विचरता हुआ भी आप की निन्दा करता है ।

राजा ने कहा—यह कौन है ? कहां से आया है ? उन्हों ने कहा—यह हिरण्यगर्भ नामक राजहँस का सेवक कर्पूरद्वीप से आया है ।

पृ० ६५—फिर गीध मन्त्री से मैं पूछा गया कि वहाँ कौन मुख्य मन्त्री है ।

मैंने कहा—सब शास्त्रों के तत्व को जानने वाला सर्वज्ञ नाम चकवा है ।

गीध ने कहा कि हो सकता है । वह अपने देश का है । क्योंकि—

स्वदेशजम्—

(१४—१५) राजा ठीक प्रकार से देख कर ऐसा मन्त्री बनाए । जो अपने देश में उत्पन्न हो । उत्तम कुल में उत्पन्न और उत्तम आचार वाला हो । विशुद्ध पवित्र और साफ दिल वाला हो । मन्त्र के जानने वाला हो, दोषों से रहित हो ! व्यभिचार (दुराचार) से रहित हो । व्यवहार के अंगों को जानने वाला हो । कुल परम्परा से आया हुआ हो । प्रसिद्ध हो । विद्वान् हो और धन को उत्पन्न करने वाला हो ।

इसी अवसर पर तोते ने कहा—हे देव ! कर्पूर आदि छोटे छोटे द्वीप जम्बु द्वीप के अन्तर्गत (अंदर) ही हैं । वहाँ पर भी आप का ही प्रभुत्व (हकूमत) है ।

फिर राजा ने भी कहा कि ऐसा ही है। क्योंकि—

राजामत्तः—

(१६) राजा, पागल, बालक, प्रमादी और धन का घमण्डी, ये सब अप्राप्य (न मिलने वाली) वस्तुओं को भी चाहते हैं, परन्तु जो मिल सके, उन के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है।

फिर मैंने कहा—यदि कहने मात्र से ही (किसी का) प्रभुत्व हो सकता है तो जम्बुद्वीप पर भी हमारे स्वामी हिरण्यगर्भ का प्रभुत्व है।

तोते ने कहा—इसका निर्णय कैसे हो।

मैंने कहा—युद्ध में ही (निर्णय हो सकता है) राजा ने हंस कर कहा—जाकर अपने स्वामी को तैयार करो।

तब मैंने कहा—अपना दूत भी भेज दें। राजा ने कहा—कि दूत बन कर कौन जाएगा। क्योंकि—

भक्तः गुणी—

(१७) भक्त, गुणी, पवित्र, चतुर, प्रगल्भ व्यसत रहित, क्षमा कर देने वाला, ब्राह्मण, शत्रु का भेद जानने वाला बुद्धिमान दूत होना चाहिए।

गीध बोला—दूत तो बहुत हैं, परन्तु ब्राह्मण ही दूत बनाना चाहिए।

राजा ने कहा—तो तोता ही जाए। हे शुक! तू ही इस के साथ जाकर हमारी इच्छा कह दे, अर्थात् प्रकट कर दे।

पृष्ठ ६६—तोते ने कहा—जैसे आप आज्ञा करें, परन्तु यह बगला दुष्ट है, सो मैं इस के साथ नहीं जाऊँगा।

जैसाकि कहा भी है—

खलः करोति—

(१८) दुष्ट दुष्टता करता है, उस का फल अवश्य साधुओं पर पड़ता है। रावण ने सीता का हरण किया और बन्धन समुद्र को हो गया।

न स्थातव्यं—

(१६) और भी—दुर्जन के साथ न कहीं ठहरना चाहिए। न जाना चाहिए। जैसे-कव्वे के साथ बैठा हुआ हंस और जाता हुआ बटेर मारा गया।

राजा ने कहा यह कैसे ?

तोता कहता है।

हंस-मरण कथा

उज्जैन नगर के मार्ग में एक बड़ा भारी पीपल का वृक्ष था। उस वृक्ष पर हंस और कव्वा रहते थे।

कभी गरमी के समय थका हुआ कोई मुसाफिर वहां पर वृक्ष के नीचे धनुष बाण रख कर सो गया। थोड़ी देर में उसके मुख से वृक्ष की छाया चली गई।

फिर सूर्य के तेज (धूप) से उसके मुख को व्याप्त हुआ देख कर उस वृक्ष पर स्थित हंस ने दया के भाव से पर फैला कर उसके मुख पर छाया कर दी।

फिर गाढ़ी नींद में सुख पूर्वक सोए हुए उस मुसाफिर ने (उबासी लेने के लिए) मुख खोल दिया।

इसके अनन्तर दूसरे के सुख को न सहन करने वाला कव्वा स्वभाव की दुष्टता के कारण उसके मुख में बीठ करके भाग गया।

फिर जब उस मुसाफिर ने उठ कर ऊपर की ओर देखा तो उसने हंस को देखा और उसे बाण से मार दिया ।

इस लिए मैं कहता हूं—न स्थातव्यं न गन्तव्यम् दुर्जनेन समम्—इत्यादि ।

हे देव ! बटेर की कथा भी कहता हूँ ।

बटेर के मरण की कथा

पृष्ठ ६७

एक बार सभी पक्षी भगवान् गरुड़ की यात्रा के प्रसंग से समुद्र के तीर की ओर चले गए। कव्वे के साथ बटेर भी चल पड़ा ।

फिर जाते हुए गोपाल के मस्तक पर रखे हुए दही के पात्र से वह कव्वा बार बार दही खाता था ।

फिर जब उसने दही का पात्र भूमि पर रख कर ऊपर की ओर देखा तो उसने कव्वे और बटेर को देखा ।

फिर उस से हटाया गया (दुखी किया गया) कव्वा भाग गया। धीरे धीरे चलने वाला, स्वभाव से निरपराध (बेकसूर) बटेर पकड़ा जाकर मार दिया गया ।

इस लिए मैं कहता हूँ—न स्थातव्यं न गन्तव्यं इत्यादि ।

फिर मैंने कहा—भाई तोते ! इस प्रकार तू क्या कह रहा है ? मुझे तो जैसे महाराज हैं, वैसे ही आप हैं।

तोते ने कहा—ऐसा ही हो, परन्तु दुष्टता तो आप के वचन से ही जान ली गई है। क्योंकि इन दोनों राजाओं की लड़ाई में आप का वचन ही मूल कारण है ।

फिर मैं उस राजा से व्यवहार के अनुकूल सत्कार करके भेज दिया गया ।

तोता भी मेरे पीछे पीछे आ रहा है। यह सब कुछ कर जो भी कर्तव्य हो, कीजिए।

चक्रवाक ने हंस कर कहा—हे देव ! बगले ने तो दूसरे में भी जा कर शक्ति के अनुसार राजकार्य किया है। प हे देव ! यह मूर्खों का स्वभाव है। क्योंकि—

शतं दद्यात्—

(२०) सैंकड़ों रुपए भी दे दे, परन्तु विवाद न करे। अ चाहे हानि भी उठानी पड़े, परन्तु लड़ाई झगड़ा न करे। कार बिना भी लाड़ाई झगड़ा करना यह मूर्ख का लक्षण है।

राजा ने कहा—बीती हुई बात पर उपालम्भ (उलाहना) से क्या। अब करने योग्य कार्य कीजिए।

चकवा बोला—देव ! एकांत में कहूँगा। क्योंकि—

वर्णाकार—

(२१) विद्वान् मनुष्य रूप, आकृति, बोलने के ढंग, और मुख के विकार से मन की बात को जान लेते हैं। इस एकांत में विचार करें।

राजा और मन्त्री वहां ठहर गए। दूसरे और चले गये।

चकवे ने कहा—देव ! मैं ऐसा समझता हूँ। किसी हमारे अधिकारी की प्रेरणा से बगले ने ऐसा किया है।

राजा ने कहा—इस का कारण पीछे से देखना (सोच अब तो जो कर्तव्य हो, उसे विचारिए।

चकवा बोला—देव ! पहले वहां दूत (गुप्तचर) जा (उसके द्वारा) हम उस का (किया हुआ) काम, बल और अ (ताकत और कमज़ोरी) जानेंगे।

जैसे (कहा है)

भवेत्स्वपर—

(२२) अपने और शत्रु के राज्य के कार्य्य और अकार्य्य (अच्छे और बुरे कार्य्य) देखने के लिए राजा की आंख गुप्तचर ही होता है। जिस राजा का वह (गुप्तचर रूपी नेत्र) नहीं है, वह अन्धा ही है।

और वह दूसरा विश्वास पात्र (साथी) साथ लेकर जाए। वह स्वयं वहाँ रह कर, वहां का मन्त्र सम्बन्धी कार्य्य (परस्पर निश्चित किया हुआ कार्य्य क्रम) चुपके से जान कर और कहकर दूसरे को भेज देगा।

जैसे कहा है—

तीर्थाश्रम—

(२३) तीर्थ, आश्रम और देव मन्दिरों में शास्त्रों के विज्ञान् अर्थात् पठन-पाठन के कारण से तपस्वियों के चिह्नों को धारण करने वाले अपने (गुप्तचरों) दूतों से बात चीत करनी चाहिए।

गुप्तचर वह है, जो जल और स्थल में चलता है। इस लिए उस बगले को ही इस काम में लगाइए। ऐसा ही कोई दूसरा बगला (सहायक रूप में) साथ जाए। उस के घर के लोग राजद्वार में रहें। किन्तु हे देव ! यह काम भी गुप्त रूप में करना होगा।

षट्कर्णोभिद्यते—

(२४) छः कानों में अर्थात् तीन मनुष्यों में गई हुई सम्मति भेद को प्राप्त हो जाती है, अर्थात् छिपी नहीं रहती , इसी प्रकार बातचीत में आया हुआ मन्त्र (बहुत लोगों के आगे रखा हुआ विचार) फूट जाता है। इस लिए राजा को चाहिए कि एक आप और एक दूसरे के साथ विचार करे।

देखिए—

मन्त्रभेद—

(२५) मन्त्रभेद अर्थात् सम्मति के प्रकट हो जाने पर जो राजाओं को हानियां उठानी पड़ती हैं (उन के सामने जो दोष उपस्थित होते हैं) उनका समाधान नहीं किया जा सकता, अर्थात् वे दूर नहीं की जा सकतीं, यह नीति के जानने वालों का मत है।

राजा ने सोच कर कहा— मैंने अच्छा दूत प्राप्त कर लिया है।

मन्त्री बोला—तो संग्राम में विजय भी प्राप्त कर लिया समझिये।

पृष्ठ ६६—इसी अवसर में प्रतिहार (द्वारपाल) ने आ कर प्रणाम करके कहा—हे देव! जम्बुद्वीप से आया हुआ एक तोता द्वार पर ठहरा हुआ है।

राजा चक्रवाक की ओर देखने लगा।

चक्रवाक ने कहा—पहले उसे दूतावास (अतिथियों के लिए नियत स्थान) में ले जा कर बिठाइए। फिर पीछे से उसे मिलना।

प्रतिहार (द्वारपाल) उसे ले कर अतिथि शाला में चला गया।

राजा ने कहा—युद्ध तो अब उपस्थित हो गया, अर्थात् युद्ध का समय तो अब समीप ही है।

चक्रवाक बोला—हे देव! तो भी शीघ्र युद्ध करना उचित नहीं है। क्योंकि—

स किं भृत्यः—

(२६) वह क्या सेवक और क्या मन्त्री है, जो पहिले

ही बिना विचारे राजा को युद्ध के उद्योग अथवा अपनी भूमि अर्थात् अपने राज्य छोड़ने का उपदेश दे।

और भी—

विजेतुं—

(२७) (राजा) युद्ध के द्वारा शत्रुओं को जीतने का कभी यत्न न करे। क्योंकि युद्ध करते हुओं को विजय अनित्य दिखाई देती है। यह आवश्यक नहीं कि विजय अवश्य हो जाए। और भी—

साम्ना दानेन—

(२८) साम (शान्ति) से, दान से (कुछ लोभ दे कर) भेद (उन में फूट उत्पन्न कर) से इन सब के इकट्ठे उपयोग से अथवा अलग अलग अर्थात् इनमें से एक २ के द्वारा शत्रुओं को वश में करने का यत्न करे, केवल युद्ध से वश में करने का यत्न न करे। और भी –

न तथा—

(२९) प्राणियों से वैसे पत्थर (शिलाएँ) सुगमता से नहीं उठाए जा सकते जैसे कि लकड़ियां, काष्ठ, अर्थात् युद्ध करना तो पत्थर उठाने के बराबर है, दूसरे उपाय काष्ठ के उठाने के समान हैं, सुगम हैं। थोड़े से उपाय से बड़ी सिद्धि प्राप्त करना, यही मन्त्र का बड़ा भारी फल है।

परन्तु अब युद्ध को उपस्थित (आया हुआ) देख कर काम करना चाहिए।

हे देव! खास कर वह राजा चित्रवर्ण बड़ा बली है। क्योंकि—

बलिना सह—

(३०) बली के साथ युद्ध करना चाहिए ऐसी (नीति

शास्त्र की) विधि नहीं है। वह युद्ध जो हाथियों के साथ किया जाए, मनुष्यों के लिए मृत्यु ही लाने वाला है। और

कौर्मवत् सङ्कोच—

(३१) कछुए की तरह सङ्कोच को धारण कर मनुष्य चोट को भी सहन करे। नीति के जानने वाला समय पर क्रूर सर्प की तरह उठे।

इसलिए उसके दूत इस तोते को तब तक आश्वासन दे कर रखिए जब तक किला तैयार न हो जाए। क्योंकि—

पृ० ७०—एकः शतं योधयति—

(३२) दुर्ग में स्थित एक ही धनुषधारी मनुष्य सौ मनुष्यों से और सौ मनुष्य लाखों से युद्ध कर सकते हैं। इसी लिए किले का निर्माण किया जाता है।

दुर्गंकुर्यात्—

(३३) बड़ी २ खाइयों वाला, ऊँची दीवारों वाला, यन्त्र और जल से युक्त, पहाड़, नदी, और मरु भूमि (बन) में किला बनाना चाहिए।

विस्तीर्णताति—

(३४) फैलाव, अतिविषमता (स्थानों का ऊँचा नीचा होना) रस, अन्न और लकड़ी का संग्रह (इकट्ठा करना) किले में दाखिल होने और उससे निकलने का मार्ग, ये किले की सात सम्पत्तियां हैं।

राजा ने कहा—किले के बनाने में किसे लगाया जाए।

चकवा बोला।

यो यत्र—

(३५) जो मनुष्य जिस कार्य के करने में कुशल हो, उसे वहां लगाएं। जिस ने कोई कार्य न किया हो, और न

देखा हो, अर्थात् यदि उसमें उसको लगा दिया जाय तो वह शास्त्रज्ञ होता हुआ भी घबड़ा जाता है।

इस लिए सारस को बुलाइए।

ऐसा किए जाने पर आए हुए सारस को देख कर राजा ने कहा—हे सारस तू शीघ्र ही किला तय्यार कर दे।

सारस ने प्रणाम करके कहा हे देव ! पहिले ही देर से विचारा हुआ यह बड़ा सरोवर ही हमारा किला है। परन्तु इसके बीच के द्वीप में वस्तुओं का संग्रह कीजिए। क्योंकि—

धान्यानाम्—

(३६) हे राजन् ! अन्न का संग्रह सभी संग्रहों से उत्तम है। क्योंकि मुख में डाला हुआ रत्न प्राणों को नहीं बचा सकता।

राजा ने कहा—जल्दी जा कर सारी तय्यारी करो।

फिर प्रविष्ट हो कर द्वारपाल ने कहा हे देव! सिंहलद्वीप से आया हुआ मेघवर्ण नाम का कौआ परिवार सहित द्वार पर खड़ा है। वह आप को मिलना चाहता है।

राजा बोला—कौआ सब कुछ जानने वाला बहुद्रष्टा (तजर्बेकार) होता है, इसलिए उसे अपने पास रखना चाहिए।

चकवे ने कहा—देव ! यह ठीक इसी तरह है, परन्तु कौआ स्थल में रहने वाला है, अतः हमारे शत्रु पक्ष का है। उसे कैसे अपने पास रखा जा सकता है। जैसे कहा भी है—

पृष्ठ ७१—आत्मपक्षम्—

(३७) जो अपने पक्ष को छोड़ कर दूसरे पक्ष से मेल रखता है। वह मूर्ख नीलवर्ण गीदड़ की तरह शत्रुओं से मारा जाता है।

राजा ने कहा—यह कैसे ?

मन्त्री ने उत्तर दिया।

नीलवर्ण शृगाल की कथा

बन में कोई गीदड़ रहता था। वह अपनी इच्छा से नगर के समीप घूमता हुआ नील के बर्तन में गिर गया। फिर वहाँ से उठने में असमर्थ हुआ २ प्रातःकाल अपने आप को मरा हुआ सा दिखा कर पड़ा रहा।

फिर नील बर्तन के स्वामी ने उसे मरा हुआ जान कर, उस से निकाल कर, दूर ले जा कर छोड़ दिया, इस से वह भाग गया।

फिर उसने वन में जाकर अपने आप को नीले रंग का देख कर सोचा कि अब मैं अच्छे रंग का हो गया हूँ। सो मैं अपना उत्कर्ष (बड़ाई) क्यों न बना लूँ।

यह सोच कर गीदड़ों को बुला कर उसने कहा। "भगवती बन की देवी ने अपने हाथों से सभी औषधियों के रस के द्वारा मुझे वन के राज्य पर अभिषिक्त किया है, अर्थात् बन का राजा बना दिया है। सो आज से ले कर सभी काम मेरी आज्ञा से करने होंगे।

गीदड़ों ने भी उसे उत्तम वर्ण का जान कर दण्डवत् प्रणाम करके कहा—जैसे आप आज्ञा देते हैं, वैसे ही किया जाएगा।

इसी क्रम से सभी बनवासी जीवों में उसका प्रभुत्व (हकूमत) हो गया।

फिर अपनी ज्ञाति से घिरे हुए उस ने अपनी बड़ाई को बना लिया।

फिर उसने व्याघ्र सिंह आदि उत्तम परिजनों (समीप-वासी सेवकों) को पाकर, सभा में बैठे हुए गीदड़ों को देखकर

लज्जित होते हुए अपनी जाती वालों (गीदड़ों) को तिरस्कृत कर बाहर निकाल दिया।

इस के अनन्तर दुःखी गीदड़ों को देख कर किसी बूढ़े गीदड़ ने यह प्रतिज्ञा की कि विषाद मत करो। क्यों कि इस अनभिज्ञ (बे समझ) ने नीति और सभी बातों के मर्म के जानने वाले हमको अपने पास से निकाल दिया है सो जिस प्रकार इसका नाश हो जाए वैसा ही हम से किया जाएगा।

पृ० ७२—क्योंकि ये व्याघ्र आदि केवल रङ्ग से ही छले हुए इसे गीदड़ न जानकर राजा समझ रहे हैं, इस लिए तुम ऐसा करो जिस से इसका परिचय हो जाय अर्थात् पता लग जाए कि यह गीदड़ है। इस में ऐसा करना चाहिए कि सन्ध्या के समय इसके समीप मिलकर एकदम बड़ा भारी शब्द (शोर) करने लग जाओ। उस शब्द को सुन कर जाति के स्वभाव से इस से भी शब्द किया जाएगा। क्योंकि—

यःस्वभाव—

(३८) जैसा जिस का स्वभाव होता है, वह दुरतिक्रम (बड़ी कठिनता से बदला जा सकने वाला) होता है, अर्थात् उस का परिवर्तन कठिन है। कुत्ते को यदि राजा बना दिया जाए तो क्या वह जूते को नहीं चबाएगा, जूता चाटना उसका स्वभाव है, जिसे वह राजा बनने पर भी नहीं छोड़ सकेगा।

फिर शब्द से पहिचान कर वह व्याघ्र से मार दिया जाएगा। इसके अनन्तर (उन के द्वारा) ऐसा करने पर वैसा ही हुआ।

जैसे कहा भी है।

छिद्रं मर्मच—

(३९) अपना (अपने घर का) शत्रु छिद्र (दोष) मर्म

(भेद-रहस्य) और शक्ति आदि सभी कुछ जानता है । उसके भीतर के भेद को जानता हुआ उसके भीतर प्रविष्ट होकर उसे नष्ट कर देता है । जैसे सूखे वृक्ष को अग्नि जला देती है ।

इस लिए मैं कहता हूँ—आत्मपक्षं परित्यज्य—इत्यादि ।

राजा ने कहा—यद्यपि ऐसा ही है, तो भी यह दूर से आया है, अतः इसके रखने का ही विचार करना चाहिए ।

चकवा बोला—देव ? दूत भेज दिया गया है । किला भी तैय्यार है । तोते को भी मिल कर रवाना कर दीजिए ।

नन्दंजघान—

(४०) चाणक्य ने (प्राणनाशक) तीक्ष्ण (क्रूर कर्म करने वाले) गुप्त दूतों को भेजकर, उनके प्रयोग के द्वारा नन्द को मार दिया । इस लिए राजा को वीरों से युक्त हो कर दूर ही से दूत से भेंट करनी चाहिए ।

फिर सभा करके तोते और कव्वे को बुलाया गया । फिर तोता ऊंचे आसन पर बैठ कर कुछ सिर ऊँचा किए हुए बोला—ओ हिरण्यगर्भ ? तुझे महाराजाधिराज श्रीमान चित्रवर्ण आज्ञा देते हैं कि यदि तुझे अपने जीवन और राज्य लक्ष्मी से प्रयोजन है, अर्थात जीवन और धन बचाना चाहते हो तो आकर हमारे चरणों में प्रणाम कर । नहीं तो रहने के लिए कोई और दूसरा स्थान ढूंढो ।

राजा ने क्रोध से कहा—आः ! क्या हमारी सभा में कोई भी ऐसा नहीं जो इस के गले में अंगूठा देकर, इसे पकड़ कर निकाल दे ।

मेघवर्ण ने उठकर कहा—देव ? मुझे आज्ञा दीजिए । मैं इस दुष्ट तोते को मारता हूँ ।

सर्वज्ञ ने राजा और कव्वे को शांत करते हये कहा, पहले सुनिये ।

पृ० ७३

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः—

(४१) वह सभा सभा नहीं, जिस में वृद्ध न हों। वे वृद्ध कहलाने के योग्य नहीं, जो धर्म की बात न कहें। वह धर्म भी धर्म नहीं, जिस में सत्य न हो। उस सत्य को सत्य न समझो। जो छल से युक्त हो।

क्योंकि धर्म यह है।

दूतो म्लेच्छोऽप्यवध्यः—

(४२) दूत चाहे नीच भी हो, वह अवध्य अर्थात् मारने के अयोग्य है, क्योंकि राजा का मुख दूत होता है। शस्त्रों के उठाये हुए होने पर भी दूत कभी झूठ नहीं बोलता है।

फिर राजा और कौआ अपनी अपनी असली हालत में आगए। तोता भी उठ कर चला गया।

फिर चकवे से लाकर, समझा कर सुवर्ण के भूषण आदि देकर विदा किया हुआ वह चला गया।

तोते ने भी विन्ध्याचल में जाकर राजा को प्रणाम किया।

उसे देख कर राजा चित्रवर्ण ने कहा—

कैसा समाचार है ? वह देश कैसा देश है ?

तोते ने कहा—देव ! संक्षेप में बात यह है कि युद्ध की तैयारी कीजिए। वह कर्पूरद्वीप देश स्वर्ग का एक भाग है, उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है।

फिर सभी भले पुरुषों को बुलाकर राजा विचार करने के लिए बैठ गया।

और बोला - अब युद्ध तो कर्तव्य ही है, इस में जो कुछ करना चाहिए, वह उपदेश दीजिए।

युद्ध तो अवश्य कर्तव्य ही है।

दूरदर्शी नाम के गीध ने कहा व्यसनी होने के कारण (केवल शौक से) युद्ध करना उचित नहीं है। क्योंकि—

मित्रामात्य—

(४३) मित्र, मन्त्री और बन्धुवर्ग जब दृढ़ भक्ति रखने वाले (पक्का हित चाहने वाले हों) और शत्रुओं के विरोधी हों, तब युद्ध करना चाहिए।

भूमिमित्रं—

(४४) भूमि, मित्र और सुवर्ण अर्थात् धन, युद्ध के ये तीन फल हैं। जब इन में से किसी एक का होना निश्चित हो तो युद्ध करना चाहिए।

पृ० ७४—राजा ने कहा पहले मन्त्री मेरे बल का निरीक्षण करे। तब इन के उपयोग को जाने कि कौन कहां २ पर उपयुक्त है। तब ज्योतिषी को बुलाइए, जो निश्चय करके यात्रा के लिए शुभ लग्न बताए।

मन्त्री बोला तो भी एक दम यात्रा (शत्रु पर चढ़ाई) करना उचित नहीं है।

विशन्ति—

(४५) जो मूर्ख बिना विचारे शत्रुओं के बल में प्रविष्ट होते (घुसते) हैं, वे अवश्य ही तलवार की धार के स्पर्श को पाते हैं, अर्थात् उनके कण्ठ पर तलवार चलती है। वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

राजा ने कहा कि हे मन्त्रिन मेरे उत्साह को मत तोड़िये। विजय की अभिलाषा वाला जिस प्रकार शत्रु की भूमि अर्थात शत्रु के राज्य में आक्रमण कर सकता है, वैसे कहो

गीध ने कहा—वही कहता हूँ, परन्तु उस का करना ही अर्थात उस का अमल करना ही फलदायक हो सकता है।

जैसे कहा भी है।

किमन्त्रेण—

(४६) शास्त्र के अनुसार मन्त्रणा (परामर्श) करने से भी राजा को क्या लाभ है, यदि उस के अनुसार अनुष्ठान न किया जाए। केवल औषधि के ज्ञानमात्र से ही कभी रोग की शान्ति नहीं होती।

राजा की आज्ञा उल्लङ्घन करने योग्य नहीं है, इस लिए जैसे सुना है (जो कुछ मैं जानता हूँ) निवेदन करता हूं।

सुनो—

नद्यद्रि—

(४७) हे राजन्, नदी पहाड़ और वन के कठिन मार्गों में जहाँ जहाँ भी भय हो, वहां वहां पर सेनापति, बल (सेना) को किले के रूप में बनाकर चढ़ाई करे।

बलाध्यक्ष—

(४८) वीर पुरुषों से युक्त सेनापति आगे चले। स्त्री स्वामी, खज़ाना और जो निर्बल सेना है, ये मध्य में होने चाहिए।

पार्श्वयोरुभयोः—

(४९) दोनों तरफ घोड़े हों, घोड़ों के दोनों ओर रथ हों। रथों के दोनों ओर हाथी हों, और हाथियों के दोनों ओर पैदल हों।

पश्चात् सेनापति—

(५०) हे राजन्! बहादुर पुरुषों से युक्त सेनापति बल को साथ लेकर दुखियों (थके हुओं) को आश्वासन देता हुआ सब से पीछे जाए।

सयायाद्विषमं —

(५१) वह (सेनापति) विषम (ऊँचे नीचे) स्थान पर, जल युक्त और पहाड़ों वाले स्थान पर हाथियों से, समभूमि में घोड़ों से, जल में नौका से और सब स्थानों में पैदलों (पैदल फौज के साथ) यात्रा करे।

नाश्येत्—

(५२) दुर्ग के कण्टक अर्थात् दुःख देने वाले कण्टक रूप दुर्गनिवासी विरोधयों को कुचल कर शत्रुओं को क्लेश दे और नाश कर दे। दूसरे देश में गमन के समय रास्ता जानने वाले जंगली पुरुषों को आगे करे।

पृष्ठ ७५—यत्रराजा—

(५३) जहां राजा हो, वहां खजाना हो, बिना खजाने के राजता अर्थात प्रभुत्व नहीं रह सकता। अतः अपने सेवकों को (इनाम आदि के रूप में) धन देते रहना चाहिये। क्योंकि दाता (देने वाले के लिए) कौन युद्ध नहीं करता।

क्योंकि—

न नरस्य—

(५४) हे राजन्! मनुष्य का मनुष्य दास नहीं है। दास तो मनुष्य धन का है। गौरव वा लाघव (बड़ाई वा छुटाई) तो धन और अधन अर्थात् अमीरी और गरीबी पर आश्रित है।

क्योंकि—

अप्रसादोऽनधिष्ठानम्—

(५५) प्रसन्नता न दिखाना, इनाम आदि न देना, आश्रय न देना (अधिकार न देना) देने योग्य वस्तु को छीन लेना। समय का गुज़ार देना, उपाय न करना यह उन सेवकों की विरक्ति अर्थात् उनके विरोधी बन जाने का कारण हैं।

अपीड्यन्बलं—

(५६) विजय चाहने वाला राजा अपनी सेना को दुःखी न करता हुआ शत्रुओं को सेना के आक्रमण द्वारा दबा दे क्योंकि लम्बी यात्रा से थकी हुई शत्रुओं की सेना सुगमता से वश में की जा सकती है।

दायादपरः—

(५७) सम्पत्ति के अधिकारी (रिश्तेदार) के बिना शत्रुओं में फूट डालने वाला और कोई साधन नहीं है। इस लिए (फूट डालने के लिए) शत्रु के किसी रिश्तेदार (बन्धु) को यत्न से भड़काए।

संधाय युवराजेन—

(५८) स्थिर आत्मा वाले (दृढ़ चित्त वाले) शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले को चाहिए कि युवराज (राजा के ज्येष्ठ पुत्र) अथवा उस के मुख्य मन्त्री से मेल करके उसके घर में ही झगड़ा करवा दे।

मन्त्री ने हंस कर कहा कि यह सब सत्य है, परन्तु—

अन्यदुच्छृङ्खलं—

(५९) शास्त्रानुसार चलने वाला और प्रकार का होगा। और किसी नियमानुसार न चलने वाला मनमाना काम करने वाला और प्रकार का होगा। दोनों में समता नहीं हो सकती तेज और अन्धकार का एक स्थान में रहना कैसे हो सकता है। जैसे अन्धकार और प्रकाश एक स्थान पर नहीं रह सकते। इसी प्रकार शास्त्रों की अपेक्षा रखने वाला और शास्त्रों की उपेक्षा करने वाला ये दोनों भी एक स्थान पर नहीं रह सकते।

फिर राजा ज्योतिषी द्वारा बतलाए हुए लग्न में उठकर चल पड़ा।

फिर दूत द्वारा भेजा हुआ सेवक हिरण्यगर्भ के समीप आकर बोला। देव! राजा चित्रवर्ण तो आ ही पहुँचा है। अब मलयपर्वत की ऊपर की भूमि में सेना को ठहराए हुए बैठा है। किले का संशोधन (देख भाल) प्रतिक्षण करना चाहिए। क्योंकि वह गीध बड़ा योग्य मन्त्री है। किसी के साथ उसकी विश्वास की बात चीत के प्रसंग से ही मैंने उसका इशारा जान लिया था कि उस ने पहले ही से हमारे दुर्ग में कोई नियुक्त कर रखा है।

चकवे ने कहा—हे देव! वह कौआ हो ही सकता है। राजा बोला—यह कभी नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो वह क्योंकर तोते का तिरस्कार करने के लिए यत्न करता। दूसरी बात यह है कि तोते के आने से उसे युद्ध का उत्साह हुआ वह देर से यहाँ रहता है।

पृ० ७६—मन्त्री ने कहा तो भी आगन्तुक (बाहर से आए हुए) पर सन्देह होता है।

राजा ने कहा—कभी २ बाहर से आए हुए भी उपकारी (भलाई करने वाले) दिखाई देते हैं। सुन—

परोऽपि—

(६०) हित करने वाला पराया भी बन्धु है। न हित करने वाला बन्धु भी पराया है। शरीर में उत्पन्न होने वाली व्याधि (बीमारी) भी शत्रु है। वन में उत्पन्न होने वाली औषधि भी हितकर होने से मित्र (लाभकारी) है।

और भी—

आसीद्वीरवरो—

(६१) राजा शूद्रक का वीरवर नाम का सेवक था। उस

ने थोड़े से समय में अर्थात् थोड़ा सा समय ही वहाँ रह कर (उसके हित के लिए) अपना पुत्र दे दिया।

चकवे ने पूछा—यह कैसे ?

राजा ने कहा—

वीरवर की कथा

मैं पहले राजाशूद्रक के क्रीड़ा सरोवर में निवास करता था। वहाँ पर वीरवर नाम के राजपुत्र ने किसी देश से आकर, राजद्वार के समीप पहुंच कर द्वारपाल से कहा। "मैं नौकरी चाहने वाला राजपुत्र हूँ। मुझे राजा के दर्शन करवाइए, अर्थात् राजा से मिलाइए।

फिर उस (द्वारपाल) के द्वारा राजा से मिलाया हुआ वह (वीरवर) बोला—हे देव ! यदि मुझ सेवक से कोई प्रयोजन है तो मेरा वेतन नियत कर दें।

शूद्रक ने कहा कि तेरा क्या वेतन होगा। वीरवर बोला—प्रतिदिन सोने की चार सौ मोहरें।

राजा ने कहा—तेरी सामग्री क्या है ? अर्थात् तेरे पास (सेवा) का क्या २ सामान होगा।

वीरवर बोला दो भुजाएँ और तीसरी तलवार।

राजा ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता यह सुनकर वीरवर प्रणाम कर चला गया।

इसके अनन्तर मन्त्रियों ने कहा—देव ! चार दिन का वेतन देकर इसका स्वरूप अर्थात् इसकी असलीयत जानना चाहिए कि क्या उपयुक्त (योग्य) होता हुआ इतना वेतन लेता है अथवा अयोग्य।

पृष्ठ ७७—फिर मन्त्री के वचन से बुलाकर वीरवर को ताम्बूल देकर सुवर्ण की चार सौ मुद्रा दे दीं।

और उन मुद्राओं का इस्तेमाल राजा ने छिप कर देखा उसका आधा भाग वीरवर ने देवता और ब्राह्मणों को दे दिया। बाकी आधे का आधा दुखियों को। शेष आधे को अपने खान पान के खर्च और विलास में लगा दिया।

यह सब दैनिक (नित्य) कृत्य करके रातदिन तलवार हाथ में लिए हुए राजद्वार की सेवा करता अर्थात् राजद्वार पर खड़ा रहता था। जब राजा स्वयं (जाने की) आज्ञा देता तो अपने घर को जाता था।

फिर चौथी रात में राजा ने करुणा भरी रोने की आवाज़ को सुना।

शूद्रक ने कहा—यहाँ द्वार पर कौन है ? उसने कहा देव ! मैं वीरवर।

राजा ने कहा—रुदन का अनुसरण कीजिए अर्थात् रोने की आवाज़ का पीछा करो।

वीरवर "जैसे आप आज्ञा दें" यह कह कर चल पड़ा।

राजा ने सोचा—यह ठीक नहीं है। यह अकेला राजपुत्र मैंने गाढ़ अन्धकार में भेज दिया है। सो इसके पीछे जाकर मैं भी देखता हूँ कि यह क्या है !

फिर राजा भी तलवार लेकर उसके पीछे २ नगर से बाहर निकल गया।

वीरवर ने जाकर रूप यौवन से युक्त सभी तरह के भूषणों से अलंकृत कोई स्त्री देखी और उस से पूछा। तू कौन है ? और किस लिए रो रही है ?

स्त्री ने कहा—मैं इस राजा शूद्रक की लक्ष्मी हूं। देर से इनकी भुजछाया में बड़े सुख से आराम कर रही हूं। अब दूसरी जगह चली जाऊँगी।

वीरवर बोला—जहाँ अपाय (हानि) होता है, वहां उपाय भी हो सकता है। सो किस तरह आपका यहाँ ही रहना हो सकता है?

पृष्ठ ७८—लक्ष्मी ने कहा—यदि तू अपने पुत्र शक्तिधर को जो बत्तीस चिह्नों से युक्त है, भगवती सर्वमंगला (सब प्रकार का मंगल करने वाली देवी) की भेंट कर दे, तो मैं फिर यहां देर तक सुख से रहूंगी, यह कह कर देवी अदृश्य हो गई अर्थात् छिप गई।

फिर वीरवर ने अपने घर जा कर सोई हुई अपनी स्त्री और पुत्र को जगाया।

वे दोनों नींद छोड़ उठ कर बैठ गए। वीरवर ने वह सारा लक्ष्मी का वचन (उन्हें) सुना दिया।

यह सुन कर आनन्द सहित प्रसन्न हुआ २ शक्तिधर बोला—मैं धन्य हूं—स्वामी के राज्य की रक्षा के लिए जिसकी आवश्यकता पड़ रही है। हे पिता! अब विलम्ब का क्या कारण है। कभी भी जब ऐसा अवसर प्राप्त हो ऐसे कर्म में इस देह का लग जाना प्रशंसनीय होता है। क्योंकि—

धनानि जीवितं—

(६२) बुद्धिमान् धन और जीवन को परोपकार के लिए छोड़ दे। अर्थात् परोपकार में लगा दे, विनाश के नियत होने पर अच्छे कार्य के लिये इनका लगा देना उत्तम है।

शक्तिधर की माता ने कहा—यदि आप ऐसा न करेंगे तो

किस और कर्म से इस बड़े वेतन का बदला चुकाया जा सकेगा।

यह सोच कर वे सर्वमंगला भगवती के स्थान को चले गए।

वहां सर्वमंगला की पूजा करके वीरवर ने कहा—देवी! प्रसन्न हूजिए। महाराजा शूद्रक की जय हो। यह भेंट ग्रहण कीजिए, यह कह कर (उसने) पुत्र का सिर काट दिया।

फिर वीरवर ने विचार किया। राजा से लिए हुए वेतन का तो बदला चुका दिया। अब मुझ पुत्र हीन का जीवन व्यर्थ है। यह सोचकर अपना शिर (भी) काट लिया।

फिर पुत्र और स्वामी के शोक से पीड़ित स्त्री ने भी वैसे ही किया, अर्थात् अपना शिर काट लिया।

यह सब सुन कर और देख कर राजा ने आश्चर्य के साथ सोचा।

जीवन्ति च—

(६३) मेरे जैसे छोटे छोटे जीव जीते हैं, और मर जाते हैं। इसके बराबर संसार में न कोई हुआ है, न होगा?

पृष्ठ ७६—सो इस से छोड़े गए राज्य से भी मुझे क्या प्रयोजन है? तब राजा शूद्रक ने भी अपना शिर काटने के लिए तलवार उठा ली।

इसके अनन्तर सामने प्रकट हुई २ भगवती सर्वमंगला ने राजा को हाथ से पकड़ लिया और कहा।

हे पुत्र! मैं तुझ पर प्रसन्न हूं। इतना साहस न करें। जीवन के अन्त में भी अर्थात् मर जाने पर भी तेरे राज्य का नाश नहीं होगा।

राजा ने दण्डवत् प्रणाम करके कहा हे देवी! मुझे राज्य और जीवन से क्या प्रयोजन है। यदि मैं अनुकम्पीय (आप

की कृपा के योग्य) हूं, अर्थात् मुझ पर कृपा करनी है तो मेरी शेष आयु से यह स्त्री तथा पुत्र के साथ वीरवर जी उठे। नहीं तो यथा प्राप्त (जिस प्रकार मिली है, उसी) गति को प्राप्त होता हूं।

भगवती ने कहा—पुत्र ! तेरे इस साहस के उत्कर्ष से और सेवक पर पुत्र जैसे प्यार से मैं प्रसन्न हूं। जाओ, विजयी बनो। यह भी वीरवर परिवार सहित जी उठे। यह कह कर देवी अदृश्य हो गई। छिप गई।

फिर वीरवर स्त्री और पुत्र के साथ जीवन को प्राप्त कर अपने घर चला गया।

राजा भी उन से न देखा हुआ शीघ्र महल में जाकर वैसे ही सो गया।

इसके अनन्तर द्वार पर स्थित वीरवर राजा से पूछा हुआ बोला। देव ! वह रोती हुई स्त्री मुझे देख कर अदृश्य हो गई। और कोई बात नहीं है। उस का वचन सुन कर प्रसन्न हुआ २ राजा आश्चर्य से सोचने लगा—कैसे इस बड़े बल वाले की स्तुति की जाए।

फिर उस राजा ने प्रातः काल शिष्ट (भले) पुरुषों की सभा करके उनके सामने समग्र वृत्तान्त रख कर प्रसन्नता से कर्णाटक का राज्य दे दिया।

सो क्या आगन्तुक (बाहर से आया हुआ) जातिमात्र से दुष्ट होता है। उन में भी उत्तम मध्यम और अधम होते हैं।

चक्रवाक बोला—

योऽकार्यम्—

(६४) जो मन्त्री राजा की इच्छा से अकार्य अर्थात् बुरे

कार्य्य को कार्य्य की तरह करता है, वह नीच मन्त्री है। स्वामी के मन को दुःख पहुंचा देना अच्छा है, परन्तु बुरा कार्य करवाकर उसका नाश करवा देना ठीक नहीं।

पृ० ८० वैद्यो गुरुश्च—

(६५) जिस राजा के वैद्य गुरु और मन्त्री प्रियवादी (मीठा बोलने वाले) हों, अर्थात् उसकी हाँ में हाँ मिला देने वाले हों, वह राजा शरीर, धर्म और कोष से शीघ्र नष्ट हो जाता है। वैद्य के मधुर भाषी होने से शरीर, गुरु के प्रियवादी होने से धर्म, और मन्त्री के मधुरभाषी होने से कोष नष्ट हो जाता है।

हे देव ! सुनिए—

पुण्याल्लब्धम्—

(६६) पुण्य कर्मों के द्वारा (अच्छी प्रारब्ध से) जो एक को मिला है, वह मुझे भी मिलेगा, इस लोभ से भिक्षु को मार कर धन चाहने वाला नापित (नाई) भी मारा गया।

राजा ने पूछा—वह कैसे ?

मंत्री ने उत्तर दिया। नापितस्य कथा

अयोध्यानगरी में चूड़ामणि नाम का क्षत्रिय था।

उस धन चाहने वाले ने बड़े ही शरीर के क्लेश से, अर्थात् शरीर को कष्ट देकर भगवान् शंकर का देर तक आराधन किया।

फिर भगवान शंकर की आज्ञा से पाप से रहित उसे स्वप्न में दर्शन देकर यक्षों के स्वामी कुबेर ने आदेश दिया कि तूने आज प्रातःकाल क्षौर (मुण्डन) करवा कर दण्ड हाथ में लिए हुए अपने घर के द्वार पर छिप कर ठहरना। फिर जिस किसी भी आङ्गन (सेहन) में आए हुए भिक्षुक को देखो

उसे निर्दयता से दण्ड के प्रहार से पीटना। वह भिक्षु उसी क्षण सुवर्ण से भरा हुआ कलश बन जाएगा। जिस के द्वारा आप जीवन पर्य्यन्त सुखी रहोगे।

इस के अनन्तर उसके द्वारा वैसा करने पर वैसा ही हुआ।

क्षौर (हजामत) बनाने के लिए आए हुए नाई ने यह सब कुछ देख कर सोचा—ओ! धन प्राप्त करने का यह उपाय है। सो मैं भी क्यों न ऐसा करुं।

उस दिन से लेकर वह नाई प्रतिदिन उसी तरह दण्ड हाथ में लिए हुए छिप कर भिक्षु आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। एक बार उस ने वैसे ही भिक्षु को पाया और दण्ड से प्रहार कर उसे मार दिया।

उस अपराध के कारण वह नाई भी राजपुरुषों से ताड़ना किया हुआ मर गया।

इस लिए मैं कहता हूँ—पुण्याल्लब्धं यदेकेन इत्यादि।

पृ० ८१—राजा ने कहा - इस बात को जाने दो। प्रस्तुत (असली बात) पर विचार करो।

मंत्री ने कहा—देव! आए हुए दूत के मुख से मैंने सुना है कि महामंत्री गीध के उपदेश में चित्रवर्ण ने अनादर प्रकट किया है। इस लिए वह मूर्ख जीता जा सकता है।

जैसे कहा है—

लुब्धः क्रूरो—

(६७) लोभी, निर्दय, आलसी, असत्यवादी, डरपोक किसी बात पर स्थिर न रहने वाला, मूर्ख, योधाओं का निरादर करने वाला शत्रु सुख से मारा जा सकता है।

इस लिए जब तक वह हमारे किले के द्वार को नहीं रोकता,

तब तक नदी, पहाड़ और वन के मार्ग में उस के बल को मारने के लिए सारस आदि सेनापति नियुक्त कर दिए जाएं।

जैसे कहा भी है।

दीर्घ वर्त्म—

(६८) लम्बे मार्ग के चलने से थकी हुई, नदी पहाड़ और बनों से घिरी हुई, भयानक अग्नि के भय से डरी हुई, भूख और प्यास से पीड़ित हुई।

प्रमत्तं—

(६९) मतवाली, भोजन में लगी हुई, बीमारी और कहत से पीड़ित हुई, ठीक प्रकार से न खड़ी हुई, संख्या में थोड़ी, वर्षा और वायु से व्याकुल।

पङ्क पांशु—

(७०) कीचड़, धूलि और जल से ढकी हुई, बिखरी हुई, डाकुओं से भगाई हुई, इस प्रकार की शत्रु की सेना को राजा नष्ट करे।

और भी—

अवस्कन्द—

(७१) और भी आक्रमण के भय से, जागने के कारण थकी हुई, दिन में सोई हुई, नींद से व्याकुल हुए २ सैनिकों वाली शत्रु की सेना को मारना चाहिए।

इस लिए उस प्रमादी (बेपरवाह) सेना को हमारे सेनापति जा कर दिन रात जैसा अवसर मिले तदनुसार नष्ट करें। ऐसा करने पर चित्रवर्ण के बहुत से सैनिक और सेनापति मार दिए गए। फिर चित्रवर्ण ने दुःखित हो कर अपने मन्त्री दूरदर्शी से कहा—हे तात! क्योंकर हमारी अपेक्षा कर रहे हो? क्या कोई मुझ से अविनय (धृष्टता) हो गई है।

जैसे कहा है—

दक्षः श्रियम—

(७२) चतुर मनुष्य धन को, ठीक खुराक खाने वाला नीरोगता को और नीरोग सुख को, उद्योगी विद्या के अन्त को और विनीत (नम्र) धर्म, अर्थ और यश को पाता है।

पृ० ८२—गीध बोला—हे देव ! सुनो।

अविद्वानपि—

(७३) अविद्वान (बेसमझ) भी राजा विद्यावृद्धों (विद्वानों) की सेवा से बड़ी भारी राज्यलक्ष्मी को पाता है, जैसे—जल के समीप का वृक्ष जल के सेवन से शोभा को प्राप्त करता है।

न साहसैकान्त—

(७४) और भी—न केवल साहस का अनुसरण करने वाले, अर्थात् जल्दी काम करने वाले से, और न ही कई प्रकार के उपायों से नष्ट हुई २ चित्तवृत्ति वाले से अच्छी २ सम्पत्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। सम्पत्ति तो नीति और बहादुरी दोनों में रहती है। अर्थात् सोच विचार कर काम करने से धन मिलता है, न कि जल्दी काम करने और उपायों के व्यर्थ सोचने में लगे रहने से।

अपनी सेना के उत्साह को देख कर केवल जल्दी करते हुए तुम ने मुझ से प्रस्तुत किए गए विचारों में बेपरवाही और वाणी की कठोरता दिखाई है। इस लिए उस बुरी नीति का फल भोग रहे हो।

ऐसे कहा भी है—

मुदं विषादः—

(७५) विषाद (गम) प्रसन्नता को, हेमन्त ऋतु का आगमन,

शरद ऋतु को, सूर्य अन्धकार को, कृतघ्नता अच्छे काम को, प्रियवस्तु का मिलना शोक को, नीति दुःख को और दुर्नीति (बुरी नीति) बढ़ी हुई सम्पत्ति को भी नष्ट कर देती है।

फिर मैंने भी सोचा कि यह राजा बुद्धिहीन है। नहीं तो अर्थात् यदि बुद्धिहीन न होता तो नीति शास्त्र की कथा रूपी चाँदनी को वाणी रूपी उल्काओं (चवातियों से) क्योंकर अन्धकार पूर्ण करता (मलीन करता)। क्योंकि—

यस्य नास्ति—

(७६) जिस मनुष्य की अपनी बुद्धि नहीं है, शास्त्र उसे क्या लाभ पहुंचा सकता है। जो नेत्रों से रहित है दर्पण (शीशा) उस को क्या करेगा अर्थात् उसे क्या लाभ पहुंचा सकता है।

इसके अनन्तर अंजली बाँध कर कहा हे तात ! यह मेरा अपराध है। अब मैं जिस तरह बाकी बचे हुए बल के साथ लौट कर विन्ध्याचल को चला जाऊँ, वैसा उपदेश दें।

गीध ने अपने मन में सोचा—अब उपाय करना चाहिए। क्योंकि

देवतासु गुरौ—

(७७) देवताओं पर, गुरु पर, राजाओं पर, गौओं और ब्राह्मणों पर बालक बूढ़े और बीमारों पर, सदा क्रोध रोकना चाहिए।

मन्त्री ने हंस कर कहा हे देव ! मत डरो, धैर्य धरो। सुनिए देव !

पृ० ८३—मन्त्रिणाम्—

(७८) मन्त्रियों की बुद्धि फूटे हुये (बिगड़े हुए) के मिलाने में, वैद्यों की बुद्धि सन्निपात की (कफ वातपित्त तीनों दोषों से उत्पन्न होने वाली) बीमारी में प्रकट होती है। सुख और

शान्ति की अवस्था में कौन पण्डित नहीं होता।

इस लिए अब आप के ही प्रताप से किले को तोड़ कर ले चलूँगा।

राजा बोला—अब थोड़ी सेना से यह कैसे हो सकता है।

गीध बोला—हे देव! सब कुछ हो जायगा। विजय पाने की इच्छा वाले को दीर्घ सूत्री न होना अर्थात काम में तत्पर रहना ही विजय सिद्धि का निश्चित लक्षण है इस लिए शीघ्र ही किले का द्वार रोक लीजिए।

इस के अनन्तर बगले (दूत) ने आ कर हिरण्यगर्भ को कहा—हे देव! थोड़े बलवाला भी यह राजा चित्रवर्ण गीध के मन्त्र बल से किले का द्वार रोकेगा।

राजहँस बोला—सर्वज्ञ! अब क्या करना चाहिये। चकवे ने कहा—अब अपने बल के सार और असार अर्थात् बल और अबल का विचार करना चाहिये कि कौन बलवान है और कौन निर्बल। यह जान कर उन्हें यथायोग्य सुवर्ण वस्त्र आदि इनाम रुप में देना चाहिये।

क्योंकि—

यः काकिनीं—

(७६) जो कुमार्ग में लगी हुई एक कौड़ी को भी हज़ार अशर्फियों के समान समझ कर उठा लेता है और समय पर करोड़ों रुपये भी खर्च कर देता है, उस राजसिंह को कभी लक्ष्मी नहीं छोड़ती।

राजा ने कहा—कैसे इस समय अधिक खर्च करना चाहिये!

कहा भी है—

आपत्ति काल में धन की रक्षा करे।

मन्त्री बोला—धनवान को कैसे आपत्तियाँ आ सकती हैं ?

(८०) राजा ने कहा—कभी शायद लक्ष्मी चलायमान हो जाए।

मन्त्री बोला—तो जमा किया हुआ धन भी नष्ट हो जाता है।

सो हे देव ! कृपणता को छोड़ कर दान मान आदि से अपने योधाओं का सत्कार करो।

वैसे कहा भी है—

परस्परज्ञाः—

(८१) एक दूसरे को जानने वाले, प्रसन्न, स्वामी के लिए प्राण तक भी देने के लिए तैयार, कुलीन, शूरवीर (स्वामी से) पूजित अर्थात् सत्कृत हुए २ शत्रु के बल को अच्छी तरह से जीत लेते हैं।

पृष्ठ ८४—सत्यं शौर्यम्—

(८२) सत्य, शूरता, दया और त्याग ये राजा के बड़े गुण हैं। इन से विहीन राजा निन्दा को प्राप्त होता है।

ऐसे अवसर पर तो मन्त्रियों का अवश्य ही सत्कार होना चाहिए

और कहा भी है—

यो येन—

(८३) जो जिस के साथ एक ही काम में लगा हुआ हो, उसी के साथ उस का उदय वा उसकी हानि हो, उसी विश्वास के पात्र को धन और प्राणों के काम में लगाना चाहिए।

धूर्तः स्त्रीवा—

(८४) जिस राजा के मन्त्री धूर्त, स्त्री, अथवा बालक हों, वह राजा अनीति की वायु से फैंका हुआ कार्य्य के समुद्र में डूब जाता है।

हे देव सुनो—

हर्ष क्रोधौ—

(८५) हर्ष, क्रोध जिस के वश में हों, कोष पर जिस का पूर्ण अधिकार हो, सदा जो भृत्यों की देखभाल में संलग्न रहे, उसके लिए पृथ्वी धन देने वाली होती है।

इसके अनन्तर मेघवर्ण ने प्रणाम करके कहा—हे राजन कृपादृष्टि कीजिए। यह युद्ध का अभिलाषी शत्रु किले के द्वार पर खड़ा है। सो आप की आज्ञा से बाहर निकल कर अपना बल दिखाता हूँ। जिस से आपके ऋण से छूट सकूँगा।

चकवे ने कहा—ऐसा मत करो। यदि बाहर निकल कर युद्ध करना था तो किले का आश्रय लेना ही व्यर्थ था।

हे देव! स्वयं जाकर आपको युद्ध देखना चाहिए

क्योंकि—

पुरस्कृत्य—

(८६) राजा को चाहिए कि अपनी सेना को आगे करके (उसे) देखता हुआ (उस से) युद्ध करवाए। स्वामी से सहारा दिया हुआ क्या कुत्ता भी सिंह के समान नहीं हो जाता।

इसके अनन्तर वे सब किले के द्वार पर बड़ा युद्ध करने लगे।

दूसरे दिन राजा चित्रवर्ण ने गीध को कहा हे तात अपने प्रतिज्ञात (प्रतिज्ञा किए हुए), वचन को पूरा करो।

गीध बोला हे देव! पहिले सुनिए।

अकालसहमत्यल्पं—

(८७) बहुत देर तक रक्षा करने में असमर्थ होना, बहुत छोटा होना, मूर्ख और व्यसनी नायक का होना, ठीक प्रकार से रक्षा किया हुआ न होना, और डरपोक योधाओं वाला होना ये सब किले के दोष हैं।

पृष्ठ ८५—ये किले के दोष यहाँ नहीं हैं।

उपजापश्चिरारोधः—

(८८) फूट पैदा करना, देर तक रोक रखना, आक्रमण करना, तीव्र पौरुष दिखाना—ये चार किले के जीतने के उपाय कहे गए हैं।

इनमें से शक्ति के अनुसार यत्न किया जा रहा है। (कान में कहता है) ऐसा ही है।

फिर सूर्योदय होने से पहले ही किले के चारों दरवाजों पर युद्ध आरम्भ होने पर किले के भीतर के सभी घरों में कौओं ने एक बार आग फैंकदी।

फिर किला ले लिया, यह कोलाहल सुनकर और बहुत घरों में प्रत्यक्ष प्रज्जवलित हुई २ अग्नि को देखकर राजहँस के सेवक तथा दूसरे किले के निवासी जल्दी से तालाब में प्रविष्ट हो गए।

सुमन्त्रितं—

(८९) क्योंकि—अच्छी मन्त्रणा (विचार करना), बहुत पराक्रम दिखाना, ठीक प्रकार से युद्ध करना और बहुत दूर तक भाग जाना—समय आने पर इनमें से शक्ति के अनुसार कोई काम करले, परन्तु बहुत विचार न करे।

राजहँस तो स्वभाव से ही मन्द मन्द चलने वाला था दूसरा जिसके साथ सारस था। उसे चित्रवर्ण के सेनापति कुक्कुट ने आकर घेर लिया।

हिरण्यगर्भ ने सारस को कहा—हे सेनापति सारस मेरे लिए अपना नाश मत करो। जाने को तू अब भी समर्थ है। सो जल में प्रविष्ट हो कर अपनी रक्षा कर। चूड़ामणि नाम के मेरे पुत्र को सर्वज्ञ की सम्मति से राजा बना देना।

सारस बोला—हे देव ! ऐसा कठोर वचन आपको नहीं कहना चाहिए। जब तक सूर्य्य और चन्द्र आकाश में हैं, तब तक आपकी विजय हो। हे देव ! मैं किले का अधिकारी हूँ। इसलिए मेरे मांस और रुधिर से लिपटे हुए द्वार के मार्ग से शत्रु भीतर प्रविष्ठ हों।

हे देव ! और भी—

क्षमी दाता—

(९०) क्षमा करने वाला, दान देने वाला और गुणों के ग्रहण करने वाला स्वामी कठिनता से मिलता है।

राजा ने कहा—यह सत्य है, परन्तु मैं जानता हूँ कि पवित्र, चतुर और हितकारी नौकर भी बड़ी कठिनता से मिलता है।

सारस बोला—हे देव ! सुनिए।

पृ० ८६—यदि समरमपास्य—

(९१) यदि युद्ध को छोड़ कर मृत्यु का भय न हो तो फिर यहाँ से दूसरे स्थान पर जाना उचित है। यदि मनुष्य का मरण आवश्यक है तो क्योंकर यश को व्यर्थ मलीन किया जाए।

प्रधान राज्य का अंग स्वामी है। उसकी हर तरह से रक्षा करनी चाहिए।

प्रकृतिः—

(९२) स्वामी से परित्यक्त बहुत समृद्धि (धन दौलत)

वाली भी प्रजा जी नहीं सकती। आयु के समाप्त होने पर धन्वन्तरि वैद्य भी क्या करेगा।

और भी—

नरेशे—

(६३) यह संसार राजा के नष्ट होने पर नाश हो जाता है। और उन्नत होने पर उन्नति करता है। जैसे कि सूर्य के उदय होने पर कमल विकसित होता है, और अस्त होने पर बन्द हो जाता है।

इसके अनन्तर कुक्कुट ने आकर राजहँस के शरीर पर तीव्र नखों से आघात (प्रहार) किया।

फिर जल्दी से समीप आकर सारस ने राजा को अपने शरीर से छिपा लिया।

इस के अनन्तर कुक्कुट से नाखून और मुख के प्रहारों से लहूलुहान (घायल) किये गए सारस ने अपने शरीर से ढक कर (छिपा कर) और प्रेरणा कर राजा को जल में फैंक दिया। और सेनापति कुक्कुट को चोचों के प्रहार से मार दिया।

पीछे से सारस भी बहुतों से मिल कर मार दिया गया।

फिर चित्रवर्ण राजा किले में प्रवेश करके किले में रखी हुई सभी वस्तुओं को ले कर बन्दी जनों (गुण गाने वालों) के जय २ के शब्दों से प्रसन्न किया हुआ अपनी सेना के निवास स्थान में चला गया।

इस के अनन्तर राजपुत्रों ने ने कहा—राजा की उस सेना में पुण्यात्मा सारस ही है, जिसने अपने शरीर के त्याग से स्वामी की रक्षा की है।

यह कहा भी ह।

जनयन्ति—

(६४) सभी गौएं गौओं की आकृति वाले अपने जैसे

पुत्रों को पैदा करती हैं। कोई २ ही गौ सींगों से कन्धे को उल्लेखन करने वाले अर्थात् बड़े २ सींगों वाले गौओं के पति (सांड) पुत्र को पैदा करती है।

पृष्ठ ८७—विष्णुशर्मा ने कहा—कि वह बड़ा बली विद्याधरियों के परिवार से घिरा हुआ स्वर्गसुख को भोगे।

वैसे कहा भी है—

आहवेषु—

(६५) जो वीर युद्धों में स्वामी के लिए अपना जीवन छोड़ देने वाले हैं। स्वामी के भक्त और कृतज्ञ हैं, वे मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं।

आप ने विग्रह सुन लिया।

राजपुत्रों ने कहा—सुनकर हम बड़े सुखी हुए हैं।

विष्णुशर्मा बोला—ऐसा और भी हो।

विग्रहः—

(६६) हाथी, घोड़ों और पैदल सेना से आप जैसे राजाओं का कभी भी युद्ध न हो, परन्तु नीति के मन्त्र अर्थात् विचाररूपी पवन के झोंकों से पीड़ित हुए २ आप के शत्रु पर्वतों की गुफाओं का आश्रय लें।

———

सन्धि

पृष्ठ ८८—फिर कथा के आरम्भ के समय राजपुत्रों ने कहा—हे आर्य्य ! हमने विग्रह सुन लिया है। अब संधि सुनाइए विष्णुशर्मा ने कहा सुनिए—सन्धि को भी मैं सुनाता हूँ, जिस का यह पहला श्लोक है।

वृत्तेमहति—

(१) बड़े संग्राम के समाप्त होने पर मध्यस्थ बने हुए गीध और चक्रवाक ने जिनकी सेना मर चुकी है, ऐसे दोनों राजाओं की थोड़ी देर में ही बात चीत से सन्धि करवा दी।

राजपुत्रों ने कहा—यह कैसे ? विष्णुशर्मा ने उत्तर दिया।

फिर उस राजहंस ने कहा—किस ने हमारे किले में अग्नि लगाई है ? क्या किसी बाहर के शत्रु से अथवा किसी शत्रु द्वारा लगाए हुए (गुप्त रूप से छोड़े हुए) हमारे किले में रहने वाले ने।

चकवा बोला—देव ! आप का निष्कारणबन्धु वह मेघवर्ण परिवार सहित दिखाई नहीं देता है, अतः मेरा ख्याल है कि यह उसी का ही काम है।

राजा ने क्षण भर सोच कर कहा—यह तो मेरी मन्द प्रारब्ध (भाग्य) है।

जैसे कहा भी है—

अपराधः—

(२) वह भाग्य का दोष है, न कि मन्त्रियों का, कभी अच्छी तरह से बना हुआ काम भी दैवयोग (किस्मत) से नष्ट हो जाता है।

मन्त्री बोला—यह ऐसा ही कहा है।

विषमां हि—

(३) मनुष्य बुरी दशा को प्राप्त कर भाग्य की निंदा करता है। परन्तु वह मनुष्य अपने कर्मों के दोष को नहीं जानता है।

सुहृदाम्—

(४) जो मनुष्य हित चांहने वाले मित्रों के वचन को पसंद नहीं करता, वह मूर्ख काष्ठ से गिरे हुए कछुए की तरह नाश हो जाता है।

राजा ने कहा—यह कैसे ?

मंत्री ने उत्तर दिया।

हंस और कूर्म (कछुए) की कथा

प्र० ८९—मगधदेश में फुल्लोत्पल नाम का सरोवर (तालाब) था। वहां देर से संकट और विकट नाम के दो हंस रहते थे। उन का मित्र कम्बुग्रीव नाम का कछुआ भी रहता था। फिर एक बार धीवरों (माहीगीरों) ने वहां आकर कहा कि आज हम यहाँ रह कर प्रातः काल मच्छ कछुए आदि मारेंगे। यह सुन कर कछुए ने हंसों को कहा—हे मित्रो ! क्या धीवरों की बातचीत सुनी है ? अब मुझे क्या करना चाहिये ?

हंसों ने कहा—पहले इसे जानिए, फिर प्रातः काल जो कुछ उचित होगा किया जाएगा।

कछुआ बोला—ऐसा मत करो। क्योंकि मैंने इस विषय में दूसरों पर आए हुए दुर्भाग्य का अनुभव किया हुआ है।

ऐसा कहा भी है।

अनागतविधाता—

(५) अनागत विधाता (आने वाली आपत्ति का उपाय

करने वाला) प्रत्युत्पन्नमति (समय आने पर उपाय को सोचने वाला) ये दोनों सुख से रहते हैं। और यद्भविष्य (किस्मत) पर रहने वाला नष्ट हो जाता है।

उन्हों ने कहा—यह कैसे ?

कछुए ने उत्तर दिया।

तीन मत्स्यों की कथा

पहले इसी तालाब में (इसी प्रकार के) धीवरों के आने पर तीन मत्स्यों (मच्छों) ने विचार किया। उस में एक अनागत विधाता नाम का मत्स्य था। उस ने कहा—

मैं तो दूसरे तालाव में जाता हूं। यह कह कर (वह दूसरे तालाब पर चला गया। दूसरे प्रत्युत्पन्नमति (समय आने पर उपाय सोचने वाले) नाम के मत्स्य ने कहा—आगे आने वाली बात में प्रमाण न होने से मैं कहां जाऊँ। इस लिए समय के आने पर समय के अनुसार कर लिया जाएगा।

फिर यद्भविष्य (भविष्य पर रहने वाले) ने कहा—

यद्भावि—

(६) जो न होने वाली बात है, वह होगी ही नहीं और जो होने वाली है, वह बिना हुए नहीं रहती, कभी टल नहीं सकती। यह चिंतारूपी विष को नष्ट करने वाली औषधि क्यों नहीं पी जाती ?

फिर प्रातः काल जाल में बंधा हुआ प्रत्युत्पन्नमति अपने आप को मरा हुआ सा दिखा कर पड़ गया (लेट गया)। फिर जाल से निकाला हुआ अपनी शक्ति के अनुसार उछल कर गहरे पानी में प्रविष्ट हो गया। यद्भविष्य धीवरों से पकड़ा गया और मारा गया।

इसी लिए मैं कहता हूँ—अनागत विधाता इत्यादि।

पृष्ठ ६०—इस लिए जिस तरह (आज ही) मैं दूसरे तालाब पर चला जाऊँ। वैसा उपाय कीजिए। हंसों ने कहा—दूसरे तालाब में पहुंच जाने पर आप का कुशल है। परन्तु स्थल (खुश्की) में जाते हुए आप के (बचाव का) क्या उपाय होगा? कछुए ने कहा—जिस तरह मैं आप के साथ (उड़ कर) आकाश के मार्ग से चला जाऊँ, वह उपाय कीजिए। हँस बोले—वह उपाय कैसे हो सकता है? कछुए ने उत्तर दिया—

तुम दोनों के द्वारा चोंच से पकड़े हुए काष्ठ के टुकड़े को मैं मुख से पकड़ कर चलूँगा और तुम्हारे साथ मैं भी सुख से चला जाऊँगा। हँसों ने कहा—यह उपाय हो सकता है। परन्तु—

उपायं चिन्तयन्—

(७) बुद्धिमान् पुरुष उपाय को सोचता हुआ उस के अपाय (बगाड़) को भी सोच ले। मूर्ख बगले के देखते २ नकुलों (नेवलों) ने उन की सन्तान खा ली।

कछुए ने पूछा—यह कैसे, उन्हों ने उत्तर दिया।

बक तथा नकुल कथा

उत्तरापथ (उत्तर की ओर) में गृध्रकूट नामक पर्वत पर एक बड़ा पीपल का वृक्ष था। वहां पर अनेक बगले रहते थे। उस वृक्ष के नीचे की विवर (खोल) में सांप रहता था। वह बगलों के छोटे-छोटे बच्चों को खा जाता था। फिर एक दिन शोक से घबराए हुए बगलों के विलाप को सुन कर किसी बगले ने कहा—ऐसा करो कि मच्छलियों को पकड़ कर नेवलों के बिल से ले कर सर्प के बिल तक पंक्ति क्रम से (कितार बाँध कर) एक एक कर के उन्हें बिखेर दो। फिर अपनी खुराक के लोभी नेवले आ कर

सर्प को देखेंगे और स्वाभाविक (कुदरती) वैर होने के कारण (उसे) मार देंगे। ऐसा किए जाने पर वैसा ही हुआ।

फिर उस वृक्ष पर नेवलों ने बगलों के बच्चों का शब्द सुना। फिर उन्हों ने भी वृक्ष पर चढ़ कर बगलों के बच्चों को खा लिया।

इस लिए हम कहते हैं—उपायं चिन्तयन् इत्यादि।

हम दोनों से ले जाए जा रहे तुझे देख कर लोग कुछ अवश्य ही कहेंगे। वह सुन कर यदि तू कुछ उत्तर देगा तो तेरी मौत है। इस लिए हर तरह से तुझे यहां ठहरना चाहिए। कछुआ बोला—क्या मैं मूर्ख हूँ।

पृष्ठ ६१—मैं उत्तर नहीं दूंगा और नाही कुछ कहूँगा। फिर ऐसा करने पर [उन से ले जाए जा रहे] कछुए को देख कर सभी ग्वाले पीछे २ दौड़ने लगे और बोले—ओहो! बड़ा ही आश्चर्य है। पक्षियों से कछुआ ले जाया जा रहा है। किसी ने कहा कि यदि यह कछुआ गिर जाए तो इसे यहां ही पका कर खा लेना चाहिए। किसी ने कहा—सरोवर के किनारे भून कर खा लिया जाएगा। किसी ने कहा—घर ले जा कर खा लिया जाएगा।

उन के कठोर वचनों को सुन कर क्रोध से भरा हुआ वह कछुआ पहली बात को भूला हुआ कहने लगा कि तुम्हें भस्म [राख] खा लेनी चाहिए। यह कहते ही [वह] गिर पड़ा और उनसे मार दिया गया। इस लिए मैं कहता हूँ—सुहृदां हितकामानामित्यादि।

फिर दूत बगले ने वहां आ कर कहा—हे देव, मैं ने पहले ही कहा था कि दुर्ग का निरीक्षण [देख भाल] हर क्षण करना

चाहिए। वह आपने नहीं किया। उस लापरवाही का फल पा लिया। गीध से भेजे गए मेघवर्ण नामक कव्वे ने किले का दाह किया है, अर्थात् किले को जलाया है। राजा ने आह भर कर (लम्बा सांस लेकर) कहा।

प्रणयादुपकाराद्वा—

(८) जो मनुष्य प्रेम से वा उपकार से शत्रुओं पर विश्वास करता है। वह उस सोए हुए पुरुष के समान है, जो वृक्ष की टहनी से गिरा हुआ जागता है, अर्थात् हानि उठाकर पीछे से समझता है।

यहां से किला जलाकर जब मेघवर्ण गया तब प्रसन्न हुए हुए चित्रवर्ण ने कहा कि इस मेघवर्ण को कर्पूरद्वीप के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया जाए, अर्थात् इसे कर्पूरद्वीप का राजा बना दिया जाए।

चकवा बोला—जो दूत ने कहा है, वह सुन लिया है? राजा ने कहा—इस के आगे। दूत बोला—फिर प्रधानमन्त्री गीध ने कहा, हे राजन्! यह उचित नहीं है। कुछ और इनाम आदि देने की प्रसन्नता (कृपा) कीजिए।

बड़ों के स्थान पर नीच को कभी भी लगाना नहीं चाहिए। जैसे कहा भी है—

पृष्ठ ६२—नीचः श्लाघ्य—

(९) नीच पुरुष उत्तम पद को पा कर स्वामी को मारना चाहता है। जैसे चूहा व्याघ्र बन कर मुनि को मारने के लिए गया।

चित्रवर्ण ने पूछा—यह कैसे?

मन्त्री ने उत्तर दिया।

मुनि और मूषिक की कथा

गौतम महर्षि के तपोवन में महातपा नामक मुनि रहता था। वहाँ पर उस मुनि ने कव्वे से ले जाया जा रहा चूहे का बच्चा देखा। फिर उस स्वभाव से ही दयालु मुनि ने नीवार (जंगली चावलों) के कणों से उसे पाला।

फिर (एक दिन) एक बिलाव उस चूहे को खाने के लिए दौड़ा। उसे देख कर वह चूहा उस मुनि की गोद में प्रविष्ट हो गया। इस पर मुनि ने कहा कि ऐ चूहे ! तू बिल्ले से डरता है, इस लिए तू बिलाव बन जा। फिर वह कुत्ते को देख कर भागने लगा। फिर मुनि ने कहा कि तू कुत्ते से डरता है, इस लिये तू भी कुत्ता बन जा। वह कुत्ता व्याघ्र से डरने लगा। फिर उस मुनि ने कुत्ते को व्याघ्र बना दिया। वह मुनि उस व्याघ्र को चूहे के समान ही समझता था। फिर उस मुनि और व्याघ्र को देख कर सब कहते थे कि इस मुनि ने चूहे को व्याघ्र बना दिया है। यह सुन कर वह व्याघ्र सोचने लगा कि जब तक यह जीता रहेगा तब तक मेरे स्वरूप की गाथा जो अपयश का कारण है, दूर नहीं होगी। यह सोच कर चूहा उस मुनि को मारने के लिए गया। फिर मुनि ने यह जान कर "फिर चूहा हो जा" यह कह कर उसे चूहा ही बना दिया।

इस लिए मैं कहता हूँ—नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य—इत्यादि।

और ऐसा करना सहज ही है, यह भी न ख्याल करना। सुनिए—

भक्षयित्वा—

(१०) बहुत से उत्तम, मध्यम और अधम मत्स्यों को खा कर पीछे अतिलोभ के कारण कर्कट (कैंकड़े) के रखने से बगला मर गया।

चित्रवर्ण ने पूछा—यह कैसे ?

मन्त्री ने उत्तर दिया।

बक तथा कुलीर की कथा

पृ० ६३—मालव देश में पद्मगर्भ नाम का सरोवर था।

वहीं एक सामर्थ्य से हीन बूढ़ा बगला अपने आप को दुःखित सा दिखा कर बैठा था। वह किसी कैंकड़े से देखा गया और पूछा गया कि आप यहां खाना छोड़ कर क्यों बैठे हो ? बगले ने कहा मच्छ मेरे जीवन का सहारा हैं। आज वे धीवरों से आकर मार दिये जाएंगे, यह बात मैं ने नगर के समीप सुनी है। अतः आजीविका के न होने से मेरी मृत्यु ही आ गई है, यह जान कर मैं ने आहार भी छोड़ दिया है। फिर मच्छों ने सोचा इस समय तो यह हमारा उपकार करने वाला (हितैषी) ही प्रतीत होता है। अतः इसी से ही पूछना चाहिए कि हमारे लिए क्या कर्तव्य है।

वैसे कहा भी है—

उपकर्त्रारिणा—

(११) उपकार करने वाले शत्रु से भी सन्धि कर लेनी चाहिए, न कि हानि पहुंचाने वाले मित्र के साथ। उपकार और अपकार (भलाई और बुराई) ही इन दोनों (मित्र और शत्रु) का लक्ष्य और लक्षण है।

मच्छों ने कहा—ऐ बगले ! यहां हमारी रक्षा का क्या उपाय है ?

बगला बोला—दूसरे तालाब को अर्थात् उस में जाना ही रक्षा का उपाय है। वहां पर तुम सब को एक २ करके ले जाऊंगा। मच्छों ने कहा कि ऐसा हो हो। फिर वह बगला

उन मच्छों को एक २ करके ले जाकर खाने लगा। फिर एक दिन कैंकड़े ने उसे कहा कि ऐ बगले ! मुझे भी वहां ले चल। फिर अपूर्व (जैसा कि पहले कभी न खाया गया हो) कैंकड़े के मांस को चाहने वाले बगले ने आदर के साथ उसे ले जा कर खुश्की में रख दिया। कैंकड़े ने भी मत्स्यों के कांटों से भरे हुए उस स्थल (स्थान) को देख कर सोचा—कि हाय मैं मन्दभाग्य मारा गया। अच्छा, अब समय के अनुसार (यथोचित) करूँगा यह सोच कर कैंकड़े ने उस की ग्रीवा को काट दिया।

इस लिए मैं कहता हूं—भक्षयित्वा बहून् मत्स्यान्—इत्यादि

फिर चित्रवर्ण ने कहा—हे मन्त्रिन् सुनिए। मैंने यह सोचा था कि यहां रहते हुए राजा मेघवर्ण से जितनी भी कर्पूर द्वीप की उत्तम वस्तुएं हैं, वे सब हमें भेंट रूप से दी जायेंगी।

पृ० ६४—इस से हम बड़े आनन्द से विन्ध्याचल में निवास करेंगे। दूरदर्शी ने हँस कर कहा—हे देव !

अनागतवतीं—

(१२) जो मनुष्य न आई चिन्ता करके (उसके सम्बन्ध में की गई कल्पना के आधार पर) प्रसन्न होता है। वह टूटे हुए बर्तन वाले ब्राह्मण की तरह तिरस्कार को प्राप्त होता है।

राजा ने कहा—यह कैसे ?

मन्त्री ने उत्तर दिया।

भग्नभाण्ड द्विज कथा

देवी कोट नामक नगर में देव शर्मा नामक ब्राह्मण था। उसने विषुवत्संक्रांति अर्थात् वैशाख वा कातिक की पवित्र संक्रांति के दिन सत्तुओं से भरा हुआ एक मट्टी का प्याला प्राप्त किया। वह उसे लेकर कुम्भकार (घुमार) के भाण्डों (मिट्टी के

बर्तनों से भरे हुए मण्डप के एक कोने में धूप से व्याकुल हुआ २ सो गया। फिर सत्तुओं की रक्षा के लिए (हाथ में) एक दण्ड लिए हुए सोचने लगा कि यदि मैं सत्तुओं का प्याला बेच कर दश कौडियां प्राप्त करलूँ तो यहाँ पर ही उन कौड़ियों से घड़े प्याले आदि खरीद कर अनेक प्रकार से बढ़े हुए उन धनों (रुपया आदि) से बराबर सुपारी और वस्त्र आदि खरीद कर और बेच कर लाखों रुपये बना कर चार विवाह कर लूँगा। फिर उन सपत्नियों (सौतनों) में जो अच्छे रूप वाली और जवान होगी उससे अधिक प्रेम करूँगा। सपत्नियां (सौतनें) जब लड़ाई करेंगी, तब क्रोध से व्याकुल हुआ २ मैं उन्हें दण्ड से ताड़न करूँगा— यह कह कर उसने दण्ड फैंक दिया। उससे सत्तुओं का प्याला टूट गया और बहुत से कच्चे बर्तन टूट गए। फिर उस शब्द को सुनकर आए हुए कुम्भकार ने इस (टूटी फूटी) अवस्था में पड़े हुए बर्तनों को देख कर ब्राह्मण का तिरस्कार किया और उसे बाहर निकाल दिया। इसलिए मैं कहता हूँ—अनागतवतीं चिन्ताम्—इत्यादि।

फिर राजा ने एकांत में गीध से कहा—हे तात अब जैसा कर्तव्य हो वैसा उपदेश दो। गीध बोला—हे देव सुनिये। क्या हमने बल के घमण्ड से किले को तोड़ा है अथवा आप के उपाय से। गीध बोला—यदि हमारा कहना मानते हो तो अपने देश में चलें। नहीं तो (यदि न गये तो) वर्षा ऋतु के आने पर फिर युद्ध आरम्भ होने पर दूसरे की भूमि में ठहरे हुए हमारा अपने देश में पहुंचना भी कठिन हो जायगा।

पृ० ९५—सुख और शोभा के लिए सन्धि करके जाना चाहिए। किला तोड़ दिया। यश तो प्राप्त हो गया। मेरी सम्मति

तो यही है। क्योंकि—

यो हि धर्म—

(१३) जो मनुष्य यह बात स्वामी को मीठी लगेगी, अथवा कड़वी लगेगी, यह ख्याल छोड़कर अर्थात् प्रिय लगने वाली और अप्रिय लगने वाली बातों पर ध्यान न देता हुआ धर्म को सामने रख कर मन को न भाने वाली (भी) सच्ची बातें कह देता है, उससे स्वामी सहाय वाला बनता है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति से उसे अत्यधिक सहायता मिलती है।

और भी—

सन्धिमिच्छेत्—

(१४) अपने समान बल वाले शत्रु से भी सन्धि करले क्योंकि युद्ध में विजय का सन्देह ही है ? क्या समान बल वाले सुन्द और उपसुन्द आपस में (झगड़ते) हुए मारे नहीं गए। ये दोनों एक ही क्षण में इकट्ठे मर गये।

राजा ने कहा—यह कैसे ?

मन्त्री ने उत्तर दिया।

सुन्द और उपसुन्द की कथा

पहले कभी सुन्द उपसुन्द नाम वाले बड़े उदार दो दैत्यों ने त्रिलोकी के राज्य की इच्छा से बड़ा क्लेश उठाकर देर तक चन्द्रशेखर (महादेव जिन के मस्तक पर चाँद है) की आराधना (भक्ति) की। फिर उन दोनों पर प्रसन्न हुए २ "भगवान शंकर ने तुम दोनों वर मांगो" यह कहा। फिर उन दोनों की वाणी पर सरस्वती के बैठी हुई होने के कारण और कुछ कहने वालों अर्थात् मांगने की अभिलाषा रखने वालों ने और ही कुछ मांग लिया। यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो

अपनी प्यारी पार्वती हमें दे दें। इसके अनन्तर क्रुद्ध हुए २ भगवान् शङ्कर ने वर देने के आवश्यक होने के कारण विचार हीन उन दोनों को पार्वती दे दी। फिर उसके रूप लावण्य (शरीर के सौन्दर्य) के लोभी पार्वती को मन से चाहने वाले, पाप रूपी अन्धकार से अन्धे, यह पार्वती मेरी है, इस बात पर आपस में झगड़ते हुए उन दोनों ने जब यह सम्मति की कि किसी प्रमाण पुरुष (मध्यस्थ) से इस विषय में पूछना चाहिए, तो वे पूज्य (शंकर) ही वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारे हुए वहां आकर बैठ गये। फिर उन दोनों ने ब्राह्मण से पूछा कि हम दोनों ने इसे अपने बल से प्राप्त किया है। हममें से यह किस की हो सकती है।

ब्राह्मण ने कहा—वर्णश्रेष्ठ—

(१५) ब्राह्मण अधिक ज्ञान वाला पूजनीय होता है। क्षत्रिय बलवान् पूज्य है। अधिक धन धान्य वाला वैश्य और द्विजों की (तीनों) वर्णों की) सेवा करने वाला शूद्र पूजनीय है।

सो तुम क्षात्र (क्षत्रियों के) धर्म के अनुयायी हो। अतः युद्ध द्वारा ही आप का निर्णय हो सकता है। ऐसा कहने पर "इस ने ठीक कहा है" यह समझ कर समान बल वाले वे दोनों एक ही समय एक दूसरे पर प्रहार करते हुए विनाश (मृत्यु) को प्राप्त हो गए।

पृष्ठ ६६—इस लिए मैं कहता हूँ—सन्धिमिच्छेत्समेनापि इत्यादि।

राजा ने कहा आप ने पहले ही क्यों न कहा? मन्त्री बोला—क्या आप ने अन्त तक मेरा वचन सुना है। तब भी इस युद्ध का आरम्भ मेरी सम्मति से नहीं हुआ।

क्योंकि यह हिरण्यगर्भ उत्तम गुणों से युक्त है, अतः यह सन्धि करने के योग्य है, न कि युद्ध करने के योग्य है।

जैसे कहा भी है—

सत्यार्यौ—

(१६) सत्यवादी, श्रेष्ठ पुरुष, धर्मात्मा, दुष्ट पुरुष, भाइयों वाला, बलवान, अनेक युद्धों में विजय पाने वाला ये सात सन्धि करने के योग्य माने गए हैं।

बलिना—

(१७) बली के साथ युद्ध करना चाहिए—इस के संबन्ध में कोई नीति शास्त्र का प्रमाण नहीं है। बादल कभी भी वायु के विरुद्ध नहीं चल सकता।

अनेकयुद्ध—

(१८) अनेक युद्धों के जीतने वाला जिस के साथ मेल कर लेता है, उसके प्रभाव से उस के शत्रु शीघ्र ही वश में हो जाते हैं।

बहुत गुणों से युक्त यह राजा सन्धि करने के योग्य है।

चकवे ने कहा—हे दूत ! सब समझ लिया है। जाओ। फिर (मालूम करके) आना।

इस के अनन्तर राजा ने चकवे को कहा—हे मन्त्रिन् ! कितने सन्धि करने के अयोग्य हैं। उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ। मन्त्री बोला—हे देव ! कहता हूँ। सुनो—

बालो वृद्धः—

(१६) बालक, बूढ़ा, लम्बी बीमारी वाला और जाति के लोगों से निकाला हुआ, डरपोक तथा डरपोक परिवार वाला

लोभी तथा लोभी परिवार वाला।

विरक्त प्रकृतिः—

(२०) जिस से प्रजा विरक्त (उदासीन) रहती हो और विषयों से प्रेम रखने वाला, मन में कई विचार रखने वाला (बहुत लोगों से सलाह करने वाला) देवता वा ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला।

दैवोपहतकश्चैव—

(२१) फूटी हुई किस्मत वाला, (मन्दभाग्य) और भाग्य पर भरोसा रखने वाला, दुर्भिक्ष (कहत) रूपी व्यसन से युक्त और सेना के दोषों से युक्त (जिस की सेना विपत्ति में हो)।

अदेशस्थोः—

(२२) जो अपने देश में स्थित न हो (दूसरे देश में ठहरा हुआ) अनेक शत्रुओं वाला, जो समय पर काम न करता हो और सत्य धर्म से गिरा हुआ हो, ये २० पुरुष हैं।

एतैः सन्धि न कुर्यात—

(२३) इन से कभी सन्धि न करे, केवल इन से युद्ध ही करना चाहिये। क्योंकि यह युद्ध किए हुए (यदि इन से युद्ध किया जाए तो यह) शीघ्र ही शत्रु के वश में आ जाते हैं।

पृष्ठ ९७—और भी कहता हूँ।

१. सन्धि (मेल) २. विग्रह (लड़ाई) ३. यान (शत्रु पर चढ़ाई) ४. आसन (समय की प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहना) ५. संश्रय (किसी बलवान का सहारा लेना) ६. द्वैधीभाव (शत्रु के उर में फूट पैदा कर देना) ये छः नीति के गुण हैं।

१. कार्यों के आरम्भ करने का उपाय करना, २. पुरुषों और द्रव्यों (खान पानादि वस्तुओं) की बहुतायत ३. (नियमानुसार)

देश और काल का विभाग ४ विनिपात प्रतिकार (आने वाली विपत्ति का उपाय) ५ कार्य में सिद्धि (सफलता) इस तरह पाँच अङ्गों वाला मन्त्र है। अर्थात मन्त्र के पांच अंग हैं। १ साम (सन्धि) २ दाम (कुछ देकर काम लेना) ३ भेद (फूट करवा देना) ४ दण्ड युद्ध द्वारा शत्रुओं को दबाना ये चार नीति सम्बन्धी उपाय हैं।

१ उत्साहशक्ति (शारीरिक बल की शक्ति) २ मन्त्रशक्ति (विचार की शक्ति) ३ प्रभु शक्ति (हकूमत की ताकत) ये तीन शक्तियां हैं।

यह सब सोच कर (इन बातों का विचार कर) बड़े लोग विजय के अभिलाषी होते हैं।

याहि प्राण—

(२४) जो लक्ष्मी प्राणों के परित्याग रूपी मूल्य से भी नहीं मिलती, देखिए, वह लक्ष्मी चंचल होती हुई भी नीतिज्ञ के पास दौड़ कर आती है।

और जैसे कहा भी है—

वित्तं यदा—

(२५) जिसका धन ठीक प्रकार से बँटा हुआ हो, जिसका दूत गुप्त हो, और मन्त्र भी गुप्त हो। जो प्राणियों के साथ कड़वा वचन नहीं बोलता, वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर शासन करता है।

परन्तु हे राजन्! यद्यपि महामंत्री गीध ने संधि का प्रस्ताव प्रस्तुत किया है तो भी वह राजा पहली विजय के कारण उसे स्वीकार नहीं करेगा। हे देव ! इस प्रकार कीजिए। सिंहल-द्वीप का महाबली नामक सारस जो हमारा मित्र है। जम्बुद्वीप पर कोप उत्पन्न करे, (उस पर चढ़ाई करे)।

राजा ने कहा "ऐसा ही हो" यह कह कर बिचित्र नामक बगले को गुप्त लेख देकर भेज दिया।

इसके अनन्तर दूत ने आकर कहा—हे देव! वहां का प्रस्ताव (बातचीत) सुनिए। वहां गीध ने ऐसे कहा—हे देव! मेघवर्ण ने वहां देर तक निवास किया है (इस लिए) वह जानता है कि राजा हिरण्यगर्भ सन्धि करने योग्य गुणों से युक्त है वा नहीं। फिर (चित्रवर्ण) राजा ने उस मेघवर्ण को बुला कर पूछा हे वायस! वह हिरण्यगर्भ कैसा है? और चक्रवाक मन्त्री कैसा है? काक ने कहा—हे देव! राजा हिरण्यगर्भ युधिष्ठर के समान उदार चेता है। चक्रवाक के समान मन्त्री तो कहीं भी दिखाई नहीं देता। राजा ने कहा—यदि ऐसा है तो कैसे तूने उसे ठग लिया। मेघवर्ण हँस कर बोला—हे देव!

पृष्ठ ६८—विश्वासप्रतिपन्नानाम्—

(२६) विश्वास करने वाले पुरुषों के ठग लेने में क्या चतुराई है। गोद में चढ़ कर सोए हुए को मार कर क्या बहादुरी है।

हे देव! सुनिए। उस मन्त्री ने तो मुझे पहले दर्शन के दिन ही जान लिया था। वह राजा बड़ा उदार हृदय है। इसी कारण मुझ से ठगा गया है।

जैसे कहा भी है—

आत्मौपम्येन—

(२७) जो अपनी तरह दुर्जन को भी सत्यवादी समझता है। वह इस प्रकार धूर्तों (ठगों) से ठग लिया जाता है। जैसे कि बकरे के साथ जाता हुआ ब्राह्मण।

राजा ने कहा यह कैसे।

मेघवर्ण ने उत्तर दिया।

तीन धूर्तों की कथा

गौत्तम के बन में कोई यज्ञ आरम्भ किये हुए ब्राह्मण था। वह ब्राह्मण यज्ञ के लिए दूसरे ग्राम से बकरा खरीद कर और कन्धे पर रखकर जाता हुआ तीन धूर्तों से देखा गया। फिर वे धूर्त "यदि यह बकरा किसी उपाय से मिल जाये तो बड़ा बुद्धि कौशल (अक्लमन्दी) हो, यह सोचकर तीन वृक्षों के नीचे एक २ कोस के अन्तर (फासले) पर उस ब्राह्मण की प्रतीक्षा करते हुए मार्ग में खड़े हो गए। उनमें से एक धूर्त ने जाते हुए उस ब्राह्मण को कहा। हे ब्राह्मण! क्यों कर कुत्ते को कन्धे से उठा रहे हो? ब्राह्मण ने कहा—यह कुत्ता नहीं है। किन्तु यह यज्ञ का बकरा है।

फिर उसके आगे खड़े दूसरे धूर्त ने वैसे ही कहा यह सुनकर ब्राह्मण बकरे को भूमि पर रख कर फिर बराबर देख कर, फिर कन्धे पर उठाकर डांवाडोल मति वाला (संशय में पड़ा हुआ) चल पड़ा। क्योंकि—

मतिर्दोलायते—

(२८) उत्तम लोगों की बुद्धि भी दुष्टों की उक्तियों (बातों) से डोल जाती है। उनकी बातों से विश्वास दिलाया हुआ वह चित्रकर्ण की तरह मर जाता है।

राजा से कहा—यह कैसे।

उसने कहा (उत्तर दिया)

चित्रकर्ण उष्ट्र की कथा

किसी बन में मदोत्कट नाम का सिंह रहता था। उसके तीन सेवक थे। काक, व्याघ्र और गीदड़। फिर घूमते हुए

उनसे कोई ऊँट देखा गया और पूछा गया। साथ से बिछड़े हुए आप कहां से आए हो? तब उसने अपना सब समाचार सुना दिया, फिर उन्हों ने उसे ले जाकर शेर को दे दिया।

पृ० ६६—उसने उसे अभय वचन दे कर और चित्रकर्ण यह नाम रख कर (अपने पास) ठहरा लिया।

फिर कभी सिंह के शरीर के रोगी होने के कारण और बहुत वर्षा हो जाने से भोजन को न पाते हुए वे सब भूख से दुःखी हो गए। फिर उन्हों ने सोचा कि जिस प्रकार स्वामी चित्रकर्ण को मार दे, ऐसा उपाय करना चाहिये। इस कांटों का भोजन खाने वाले से क्या लाभ। व्याघ्र ने कहा—स्वामी ने अभय वचन देकर इस पर अनुग्रह किया हुआ है। इसलिये यह कैसे हो सकता है? कौआ बोला—इस समय दुर्बल स्वामी पाप भी कर देगा। क्योंकि—

त्यजेत्—

(२६) भूख से व्याकुल स्त्री अपने पुत्र को भी छोड़ देती है। भूख से पीड़ित सर्पिणी अपने अण्डों को भी खा लेती है। भूखा मनुष्य क्या पाप नहीं करता? आदमी निर्दयी हो जाते है।

और भी—

मत्तः प्रमत्तः—

(३०) मत्त, शराब से मतवाला। प्रमत्त, धन के अभिमान से अन्धे (पागल) उन्मत्त (वात आदि रोग से पीड़ित) थका हुआ, क्रुद्ध, भूखा, डरपोक, लोभी, जल्दी करने वाला और कामी, ये धर्म को जानने वाले नहीं होते।

यह सोच कर सभी शेर के समीप चले गए। सिंह ने कहा

कि भोजन के लिए कुछ मिला ? उन्हों ने कहा कि यत्न करने से भी कुछ नहीं मिला। सिंह ने कहा—अब जीने का क्या उपाय है। कौआ बोला—हे देव ! अपने आधीन भोजन के त्यागने से यह सब का नाश उपस्थित हुआ है। सिंह ने कहा—यहां अपने अधीन कौन सा आहार है ? कौए ने कान में कहा—कि यह चित्रकर्ण। शेर भूमि को छू कर कानों को छूने लगा और बोला कि इसे अभय वचन दे कर हमने रखा हुआ है। सो ऐसा कैसे हो सकता है। जैसे कहा भी है—

न भूप्रदानं—

(३१) न वैसा पृथ्वी का दान, न सुवर्ण का दान, न गौ का और न ही वैसा अन्न का दान है, जैसा कि इस संसार में सब दानों में से बड़ा दान, अभय दान को कहते हैं।

और भी—

सर्वकाम—

(३२) सब प्रकार की कामनाओं के देने वाले अश्वमेध यज्ञ का जो फल है, वही फल शरण में आए हुए की ठीक प्रकार से रक्षा करने से प्राप्त होता है।

कौए ने कहा—आप उसे न मारें। किन्तु हम से ही ऐसा किया जायेगा, जिस से वह अपने शरीर का देना स्वीकार कर लेगा। शेर यह सुन कर चुप रहा। इस के अनन्तर वह समय पा कर, छल कर के सब को साथ ले कर शेर के पास चला गया।

पृ० १००—फिर काक ने कहा—हे देव ! यत्न करने से भी कोई आहार नहीं मिला। आप कई दिनों के उपवासों (फाकों) से दुःखी हो, सो अब मेरा मांस खा लें। क्योंकि—

स्वामिमूलाः—

(३३) सारी प्रजा स्वामिमूलक ही होती है, अर्थात् प्रजा का सहारा राजा ही है। जड़ वाले वृक्षों पर ही मनुष्यों का यत्न सफल होता है।

सिंह ने कहा—प्राणों का परित्याग कर देना अच्छा है, परन्तु ऐसे काम में प्रवृत्ति (ख्याल) करना ठीक नहीं है। गीदड़ ने भी ऐसा ही कहा। फिर शेर ने कहा ऐसा मत कहो। इस के अनंतर व्याघ्र ने कहा कि आप मेरे शरीर से जीवन को धारण करें। सिंह बोला—ऐसा करना कभी भी उचित नहीं है। फिर चित्रकर्ण ने भी उन पर बिश्वास किए हुए वैसे ही अपने शरीर को देने के लिए कहा। फिर उसके वचन से व्याघ्र ने पेट फाड़ कर उसे मार दिया और सब ने खा लिया।

इस लिए मैं कहता हूं—मतिर्दोलायते—इत्यादि फिर तीसरे धूर्त का वचन सुन कर, अपनी बुद्धि का भ्रम जान कर, बकरे को छोड़ कर ब्राह्मण स्नान कर के अपने घर को चला गया। उस बकरे को उन धूर्तों ने ले जा कर खा लिया। इसलिए मैं कहता हूँ—आत्मौपम्येन योवेत्ति इत्यादि।

राजा ने कहा मेघवर्ण! शत्रुओं के मध्य में देर तक तुम ने कैसे निवास किया। और किस प्रकार उन्हें विनय से अनुकूल किया।

मेघवर्ण ने कहा—हे देव! स्वामी के कार्य के लिए और अपने प्रयोजन के लिए क्या २ नहीं किया जाता।

जैसे कहा भी है—

स्कन्धेनापि—

(३४) बुद्धिमान् काम के पड़ने पर शत्रुओं को कंधे पर भी उठा ले। जैसे बूढ़े सर्प ने मेंडकों को मार दिया।

राजा ने कहा—यह कैसे ?

मेघवर्ण बोला—

मन्द विष सर्प की कथा

एक पुराने उद्यान (बाग) में मंदविष नाम का सर्प रहता था। वह बहुत बूढ़ा होने के कारण अपना भोजन तक भी ढूंढने में असमर्थ हुआ २ किसी सरोवर के किनारे गिर कर पड़ रहा। फिर दूर से ही किसी मेंडक से देखा गया और पूछा गया।

तू आहार क्यों नहीं ढूंढता है ? सर्प ने कहा—हे भद्र ! जाओ। मुझ मंदभाग्य (बदकिस्मत) के सम्बंध में प्रश्न से क्या ?

पृ० १०१—फिर उत्कण्ठायुक्त उस मेंडक ने "पूरी तरह से आप सारा समाचार सुनाइए" यह कहा। सर्प ने कहा—हे भद्र ! ब्रह्मपुर निवासी वेदज्ञ कौण्डिन्य के सब गुणों से युक्त बीस वर्ष के पुत्र को निर्दय स्वभाव होने के कारण मैंने दुर्दैव (बदकिस्मती) से डस लिया। सुशील नाम वाले उस पुत्र को मरा हुआ देख कर मूर्च्छित हुआ २ कौण्डिन्य भूमि पर गिर पड़ा। इस के अनन्तर ब्रह्मपुर निवासी सभी बंधु वहां पर आकर बैठ गए।

वैसे कहा भी है।

उत्सवे व्यसने—

(३५) उत्सव (प्रसन्नता के अवसर पर) में, व्यसन (दुःख) में, युद्ध में, दुर्भिक्ष में, राष्ट्रविप्लव, अथवा राजक्रांति अथवा लूट मार का अवसर आने पर राजद्वार में और शमशान में जो साथ देता है, वह बंधु है।

उन में कपिल नाम ब्रह्मचारी बोला—अरे कौण्डिन्य ! तू मूर्ख है, इस लिए इस तरह विलाप कर रहा है। सुन—

क गताः पृथ्वी—

(३६) सेना, बल और वाहनों से युक्त वे राजा कहां चले गए। जिन के वियोग की गवाही देने वाली भूमि आज तक भी पड़ी (मौजूद) है।

और भी—

कायः सन्निहितापायः—

(३७) शरीर नाश होने वाले ह । सम्पत्तियां (धनदौलत) विपत्तियों का घर हैं। मेल बिछोड़े के साथ है। उत्पन्न होने वाली सभी वस्तुएं नष्ट होने वाली हैं।

अनित्यं यौवनम्—

(३८) यौवन, रूप, जीवन, धन का संग्रह, ऐश्वर्य और प्रियजनों के साथ वास, यह सब अनित्य हैं । अतः पण्डितों को इन में आसक्त नहीं होना चाहिए।

यथा काष्ठश्च—

(३९) जैसे समुद्र में बहते हुए दो काष्ठ (लकड़ी के टुकड़े) आपस में मिल जाते हैं और मिल कर फिर अलग हो जाते हैं। इसी तरह संसार में प्राणियों का समागम (मेल) है।

यथा हि पथिकः—

(४०) जैसे कोई मुसाफिर छाया का सहारा लेकर बैठ जाता है, फिर विश्राम करके चला जाता है। इसी तरह संसार में प्राणियों का समागम है।

और भी—

पञ्चभिः निर्मिते—

(४१) पृथ्वी, जल, तेज वायु, आकाश इन पांच तत्वों से बने हुए शरीर के नष्ट हो जाने पर, अपनी २ योनि (कारण) में चले जाने पर रोना किस लिए है ? शोक किस लिए है।

फिर कौण्डिन्य ने उठ कर कहा—अब गृहरूपी नरक में रहने से क्या है बन को जाता हूं। कपिल ने फिर कहा—

वनेऽपि दोषः—

(४२) विषय भोग की इच्छा रखने वालों को बन में भी दोष आ दबाते है। घर में रहते हुए पाँच (ज्ञानेन्द्रियों) का वशीकरण रूपी तप हो सकता है। जो उत्तम कर्म में संलग्न रहता है। उस विषय-वासना से रहित मनुष्य के लिए घर भी तपोवन है। क्योंकि—

पृ० १०२—दुःखितोऽपि—

(४३) चाहे किसी आश्रम में हो, दुःखी रहता हुआ भी धर्म करता रहे। सभी प्राणियों पर समान दृष्टि रखे। विशेष प्रकार का चिह्न (गेरुए वस्त्र आदि के चिह्न धारण करना) धर्म का कारण नहीं है। वैसे ही—

आत्मा नदी—

(४४) आत्मारूपी नदी है। इन्द्रियों का संयम (वश में रखना) ही पवित्र तीर्थ है। सत्यरूपी जिस में जल है, उत्तम स्वभाव जिस के किनारे हैं और दयारूपी जिस में लहरें हैं, हे पाण्डु पुत्र ! ऐसी नदी में स्नान कर। अंतरात्मा केवल जल से शुद्ध नहीं होता।

और विशेषकर—

जन्ममृत्यु—

(४५) जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, व्याधि और पीड़ाओं से भरे हुए इस असार संसार को छोड़ते हुए ही मनुष्य को सुख प्राप्त होता है।

क्योंकि—

दुःखमेवास्ति—

(४६) इस संसार में दुःख ही है। सुख नहीं है। क्योंकि वह प्रतीत होता है दुःख से पीड़ित मनुष्य के दुःख को दूर करने के लिए किए गए उपाय का नाम ही सुख है।

कौण्डिन्य बोला—ऐसा ही है। फिर शोक से व्याकुल उस ब्राह्मण ने मुझे शाप दिया कि आज से लेकर तू मेंडकों की सवारी बनेगा। कपिल ने कहा—अभी तक आप पर उपदेश का प्रभाव नहीं है। क्योंकि तेरा हृदय शोक से भरा हुआ है।

तो भी कर्तव्य कार्य सुनिए।

सङ्गः सर्वात्मना—

(४७) मनुष्य को संसार के साथ सब प्रकार सङ्ग छोड़ देना चाहिए। यदि वह छोड़ा न जा सके तो उत्तम पुरुष के साथ सङ्ग करो, सज्जनों का सङ्ग एक प्रकार की औषधि है।

यह सुनकर कपिल के उपदेशरूपी अमृत से जिसकी चित्त की शोक रूपी अग्नि शान्त हो गई है। उस कौण्डिन्य ने दण्ड ग्रहण अर्थात् संन्यास ले लिया।

इस लिए ब्राह्मण के शाप से मेंडकों को उठाने के लिए मैं यहाँ ठहरता हूँ। इसके अनन्तर उस मेंडक ने जाकर जालपाद नामक मेंडकों के स्वामी से वह (सारा समाचार) कह दिया। फिर वह मण्डूकनाथ आकर उस सर्प की पीठ पर सवार हो

गया। वह सर्प उसे पीठ पर चढ़ाकर विचित्र पदक्रम (चाल) से घूमने लगा। दूसरे दिन चलने के लिए असमर्थ उस सर्प को मण्डूकनाथ ने कहा—आप आज क्यों धीरे २ चल रहे हो। सर्प ने कहा—

पृष्ठ १०३. हे देव। भोजन न मिलने के कारण मैं सामर्थ्य हीन हूँ मण्डूकनाथ ने कहा कि हमारी आज्ञा से मेंडकों को खाले। फिर यह कह कर कि "आपकी आज्ञा मुझे स्वीकार है" क्रम से मेंडकों को खाने लगा। इसके अनन्तर सरोवर को मेंडकों से रहित देख कर मेंडकों का स्वामी भी उस से खा लिया गया।

इस लिए मैं कहता हूँ स्कन्धेनापि वहेच्छत्रून्—इत्यादि।

हे देव ! अब पुरानी व्यतीत हुई बातों का वर्णन छोड़ दो। "राजा हिरण्यगर्भ हर तरह सन्धि करने के योग्य है, यह मेरा विचार है। राजा ने कहा—यह तुम्हारा कैसा विचार है। क्योंकि इसे हम ने जीत लिया है। इस लिए यदि यह हमारे अधीन होकर (हमारी सेवा करता हुआ) रहे तो रहे, नहीं तो युद्ध करना चाहिए।

इसी अवसर पर जम्बुद्वीप से तोते ने आकर कहा कि सिंहलद्वीप का राजा सारस जम्बुद्वीप पर आक्रमण करके बैठा हुआ है। राजा घबराया सा बोला क्या, क्या ? तोते ने पहली कही हुई बात फिर कह दी।

गीध ने (अपने मन में कहा) रे चक्रवाक सर्वज्ञ मन्त्री शाबाश शाबाश। राजा ने क्रोध से कहा यह रहने दो पहले उसे ही जाकर जड़ से उखाड़ दूंगा। अर्थात् नाश करूंगा।

दूरदर्शी ने हंस कर कहा—

नशरन्मेघ—

(४८) शरद ऋतु के बादलों की तरह व्यर्थ ही गर्जन नहीं

करना चाहिए। महापुरुष दूसरे की भलाई वा बुराई को प्रकाश नहीं करते।

और भी

एकदा—

(४९) राजा को चाहिए कि एक बार ही बहुत से शत्रुओं के साथ युद्ध आरम्भ न कर दे। घमण्डी सर्प भी बहुत से कीड़ों से मिल कर नष्ट कर दिया जाता है। इस में कोई सन्देह नहीं है।

हे देव ! क्या यहां से बिना सन्धि किए जा सकते हो क्योंकि यदि जाओगे तो हमारे पीछे यह प्रकोप उत्पन्न कर देगा, (गड़बड़ मचा देगा)।

और भी

योऽर्थतत्वम्—

(५०) जो अर्थ के तत्व को न जानकर क्रोध के वश में होता है, वह मूढ़ इस प्रकार दुःखी होता है, जैसे नेवले के कारण ब्राह्मण।

राजा ने कहा—यह कैसे।

दूरदर्शी ने उत्तर दिया।

ब्राह्मण नकुल कथा

पृ० १०४—उज्जैन में माधव नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी ब्राह्मणी छोटी संतान की रक्षा के लिए ब्राह्मण को बिठा कर स्नान करने के लिए गई। इसके अनन्तर ब्राह्मण को पार्वण-श्राद्ध करवाने के लिए राजा ने बुलाया। यह सुन कर ब्राह्मण ने स्वाभाविक दरिद्रता के कारण सोचा कि यदि मैं शीघ्र न गया। तो कोई और ब्राह्मण सुनकर श्राद्ध का भोजन आदि ले लेगा।

क्योंकि—

आदानस्य—

(५१) आदान प्रदान 'लेन, देन' तथा कर्तव्य कर्म्म को यदि शीघ्र न किया जाए तो काल उसका रस ग्रहण कर लेता है। अर्थात् उस में कोई न कोई रुकावट उत्पन्न हो जाती है।

परन्तु यहां पर बालक का कोई रक्षक नहीं है। सो क्या करूँ। चिर काल से रक्षा किए गए इस पुत्र तुल्य नेवले को बालक की रक्षा के लिए ठहरा कर जाता हूं। वैसे ही करके चला गया। फिर उस नेवले ने बालक के समीप आते हुए काले सर्प को देख कर उसे मार कर क्रोध के कारण उसके टुकड़े टुकड़े करके उसे खा लिया।

फिर वह खून से सने हुए मुख और पैरों वाला नेवला ब्राह्मण को आते हुए देख कर, शीघ्र समीप जा कर उसके चरणों में लोटने लगा। फिर उस ब्राह्मण ने उस अवस्था में अर्थात् खून से सने हुए उसे देख कर, इस ने बालक को खा लिया है, यह सोच कर नेवले को मार दिया।

इसके अनन्तर जब ब्राह्मण ने समीप आकर बच्चे को देखा तो "बालक सुप्रसन्न (सुखी) और सर्प मरा हुआ पड़ा है" यह देखा।

फिर उस उपकारी नेवले को देख कर पिघले हुए मन वाला वह ब्राह्मण बड़े दुःख को प्राप्त हुआ। इस लिए मैं कहता हूँ—योऽर्थतत्वमविज्ञाय इत्यादि।

और भी

कामः क्रोध—

(५२) काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान तथा इस षड्वर्ग

अर्थात् छः (वैरियों के) समूह को छोड़ दे। इन के छोड़ने पर ही राजा सुखी होता है।

राजा ने कहा—हे मन्त्रिन् क्या यह तेरा निश्चय है ? मन्त्री ने कहा—यही है। क्योंकि—

स्मृतिश्च—

(५३) परमार्थ (धर्म के तत्वों) में स्मृति, वितर्क (विचार) ज्ञान का निश्चय, दृढ़ता, मन्त्र की रक्ष ये मन्त्री के गुण हैं।

पृ० १०४—जैसे और भी—

सहसा विदधीत—

(५४) शीघ्रता से (कभी कोई) काम न करे। अविवेक (मूर्खता) बड़ी २ आपत्तियों का स्थान है। गुणों पर लुब्ध ललचाने वाली सम्पत्तियां सोच कर काम करने वाले को स्वयं चुन लेती (पसंद कर लेती) हैं। अर्थात् स्वयं उसके समीप चली जाती हैं।

सो देव! यदि अब मेरा वचन मानें तो सन्धि करके चलें। क्योंकि—

यद्यप्युपाया—

(५५) यद्यपि साध्य के सिद्ध करने में चार उपाय कहे गए हैं। परन्तु उन का फल केवल संख्यामात्र ही है अर्थात् गिनती को बढ़ाता है, सिद्धि (सफलता) तो साम अर्थात् शान्ति मेल में ही है।

राजा ने कहा—ऐसा किस तरह हो सकता है। मन्त्री ने उत्तर दिया हे देव! ऐसा शीघ्र हो जायगा। क्योंकि—

अज्ञः सुखमाराध्यः—

(६) अज्ञानी (मूर्ख) आसानी से प्रसन्न किया जा

सकता है। विशेषज्ञ अर्थात् विशेष ज्ञान रखने वाला (बड़ा विद्वान्) बहुत ही सुगमता से प्रसन्न किया जा सकता है, परन्तु जिसका अन्तःकरण थोड़े से ज्ञान से अभिमानी हो, उस मनुष्य को ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकता।

यह राजा और सर्वज्ञ मन्त्री विशेष कर ही धर्मज्ञ (धर्म का तत्व जानने वाले) हैं। मैंने मेघवर्ण के वचन और उसके किए हुए कामों के देखने से पहले ही जान लिया था। क्योंकि—

कर्म्मानुमेयाः—

(५७) जिन के गुण इन्द्रियों (आंख, कान, नाक आदि) से प्रत्यक्ष रूप में जाने वा अनुभव नहीं किये जा सकते। वे सब जगह कर्मों से अनुमान करने योग्य हैं। इस लिए जिन की वृत्ति इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं की जा सकती। उन के फलों से कर्म जाने जाते हैं।

राजा ने कहा—उत्तरोत्तर अर्थात् (उत्तरप्रत्युत्तर) सवाल जवाब को जाने दो। बन्द कर दो। जैसी इच्छा है, वैसा (यथेष्ट) कीजिए। यह सम्मति कर महामन्त्री गीध, "वहां जा कर जैसे योग्य हो कीजिए।" यह कह कर किले के भीतर चला गया। फिर दूत बगले ने आकर राजा हिरण्यगर्भ से कहा कि हे देव! महामन्त्री गीध हमारे पास सन्धि करने के लिए आ रहा है। राजहंस बोला—मन्त्रिन्! यह किसी छल, कपट से आ रहा होगा? सर्वज्ञ ने हंस कर कहा—यह शङ्का का स्थान नहीं, अर्थात् इस में किसी प्रकार की शङ्का न करें। क्योंकि वह दूरदर्शी बड़ा उदारहृदय है। अथवा मन्दमतियों (मूर्खों) की यही स्थिति (अवस्था) है। कभी तो शङ्का ही नहीं करते। कभी सब जगह शङ्का करते हैं। जैसे—

दुर्जनदूषित—

(५८) दुर्जनों की चाल से जिन का मन दूषित हो, उसे सज्जनों पर भी विश्वास नहीं होता। दूध से जला हुआ बालक दधि (मठे) को भी फूंक मार २ कर खाता है।

पृ० १०६—सो हे देव ! उस के सत्कार के लिए रत्नादिक भेंट की सामग्री तैय्यार कीजिए। ऐसा कर देने पर चक्रवाक ने दुर्ग द्वार पर जा कर उस गीध मन्त्री का सत्कार कर उसे ला कर राजा का दर्शन करवाया। वह दिए हुए आसन पर बैठ गया।

चक्रवाक बोला—सब कुछ आप के अधीन है। इच्छानुसार इस राज्य को भोगिए। राज्य कीजिए।

राजहंस ने कहा—ऐसे ही है। दूरदर्शी ने कहा यह ऐसे ही है। परन्तु अब बहुत प्रपञ्च की बातें व्यर्थ हैं।

सो अब सन्धि करने के लिए जाइए। राजा चित्रवर्ण बड़ा ही प्रतापी राजा है। चक्रवाक ने कहा—जैसे सन्धि का कार्य करना हो, वह भी कहिए।

गीध ने कहा—सत्य कहने की शपथ पूर्वक इन दोनों में पहले काञ्चनाभिधान (काञ्चन नाम की) सन्धि, बराबर में होने वाली सन्धि कर देनी चाहिए। सर्वज्ञ बोला—ऐसा ही हो। फिर राजा राजहंस से वस्त्र, भूषण आदि की भेंट द्वारा पूजा हुआ वह प्रसन्न मन वाला दूरदर्शी चक्रवाक को साथ ले कर मयूर के पास चला गया। फिर राजा चित्रवर्ण ने गीध के वचन से बड़े ही सम्मान और दान के साथ सर्वज्ञ से बातचीत करके, उसी प्रकार की (काञ्चन) सन्धि स्वीकार करके उसे राजहंस के पास भेज दिया। दूरदर्शी ने कहा—हमारी इच्छा सिद्ध हो

गई। अब अपने स्थान विन्ध्याचल को ही लौट कर जाना चाहिए।

फिर सब ने अपने २ स्थान में जा कर मन चाहे फल को पा लिया।

विष्णुशर्मा ने कहा—कि और क्या कहूँ (वर्णन करूँ) यह बतलाइए।

राजपुत्रों ने कहा—आप की कृपा से राज्य व्यवहार के सभी अङ्गों को जान लिया। इसलिए हम अब सुखी बन जाएं।

विष्णुशर्मा ने कहा—कि यद्यपि ऐसा है, तो भी यह और शुभ कामना पूर्ण हो।

प्रालेयाद्रे :—

(५६) जब तक पर्वतपुत्री (पार्वती) का प्रेमपात्र शङ्कर संसार का रक्षक है। जब तक बादल में चमकती हुई बिजली की तरह हमारे मन में भगवान् विष्णु की लक्ष्मी का विकास है। जब तक यह सुमेरु पर्वत है, जिस का स्वरूप चिंगारी सा प्रतीत होता है। तब तक नारायण के द्वारा रचित इन कथाओं के संग्रह का संसार में प्रचार हो।

कठिन-शब्दार्थ

पृष्ठ १. धूर्जटि=शिव । जाह्नवीफेनलेखा=गंगा की झाग की रेखा । गंगा को जह्नु-कन्या या जाह्नवी भी कहते हैं। उन्मार्गगामिनीं=उद्धतों के मार्ग पर चलने वाले । वरम्=अच्छा । सुधीः=बुद्धिमान् ।

पृष्ठ २. काञ्चन=सोना । आकर=खान । पद्मराग=मणि विशेष । अश्मा=पत्थर । संनिकर्षेण=मिलाप से, पास रहने से । व्यसन=बुरे काम । कलह=लड़ाई ।

पृष्ठ ३. आशु=जल्दी । आखु=चूहा । कृतान्त=यमराज । तण्डुल=चावल । प्रच्छन्न=छिपा हुआ । वियति=आकाश में ।

पृष्ठ ४. पंक=कीचड़ । कंकण=हाथ में पहिनने का आभूषण, कंकण । लोभाकृष्टेन=लोभ के वशीभूत हुए २ ने । पान्थ=यात्री, बटोही । मारात्मके=हिस्र पशु में । अतिदुर्वृत्त=बुरे आचरण वाला । दारा=स्त्री ।

पृष्ठ ५. गलितनखदन्तो=जिस के नाखून और दांत गिर गए हैं । इज्या=यज्ञ । धृतिः=धैर्य रखना । लोक प्रवादः=लोगों में फैली बात । दुर्निवार=हटाना कठिन है । नीरुज=स्वस्थ ।

पृष्ठ ६. अतिरिच्यते=बढ़ कर होता है । शृङ्गिणां=सींग वाले पशुओं का । कल्मष=पाप, अन्धेरा । ओज्झितुं=हटाने को ।

पृष्ठ ७. हेममृग=सोने का हिरण । लुलुभे=लालच

किया। कार्य विपत्ति=खतरा। मुखरः=बोलने वाला। भूति=ऐश्वर्य। तन्द्रा=अर्धनिद्रावस्था। दीर्घसूत्रता=काफी देर में काम करने का स्वभाव अथवा किसी काम को आगे के लिए छोड़ देने का स्वभाव।

पृष्ठ ८. संहतिः=मिलाप,। दन्ती=हाथी। लुब्धक=शिकारी। अपायशङ्कया=हानि के डर से। तूष्णीं=चुपचाप। प्रत्यभिज्ञाय=समझ कर, पहिचान कर। प्राक्तन=पहिले।

पृष्ठ ९. परिताप=दुःख। निघ्नता=मारते हुए ने। सोढुं=सहन करने के लिए। प्रहृष्टमना=प्रसन्न मनवाला।

पृष्ठ १०. खगः=पक्षी। दिवाकर=सूर्य। दुर्नीतं=बुरा। विहगा=पक्षी। प्रबोध्य=उपदेश दे कर।

पृष्ठ ११. भक्ष्य=खाने योग्य। भक्षक=खाने वाला। भ्राम्यन्=घूमता हुआ। सुललितं=सुन्दर, रोचक। सविता=सूर्य! मरीचिमाली=सूर्य।

पृष्ठ १२. मार्जार=बिल्ला। गृध्र=गीध। उद्धृत्य=निकाल कर, बचा कर। पक्षिशावकाः=पक्षियों के बच्चे। संनिधाने=पास में। वीक्ष्य=देख जर। अपसर=दौड़ जा।

पृष्ठ १३. निरामिष=मांस न खाने वाला। प्रस्तुवन्ति=प्रशंसा करते हैं। उपसंहरते=हटा लेना। उदकम=पानी। सूनृता=सच्ची और प्यारी वाणी। भग्नाश=निराश। विवदमानानाम=परस्पर एक मत न होने वाले।

पृष्ठ १४. अत्ति=खाता है। प्रपूर्यते=भर लिया जाता है। विश्वास्य=विश्वास दिला कर। प्रत्यहं=प्रतिदिन। अस्थानि=हड्डियां। विश्रम्भालापैः=विश्वास भरी बातों से।

पृष्ठ १५. सस्य=अनाज। क्षेत्रपति=किसान। उत्कृत्य-

मानस्य=उधेड़े जाते हुए । छिंधि=काट दो । भट्टारकवार=रविवार । आच्छाद्य=छिपा कर । अवधीरित=तिरस्कृत । संनिहिता=पास ही धरी है ।

पृष्ठ १६. वंचकः=लुटेरा । रौति=आवाज़ करता है । हालाहल=तेज़ ज़हर । लगुडहस्तः=जिस के हाथ में डण्डा है । स्तब्धीकृत्य=अकड़ कर । हर्षोत्फुल्ललोचनेन=हर्ष से जिस की आंखें खिल उठी हैं ।

पृष्ठ १७. क्षिप्तेन=फैंके हुए से । अश्नुते=भोगता है (खाता है) । मेष=मेंढा । अर्थसारेण=धन से । सौहार्दम=मित्रता । विश्वसिति=विश्वास करता है ।

पृष्ठ १८. दुःसंधानः=कठिनता से जोड़ने योग्य । संधेय=मिलाने योग्य । नारिकेल=नारियल । विक्रियाम्=विकार को । शुचित्वं=पवित्रता । आप्यायितः=तृप्त, प्रसन्न । श्रीखण्ड=चंदन । प्रत्यङ्गम=प्रत्येक अंग में । याञ्चा=मांगना ।

पृष्ठ १९. स्वविषय=अपना देश । गाहते=प्रवेश करता है । द्विपेन्द्र=हाथी । आयतनम्=स्थान । वृत्ति=आजीविका । विद्यागमः=विद्या का प्राप्त होना । दाक्षिण्यं=चतुरता ।

पृष्ठ २०. विधाय=करके । धुरीणः=अग्रणी । उपाख्यानम्=वृत्तान्त । परिव्राट्=संयासी । नागदन्तके=खूँटी पर । स्वपिति=सोता है । उत्प्लुत्य=कूद कर ।

पृष्ठ २१. उत्पतति=उछलता है । खनित्रम्=कुदाला । त्रास=भय । अल्पमेधसः=थोड़ी बुद्धि वाले का । कुसरितः=छोटी नदियां । मनस्तापं=मन के दुःख को ।

पृष्ठ २२. कार्पण्य=कंजूसी । कुसुमस्तवकम=फूलों का

गुच्छा । विशीर्य्येत्=नष्ट हो जायेगा । गर्हितः=निन्दित । सत्व=बल । निर्वेद=ग्लानि, दुःख । पिशुन=चुगलखोर । परपिण्डेन=दूसरे के धन से । तृषाम=भूख ।

पृष्ठ २३. परिच्छेदः=सोच कर प्रवृत्ति । जनपद=देश । निरायासं=बिना प्रयत्न ही । निर्वृत्ति=शान्ति । परिधान=वस्त्र । लोल=चंचल । अर्गल=चिटकनी ।

पृष्ठ २४. अटवीम=बन में (को) । घोराकृति=भयानक शकल वाला । निधाय=रख कर । कटि प्रदेश=कमर । पादास्फालनेन=पैरों की रगड़ से ।

पृष्ठ २५. कोदण्ड==धनुष । निर्भिन्नः=बिन्धा हुआ । निपानम्=बावड़ी । आपतितं=आया हुआ । दृढ़सौहृदम्=दृढ़ वचन वाले या पक्की मित्रता वाले । सैंहीं=सिंह को ।

पृष्ठ २६. वृत्ति=आजीविका । धुरन्धर=बोझ उठाने में समर्थ । त्रासितः=डराया हुआ । उड्डीय=उड़ कर । निरीक्ष =देख कर ।

पृष्ठ २७. औरसम्=हृदय से उत्पन्न आदि (सगा) । आत्मज=पुत्र । कटक=सेना । किवदन्ती=उड़ती खबर । प्रतिकारः=उपाय, बचाव । कूर्म=कछुआ ।

पृष्ठ २८. अम्भांसि=जल । श्वापदादीनाम्=हिंस्र पशुओं का । अवधार्य=निश्चय कर । क्षुत्पिपासाकुलः=भूख और प्यास से पीड़ित । अर्णव=समुद्र । अनर्थः=दुःख । दारा=स्त्री । सोदर्य=सगा भाई ।

पृष्ठ २९. विलप्य=विलाप कर के । चञ्चु=चोंच । विलखु =खरोंचे । छेत्स्यामि=काट दूंगा । संनिहिते=पासआने पर । कर्त्तरिकाम्=कैंची, छुरी । ध्रुव=निश्चित । अध्रुव=अनिश्चित ।

सुहृदभेद

पृष्ठ ३१. वर्धमानः=बढ़ता हुआ । पिशुनेन=चुगलखोर ने । लुब्ध=लालची । जम्बुक=गीदड़ । समीक्ष्य=देख कर । उपचीयते=बढ़ती है । ब्रह्महा=ब्रह्म हत्या करने वाला । लिप्सेत=पाने की इच्छा करे । निधि=खजाना ।

पृष्ठ ३२. अश्नुते=खाता है । भस्त्र=धौंकनी । पयराशि=समुद्र । तक्षक=सांप विशेष ।

पृष्ठ ३३. विसर्जित=छोड़ा हुआ । कृतप्रयत्नः=अच्छी तरह यत्न से रक्षित । ननाद=आवाज करने लगा । पिपासाकुलितः=प्यासा । यमुनाकच्छम्=यमुनातट । परिवृत्य=घिर कर ।

पृष्ठ ३४. आतप=धूप । वातुलः=बावला । अभिजातः=अच्छे कुल वाला । अप्रगल्भः=घमण्डी । वाजिवारणवाहिनी=हाथी घोड़ों से युक्त सेना । उद्दंड=ऊँचे डंडों वाला । अव्यापारेषु=जिन कामों से कोई वास्ता नहीं । अनुजीविना=सेवक से । विषीदति=दुःखी होता है ।

पृष्ठ ३५. हर्तु=चुराने के लिए । प्राङ्गणे=आङ्गन में । नियोग=कर्तव्य । मन्दादरः=कम आदर करने वाला । विधुरदर्शन=कष्ट आना । किंभृत्यः=बुरा भृत्य । किंसुहृद्=बुरा मित्र । किंप्रभु=बुरा स्वामी । पापीयान्=पापी । अर्कम्=सूर्य को । हुताशनम्=अग्नि को । जठर=पेट ।

पृष्ठ ३६. नियोग=कार्य । नृपसंश्रयः=राज्याश्रय । आत्मार्थे=अपने लिए । पुराणः=सिक्का विशेष । लक्षैः=लाखों से । स्नायु=नाड़ियाँ । वसा=चर्बी । प्रथितं=प्रसिद्ध ।

पृष्ठ ३७. अप्रधानौ=गौण । अभिमत=प्रिय (हितचिंतक) उदीरित=कहा हुआ । देशितः=सिखाए हुए, प्रेरणा किए हुए ।

ऊहति=जान लेता है। आकारैः=आकृति (शक्ल) से। इङ्गितैः= इशारों से। वक्रविकारेण=मुखविकार से।

पृष्ठ ३८. अनाहूतो=न बुलाया गया। अनारम्भः=कार्य शुरू न करना। प्रमदा=स्त्रियां। संप्रश्नेषु=प्रश्नों में।

पृष्ठ ३९. अत्ययेषु=व्यतीत हो जाने पर। वृत्ति=गुजारा, निर्वाह।

पृष्ठ ४०. निर्घर्षण=घिसना। कण्डूयन=खुजलाना। कदर्थित=दुःखी हुआ। तनूनपात्=आग। अधः=नीचे। परिहीयते=छोड़ दिया जाता है। नूपुर=पायजेब ! अविषय॥ अभाव।

पृष्ठ ४१. उदकार्थी=पानी पीने की इच्छा रखने वाला। निभृतं=एकांत। सत्त्व=प्राणी। निकष पाषाणे=कसौटी। पुरुष समवायः=पुरुषों का इकट्ठ। उपायनं=प्रसाद, इनाम।

पृष्ठ ४२. अवमन्तव्यः=अपमान करना चाहिए। नर्दितं= गूंजना। बलीवर्ध=बैल। अधिशयानस्य=सोए हुए के। लूनं= कटा हुआ। आहन्तुम्=मारने के लिए।

पृष्ठ ४३. शुश्राव=सुना। अवसन्न=दुःखी। विधास्यति= कर डालेगा। करिणां=हाथियों की। डिण्डिमः=नगाड़ा। हस्तिपकः=महावत। घोषयति=मुनादी करता है।

पृष्ठ ४४. प्रभंजनः=वायु, तूफान। समुच्छ्रितान्=ऊँचे उठे हुए। गोमायुरुत=गीदड़ों की आवाज। जनप्रवादः=लोगों में चर्चा। अनुक्षणं=प्रतिक्षण।

पृष्ठ ४५. विमृश्य=अच्छी तरह सोच कर। उपक्षय=खर्च। आकीर्णानि=बखेर दिये। हन्तुम्=मारने के लिए। अवधीरितं फैंक दिया। अगोचर=पीछे।

पृष्ठ ४६. काकिनीम=कौड़ी । अनवेक्षः=दमड़ी की देखभाल न करना । नियोग=नियुक्त । प्रशस्यते=प्रशंसा किया जाता है । ज्ञातिभावतः=रिश्तेदारी के कारण । मोषणं=धन छीन लेना । निरविग्रह=बिना रोक टोक ।

पृष्ठ ४७. स्तब्ध=अभिमानी, ढीठ । सौख्यं=सुख । प्रमत्तः=विवेकहीन । अतिवर्त्तते=गुजरता है । अनुजीविनाम्=नौकरों का । परिवेदनम्=पछताना । कनकसूत्र=सोने का हार । कोटर=खोल ।

पृष्ठ ४८. भार्या=स्त्री । सार्धम=साथ । विग्रहीतुम्=लड़ने के लिये । उपढौकयामः=भेज देंगे । अभिमतं=प्रिय अभीष्ट । उपकल्पितम्=निश्चित किये हुए को ।

पृष्ठ ४९. सिंहान्तर–दूसरा सिंह । आध्मातः=भरा हुआ, पूर्ण । निक्षिप्य=फैंक कर । आसन्ने=पास वाले । विधृत्य=उठा कर । निहितम्=रखा हुआ ।

पृष्ठ ५०. आत्ययिकं=आनेवाले । उन्मार्गगमने=कुमार्ग में जाने पर । अत्यय=गुजरना । कर्तनम्=कट जाना । असदृश व्यवहारी=अनुचित व्यवहार करने वाला । संनिधाने=पास । तूष्णीं=चुपचाप । विष्टम्य=टिकाकर । उपतिष्टते=उपस्थित होती है । स्पृहां=इच्छा । द्रुह्यति=शत्रुता करता है भुक्त=अन्न ।

पृष्ठ ५१. आयत्ताम्=आधीन । व्यसने=आपत्ति आदि में । व्यलीकानि=बुराइयां । अपास्य=छोड़ कर । स्वेदन=मलना । अभ्यञ्जन=तेल की मालिश । नामितम्=झुकी हुई । स्निग्धः=स्नेही । अनुविधायिनी=आज्ञा में चलने वाली ।

पृष्ठ ५२. मदः=अभिमान । खिद्यते=दुःखी होती है । मानाध्मातः=घमंड का मारा । अविनयम्=असभ्यता को । अपवाद=चर्चा । मनाग्+अपि=थोड़ा भी ।

पृष्ठ ५३. आसन्नप्रसवा=जल्दी ही बच्चा जनने वाली; अर्थात् जिस का बच्चा जनने का समय निकट ही है । निभृतम्=एकांत । कृच्छ=विपत्ति । सीदति=दुःखी होता है । आपतितम्=आ पड़ा है । मेलकं=समूह ।

पृष्ठ ५४. आदिदेश=आज्ञा दी । मौलि=सिर । सदर्पः=घमंडी । अनिर्वृत्तम्=दुःखी, बेचैन । अर्थी=मांगने वाला । वागुरासु=फाहियों में, फंदों में । क्षेमः=कुशल । आदत्ते=ग्रहण करता है । प्रत्यय=विश्वास । विकृतबुद्धि=विकारयुक्त बुद्धिवाला । निमित्तम्=कारण । अपगमः=नाश । स्निग्ध=मित्र ।

पृष्ठ ५६. उपयाति=प्राप्त होता है । भृङ्ग=भौंरा । प्लवङ्ग=बन्दर । उच्छ्रित=उठाना । स्फटिक=कांच, बिल्लोर । वलय=चूड़ी संधातुं=जोड़ने के लिए ।

पृष्ठ ५७. समुन्नतलांगूलः=पूंछ को ऊँचा किए हुए । उन्नतचरणः=पांव को उठाए हुए । विवृतास्य=मुख खोले हुये । अभिभवास्पदम्=निरादर का स्थान । भस्मचये=राख के ढेर में । दृप्यति=घमंड करता है । कुकृत्ये=बुरे कर्म में । विकृताकारम्=बिगड़ी हुई आकृति वाले । स्वानुरूपम्=अपने सदृश । महाहवे प्रवृत्ते=बड़े युद्ध के आरम्भ होने पर । धर्मातिक्रमतः=धर्म का उल्लङ्घन करने से । भूम्यैकदेशस्य= पृथ्वी के एक भाग का । अरातिम् =शत्रु को ।

पृष्ठ ५८. प्राणच्छेदकरः=प्राणों का नाश करने वाला । भूतिम्=ऐश्वर्य को । प्रायश्चितं=दण्ड । जीवोत्सर्ग=प्राणों का त्याग । प्रकृति आपन्नः==असली हालत में आ गया, स्वस्थ हो गया ।

विग्रह के शब्दार्थ

पृष्ठ ५९. कुतूहलम्=शौक, आश्चर्य । आद्यः=पहला । तुल्यविक्रमे==समान बल वाले । वञ्चिताः==ठग लिए । अरि मन्दिरे=शत्रु के घर में। अकर्णधारा=बिना मल्लाह, मल्लाह से रहित । जलधौ=समुद्र में। विप्लवेत=डूब जाए। नौ=किश्ती। वर्धनात् रक्षणम्=बढ़ाने से रक्षा करना। तदभावे=उस के न होने पर। कमलपर्यङ्के=कमलों की शय्या पर । सुखासीनः=सुख से बैठा हुआ। परिवृतः=परिवार से घिरा हुआ। उपविष्टः=बैठ गया।

पृष्ठ ६०—आख्यातुकामः=कहने की इच्छा वाला । दग्धारण्यमध्ये=खुश्क बन में । देशांतरम्=दूसरे देश को । महदन्तरम्=महत्+अन्तरम्=बहुत फरक । मरुस्थले — खुश्क (रेतले) स्थान में । आकर्ण्य=सुनकर । पयःपानम्=दूध का पिलाना। भुजङ्गानाम्=सर्पों को। केवलम्=सिर्फ । उपदेष्टव्य=उपदेश देने योग्य। स्थानभ्रष्टा=स्थान से भ्रष्ट हुए २। खगाः=पक्षी। ययुः=चले गए। निर्मितनीडक्रोडे=बनाए हुए घौंसले के बीच। नील पटलैःइव=नील के समूह (टुकड़ों की तरह) जलधरपटलैः=बादलों के समूह से। आवृते=व्याप्त हो जाने पर।

पृष्ठ ६१—धारासारैः—मूसलाधार । निर्मिताः=बनाए गए हैं। चंचुमात्राहृतैः=चोंचों से लाए गए। सीदथ=दुःखी हो रहे हो। जातामर्षैः=पैदा हुए २ क्रोध वालों से। आलोचितम्=सोचा गया। वृष्टेः+उपशमः=वर्षा की शांति। आरुह्य=चढ़ कर। अधःपातितानि=नीचे गिरा दिए। उपजातकोपेन=उत्पन्न हुए २ क्रोधवाले ने। युष्मदीयः=तुम्हारा। दर्शितः=दिखा दिया। समीक्ष्य=देख कर। बलाबलम्=बल और अबल, ताकत

और कमजोरी । द्वीपिचर्मपरिच्छन्ना=चीते की खाल से ढका हुआ । सुचिरम्=देर तक ।

पृष्ठ ६२—अतिवाहनात्=अधिक बोझ उठाने के कारण। मुमूर्षुः+इव=मृतप्राय सा, मरणासन्न । प्रच्छाद्य=ढक कर । सस्यरक्षकेण=खेत के रखवाले ने । धूसर कम्बलकृत तनुत्राणेन=भूसले (मट्टी) जैसे रंग के कम्बल को ओढ़ कर जिस ने शरीर की रक्षा की हुई है। पुष्टाङ्गः=मोटे ताजे अङ्गों वाला । तदभिमुखम्=उसकी ओर । अधिक्षिपसि=निन्दा कर रहा है । एकांततः मृदुः=बहुत नरम स्वभाव वाला । करतलगतं=हाथ में आए हुए । अक्षमः=असमर्थ । कूपमण्डूकः=कूएं का मेण्डक जिसे कूएं के बाहर का ज्ञान नहीं है, नातजरबेकार व्यक्ति। छाया समन्वितः=छाया से युक्त । सेवितव्यः=सेवन करना चाहिए। अल्पतां याति=छोटी बन जाती है। आधाराधेय भावेन=आश्रय और आश्रय लेने वाली (आश्रित) वस्तु के भाव से। दर्पणे=शीशे में ।

पृष्ठ ६३- व्यपदेशेन=नाम लेने से । तृषार्तः=प्यास से पीड़ित । गजयूथः=हाथियों का झुण्ड । निमज्जनस्थानम्=स्नान का स्थान । स्थानाभावात्=स्थान के न होने के कारण । दर्शितवान्=दिखा दिया । तत्तीरावस्थिताः=उसके किनारे पर रहने वाले। गजपादाहतिभिः=हाथियों के पैरों की चोट से । पिपासाकुलितेन=प्यास से व्याकुल हुए २ । माविषीदत=दुःखित मत हूजिए। प्रतिकारः=उपाय । जिघ्रन्=सूंघता हुआ । संवादयामि=पुकारता हूँ । भवदन्तिकं=आप के पास ।

पृष्ठ ६४ उद्यतेषु+अपि=तैयार होने पर भी । अवध्यभावेन=न मारे जाने वाले होने के ख्याल से । यथार्थस्य=

ठीक ठीक बात का । वाचकः=कहने वाला । निःसारिता=निकाल दिए । प्रसाद्य=खुश करके । प्रभुत्वम्=प्रभुता (हकूमत) इति+अभिधाय=यह कह कर । पुरः=आगे (सामने) । प्रदर्श्य=दिखाकर । अवधीयताम्=ध्यान दीजिए ।

पृष्ठ ६५—सर्व शास्त्रार्थपारगः=सभी शास्त्रों के तत्व को जानने वाला । स्वदेशजः=अपने देश में उत्पन्न । शुचिम= साफ दिल वाले (पवित्र) । अधीतव्यवहाराङ्गम्=जिस ने व्यवहार के नियमों को जाना हुआ हो । मौलम्=वंश परम्परा से आए हुए । ख्यातम=प्रसिद्ध । विपश्चितम्=विद्वान् । विदध्यात्=बनाए । मत्तः=पागल । धनगर्वितः=धन से घमण्डी । अप्राप्यम्=न मिलने वाली वस्तु को । सज्जीकुरु=तैयार कर । प्रस्थाप्यताम्=भेज दीजिये । अव्यसनी=दोष रहित । परमर्मज्ञः=दूसरे का भेद जानने वाला । प्रतिभानवान्=बुद्धिमान् । अस्मदभिलषितम्=हमारी इच्छा को ।

पृष्ठ ६६-दुर्वृत्तम्=बुरा काम । दशाननः=दशमुखों वाला (रावण) । महोदधेः=बड़े समुद्र का । वर्तकः=बटेर । परिश्रांतः=थका हुआ । धनुष्काण्डम्=धनुषबाण । संनिधाय=रख कर । अपगता=हट गई । प्रसार्य्य=फैला कर । मुखव्यादानम्=मुख का खोलना । स्वभावदौर्जन्येन=स्वभाव की दुर्जनता के कारण । पुरीषोत्सर्गम्=बीठ का छोड़ना । पलायितः=भाग गया । निरीक्षते=देखता है । काण्डेन=तीर से ।

पृष्ठ ६७—निधाय=रख कर । स्वभावनिरपराधः=स्वभाव से ही बेकसूर । निदानम्=कारण । परिज्ञाय=जान कर । अनुसन्धीयताम्=पता लगाइए । उपालम्भनेन=गड़े मुर्दे उखाड़ने से, बीती बात पर झक झक करने से । प्रस्तुतम्=चला हुआ प्रसङ्ग । विजने=एकांत में ।

पृष्ठ ६८—प्रतिध्वानैः=आवाज से। ऊहन्ति=जान लेते हैं। रहसि=एकांत में। नियोगिनः=अधिकारी, राज सेवक। अनुष्ठितम्=किया है। चारः=गुप्तचर। महीभर्तुः=पृथ्वी के स्वामी राजा का। तत्रत्य=वहां का। सुनिभृतम्=गुप्त रूप में। निगद्य=कह कर। तपस्विव्यञ्जनोपेतैः=तपस्वियों के चिह्नों (वेष) से युक्त। संवदेत्=वार्तालाप करे। समाधातुम् न शक्यः=संभाले नहीं जा सकते, (ठीक नहीं किए जा सकते)। विमृश्य=सोच कर।

पृष्ठ ६९—अविचारितम्=बिना विचारे। प्रयतेत=यत्न करे। ग्रावाः=पत्थर। दारुणा=लकड़ी से। व्यवह्रियताम्=काम कीजिए। निदर्शनम्=(नीति शास्त्र का) प्रमाण। कौर्म्मं सङ्कोचम्=कछुए की तरह सङ्कोच (सिकुड़ना)। आस्थाय=धारण कर। मर्षयेत्=सहन करे। आश्वास्य=धैर्य देकर। तावत्+ध्रियताम्=तब तक रखो।

पृ० ७०—प्राकारस्थः=किले की चारदीवारी में बैठा हुआ। महाखातम्=बड़ी २ खाइयों वाला। उच्चप्राकार संयुतम्=ऊँची ऊँची दीवारों वाले। विस्तीर्णता=बड़ा फैलाव। अतिवैषम्यम=बहुत ऊँचाई और नीचाई। इध्मसंग्रहः=ईंधन (जलाने की लकड़ी) का इकट्ठा करना। अपसारः=बाहर निकलने का मार्ग। दुर्गसम्पदाः=किले की सम्पतियां। दुर्गानुसन्धाने=किले के तैय्यार करने में। विनियोजयेत्=नियुक्त कर दे, लगा दे। अदृष्टकर्म्मा=तजरबा न रखने वाला। अहूयताम=बुलाइए। निक्षिप्तम्=डाला हुआ, रक्खा हुआ। बहुद्रष्टा=बड़ा तजरबा रखने वाला। अस्मद्विपक्षनियुक्तः=हमारे विरुद्ध पक्ष से छोड़ा हुआ (लगाया हुआ)।

पृष्ठ ७१—हन्यते=मारा जाता है। नगरोपांते=नगर के समीप। समुत्थाय=उठा कर (निकाल कर)। स्वोत्कर्षम्=

अपनी उत्कृष्टता (बड़ाई) । विशिष्टवर्णम्=उत्तम रंग का । साष्टाङ्गपातम्=आठ अङ्गों को झुका कर, दण्डवत् प्रणाम । आधिपत्यम्=प्रभुत्व (हकूमत) । सदसि=सभा में । अवज्ञाय=तिरस्कार करके । स्वज्ञातयः=अपनी बिरादरी के, अपने बन्धु । विषण्णान्=दुखित हुए २ । वर्णमात्रविप्रलब्धा=केवल रङ्ग से ही ठगे हुए ।

पृ० ७२—तत्सन्निधाने=उस के सामने । महारावम्=बड़ा शब्द । दुरतिक्रमः=कठिनता से दूर हो सकने वाला । श्वा=कुत्ता । उपानहम्=जूते को । न+अश्नाति=नहीं खाता, चाहता, चाटता । तत्+वृत्तम्=वैसे ही हुआ । छिद्रम्=दोष (कमी) । मर्म्म=गुप्त बात । वेत्ति = जानता है । प्रणिधिः = दूत । सज्जीकृतः=तैय्यार कर दिया गया । प्रहित=भेज दिया गया । जघान=मार दिया । तीक्ष्णदूतप्रयोगतः=प्राणों का नाश करने वाले दूतों के प्रयोग (इस्तेमाल) भेजने से । शूरांतरितम्=वीरों से घिरे हुए । आहूतः=बुलाया । अवस्थातुम=रहने के लिए । गलहस्तयति=गले में अँगूठा देकर (गलहत्था देकर) निकाल दे । सांत्वयन्=शांत करता हुआ ।

पृष्ठ ७३—छलम्+अभ्युपैति=धोखे से मिली हुई है । प्रबोध्य=समझा कर । कनकालङ्कारादिकम्=सोने के भूषण आदि । प्रणतवान्=नमस्कार किया । सम्प्रति=अब । व्यसनितया=व्यसन (शौक) से युक्त होने के कारण । दृढ़भक्तयः=पक्का हित चाहने वाले । निश्चितंभावि=अवश्य ही होने वाला ।

पृष्ठ ७४—अवलोकयतु=देख ले । मौहूर्तिकः=मुहूर्त (शुभ समय) बतलाने वाला । अविचार्य=बिना विचारे । विजिगीषुः=विजय की इच्छा वाला । द्विषद्बलम्=शत्रुओं की सेना । खड्गधारापरिष्वङ्गम्=तलवार की धारा के स्पर्श को । आक्रमति=

हमला करता है। शास्त्रवत्=शास्त्र के अनुसार। अनतिक्रमणीय=उल्लङ्घन करने के अयोग्य। सेनानी=सेनापति। व्यूहीकृतैः=किले की शक्ल में जो रखी हुई हो (किला बनाये हुये) कलत्रम्=स्त्री (कुटुम्ब)। फल्गु=निर्बल (निस्सार) निकम्मा। उभयोः पार्श्वयोः=दोनों तरफ। आश्वासयन्=धैर्य्य देता हुआ। जलाढ्यम्=जल युक्त। समहीधरम्=पर्वत से युक्त। कर्षयेत् दुःख दे। दुर्गकण्टकमर्दनैः=अत्यन्त दुःख देने वाले कांटों के कुलचने से (रुकावट दूर कर)। आटविकान्=बन मार्ग को जानने वाले जंगली पुरुषों को।

पृष्ठ ७५. गौरवम्=बड़ाई। लाघवम्=छुटाई। धनाधननिबंधनम्=धनाढ्यता और निर्धनता पर आश्रित। अप्रसादः=प्रसन्नता सूचक इनाम न देना। अनधिष्ठानम्=अधिकार न देना। देयांशहरणम्=देने योग्य भाग का छीन लेना। कालयापः=समय का व्यर्थ ही गुज़ार देना। अप्रतिकारः=उपाय न करना। अभिषेणयेत्=आक्रमण द्वारा दुःखित करे। दीर्घयान प्रपीडितम्=लम्बी यात्रा से थकी हुई। दायाद=अपने गोत्र का, सम्पत्ति का अधिकारी, रिश्ते दार। संधाय=संधिकर के। उच्छृङ्खलम्=नियमानुसार न चलने वाला। शास्त्रनियंत्रितम्=शास्त्रों से नियमित (शास्त्रानुसार) चलने वाला। सत्वम्=बल। सामानाधिकरण्यम्=एक स्थान में निवास। मौहूर्तिकावेदितलग्ने=ज्योतिषी से बताए हुए लग्न (शुभ समय) में। प्रणिधिप्रहितः=दूत से भेजा हुआ। समावासितकटकः=जिस ने सेना को ठहराया हुआ है। दुर्गशोधनम्=किले की पड़ताल। तदिङ्गितम्=उस का इशारा अभिभवाय=तिरस्कार के लिए। विग्रहोत्साहः==युद्ध की तैय्यारी।

पृष्ठ ७६. आगन्तुः=बाहर से आया हुआ अपरिचित व्यक्ति। देहजः=शरीर में उत्पन्न। आरण्यम्=बन की। उपगम्य=पास जाकर। प्रतिहारम्=द्वारपाल को। वर्तनार्थी=वेतन नौकरी चाहने वाला। अस्मद्वर्तनम्=मेरा वेतन (मेरी नौकरी) सुवर्णशतचतुष्टयम्=सोने की चार सौ मोहर। दिनचतुष्टयस्य=चार दिन का।

पृष्ठ ७७. आहूय=बुला कर। तद्विनियोगः=उस का उपयोग (इस्तेमाल)। सुनिभृतम्=गुप्त रूप से। तदवशिष्टम्=उस से बचा हुआ। भोज्यव्यय=खान पान के खर्च। अहर्निशम्=दिनरात। समादिशति=आज्ञा देता है। क्रंदनध्वनिम्=रोने की आवाज़। शुश्राव=सुना। क्रंदनानुसरणम्=रोने की आवाज़ का पीछा। सूचीभेद्ये=गाढ़े, घने। तमसि=अंधकार में। सर्वालङ्कारविभूषिता=सभी प्रकार के भूषणों से अलंकृत (सजी हुई)। अपायः=नुकसान। आवासः=रहना।

पृष्ठ ७८. द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतम्=बत्तीस शुभ चिह्नों से युक्त। उपहारीकरोषि=भेंट कर दे। अदृश्या अभवत्=छिप गई। निद्राणा=सोई हुई। प्रबोधिता=जगादी। विनियोगः=इस्तेमाल। परार्थे=दूसरों के लिए। सन्निमित्ते=किसी अच्छे कारण के होने पर। नियते सति=मुकरर होने पर। उत्सृजेत्=छोड़ दे। (लगा दे) निष्क्रयः=बदला चुकाना। आलोच्य=सोच कर। उपहारः=भेंट। गृहीतराजवर्तनस्य=राजा से ली हुई तनखाह का। विडम्बनं=व्यर्थ। छिन्नवान=काट दिया। साश्चर्यम्=आश्चर्य के साथ। मद्विधाः=मेरे जैसे। क्षुद्रजन्तवः=निकृष्ट (छोटे) जीव।

पृष्ठ ७६—उल्लासितः=चमकाया (उठाया)। धृतः=पकड़ लिया। अनुकम्पनीयः=दया के योग्य। आयुशेषेण=

आयु के बकाया भाग से। सत्वोत्कर्षेण=बल की उत्कृष्टता से (उदारता) से। प्राप्तजीवनः=पाए हुए जीवन वाला (जो जी पड़ा हो) अलक्षितः=न देखा हुआ। प्रस्तुत्य=प्रस्तुत कर (कह कर) किंमन्त्री=नीच मन्त्री। अकार्यतः=नीच (बुरे) कर्मों से।

पृष्ठ ८०—प्रियंवदाः=मीठा बोलने वाले। क्षिप्रम=जल्दी परिहीयते=क्षीण हो जाता है, नष्ट हो जाता है। निध्यर्थी=धन का अभिलाषी। धनार्थिना=धन चाहने वाले ने। चन्द्रार्थ-चूड़ामणिः=जिस के मस्तक पर आधा चन्द्रमा है (शिव)। भगवदादेशात्+भगवान् शिव को आज्ञा से। यक्षेश्वरेण=यक्षों के स्वामी कुबेर से। आदिष्टः=आज्ञा दिया गया। लगुड़-हस्तः= लाठी हाथ में लिए हुए। प्राङ्गणे=सेहन में। यावज्जीवम्=जीवन पर्य्यन्त।

पृष्ठ ८१—प्रस्तुतमनुसन्धीयताम् = असली बात पर विचार करो। मलयाधित्यकायाम्=मलय पर्वत की तलहटी पर। क्रूः=कठोर। अस्थिरः=स्थिर न रहने वाला। योधावमन्ता=योधाओं का निरादर करने वाला। दीर्घ वर्त्म परिश्रान्तम्=लम्बी यात्रा (मुसाफिरी) से थकी हुई। संकुल=घिरी हुई। संत्रस्तम्=डरी हुई। असंस्थितम्=अपने स्थान से उखड़ी हुई। अभूयिष्ठम्=जो संख्या में अधिक न हो। सुव्यस्तम्=बिखरी हुई। दस्युविद्रुतम्=लुटेरों से भगाई हुई। विघातयेत्=मरवा दे। अवस्कन्दभयातद्रू=आक्रमण के डर से। प्रजागरकृतश्रमम्=जगने के कारण थकी हुई। अस्मदुपेक्षा=हमारी उपेक्षा (वे परवाही) कल्यताम्=नीरोगिता को।

पृष्ठ ८२—जलासन्त तरुः—जल के निकट का वृक्ष। अर्जिताः सम्पदः=इकट्ठी की हुई सम्पत्तियाँ। साहसैकरसिनः=केवल जल्दी करते हुए। मया=उपन्यस्तेषु=मुझ से प्रस्तुत किए

गए (पेश किए गए)। अनवधानम्=बे परवाही। वाक्पारुष्याम् वाणी की कठोरता। तमः=अन्धकार को। विवस्वान्=सूर्य्य। प्रियोपपत्तिः=प्रिय वस्तु का मिलना। नीतिशस्त्र कथा कौमुदीं=नीतिशास्त्र की कथा रूपी चान्दनी को। वागुल्काभिः=वाणी रूपी उल्काओं (चवातियों) से। तिमिरयति=अन्धकार पूर्ण करता है। प्रत्यावृत्य=लौटकर। नियन्तव्याः=रोकना चाहिए।

पृष्ठ ८३—भिन्नसंधाने=फूटे हुए के मिलाने में। भिषजाम्=वैद्यों की। सन्निपातके=नमोनिया की बीमारी में, जिस में कफ वात पित्त इन तीनों तत्वों की प्रधानता होती है। व्यज्यते=प्रकट होती है। भङ्क्त्वा=तोड़ कर। अदीर्घसूत्रता=कार्य तत्परता आलस्य का परित्याग। सारासारविचारः=ताकत और कमजोरी का विचार। यथार्हम्=यथायोग्य। अपथप्रपन्नाम्=कुमार्ग में लगी हुई। निष्कसहस्त्रतुल्याम्=हज़ार सुवर्णमुद्रा के समान। समुद्धरेत्=उठा ले। श्रीमतः=धनवानों को। संचित+अपि=इकट्ठी की हुई भी कार्पण्यं विमुच्य=कायरपन छोड कर। परस्परज्ञः=एक दूसरे का स्वभाव जानने वाले।

पृष्ठ ८४—वाच्यतम्=निन्दा को। पुरस्कर्तव्यः=सत्कृत करने चाहिए। अनीतिपवनक्षिप्तः=अनीति की पवन से फैंका हुआ। कार्याब्धौ=कार्यरूपी समुद्र में। निमज्जति=डूब जाता है। भृत्यानुपेक्षा=नौकरों की देख भाल। विपक्षी=शत्रु। देवपादादेशात्=आपके आदेश (हुकम) से। बहिः+निसृत्य=बाहर निकल कर। स्वामिना+अधिष्ठितः=स्वामी से सहारा दिया हुआ। श्वा+अपि=कुत्ता भी। सिंहायते=शेर के समान बन जाता है। महाहवम्=बड़ा युद्ध। दुर्गव्यसनम्=किले का दोष।

पृष्ठ ८५—उपजापः=फूट । चिरारोधः=देर तक रोके रखना । अवस्कन्दः=आक्रमण । दुर्गाभ्यन्तरगृहेषु=किले के भीतर के घरों में । सत्वरं=शीघ्र । ह्रदम्=तालाब में । सुमन्त्रितम्=अच्छी मन्त्रणा (सलाह) । सुविक्रान्तम=बहुत पराक्रम दिखाना । सुपलायितम्=अच्छी तरह से दूर भाग जाना। सारसद्वितीयः=जिस के साथ दूसरा साथी सारस है। वेष्टित.=घेर लिया। मन्मांसासृग्लिप्तेन=मेरे मांस और खून से लिबड़े हुए। द्वारवर्त्मना=द्वार के मार्ग से। शुचिः=पवित्र (ईमानदार)।

पृष्ठ ८६—अपास्य=छोड़ कर । समरम्=युद्ध को । इत=यहाँ से । अन्यतः=दूसरे स्थान पर । मुधा=व्यर्थ । प्रकृति=प्रजा । गतायुषि=आयु जिस की समाप्त हो गई हो। जीवलोकः=संसार । निमीलति=नष्ट होने पर । निमीलति=आखें बन्द कर लेता है। (मर जाता है)। उदीयमाने=चढ़ते हुए। सरोरुहम्+इव=कमल की तरह । खरतर नखाघातः=तीव्र नाखुनों का प्रहार। उपसृत्य=समीप जाकर। स्वस्कन्धावारम्=अपनी छावनी को। गवाकृतीन्=गौ जैसी आकृति वाले। स्वाम्यर्थे=स्वामी के लिए। त्यक्त जीविताः=जिन्होंने जीवन को छोड़ दिया है। भर्तृ भक्ताः=स्वामी के भक्त।

पृष्ठ ८७—विग्रह=युद्ध । करितुरङ्गपत्तिभिः=हाथी घोड़े पैदलों के साथ । महीभृताम=पृथ्वी का पालना करने वाले राजाओं का। समाहताः=ताड़े हुए। द्विष=शत्रु । संश्रयन्तु=आश्रय लें।

सन्धि के शब्दार्थ

पृष्ठ ८८—अभिधीयताम्=कहिए। निहतसेनयोः=मरी हुई सेना वाले, जिनकी सेना मर चुकी हो। स्थेयाभ्याम्=मध्यस्थ बने हुए। पारक्येण=किसी बाहर के (शत्रु) से। विपक्षप्रयुक्तेन=शत्रु द्वारा भेजे हुए। विचेष्टितम्=कार्य। दुर्दैव=दुर्भाग्य। सुचरितम्=ठीक प्रकार से किया हुआ। गर्हयते=निन्दा करता है। अभिनन्दति =पसन्द करता है।

पृष्ठ ८९—धीवरैः—मछलियों के पकड़ने वाले (मछेरों) ने। उषित्वा=रह कर। दृष्टव्यतिकरः=जिसने दुर्भाग्य का अनुभव किया हुआ है। अनागतविधाता=जो अभी आई न हो (भविष्य) उसे बताने वाला। प्रत्युत्पन्नमतिः=समय आने पर उपाय कर लेने वाला। एधेते=बढ़ते हैं। आलोचितम्=सोचा। भविष्यदर्थे=आगे आने वाली बात में। प्रमाणाभावात्=प्रमाण न होने के कारण। जलाशयान्तरम्=दूसरे तालाब में। चिन्ताविषघ्नः=चिन्ता रूपी विष को दूर करने वाली। अगदः=दवाई। सन्दर्श्य=दिखा कर। अपसारितः=निकाला हुआ। उत्प्लुत्य=उछल कर (कूद कर)। नीरंप्रविष्टः=जल में दाखल हो गया। ह्रदान्तरं=दूसरे तालाब (झील) में।

पृष्ठ ९०—आकाशवर्त्मना=आकाश के मार्ग से। चञ्चुधृतम्=चोंच में पकड़ा हुआ। काष्ठखण्डम्=लकड़ी का टुकड़ा। अपायम्=हानि को। अधस्तात्=नीचे, निचले भाग में। अभिहितम्=कहा। उपादाय=पकड़ कर। पंक्तिक्रमेण=कतार बांध कर। विकीरत=बखेर दो। तद्भूतम्=वैसे वह हुआ। बकशावकरावः=बगलों के बच्चों का शब्द। आकर्ण्य=सुनकर। अप्राज्ञः=मूर्ख।

पृष्ठ ६१—आलोक्य=देखकर। पक्त्वा==पकाकर। दग्ध्वा=जलाकर (भूनकर)। कोपाविष्टः=क्रोध से भरा हुआ। विस्मृत पूर्व संस्कार=पहले संस्कारों को भूला हुआ। प्राह=बोला। भस्म=राख। अनवधानस्य=लापरवाही (ध्यान न देने) का। गृध्रयुपुक्तेन =गीध द्वारा भेजे गए (लगाए गए)। निःश्वस्य=सांस छोड़ कर। प्रतिबुध्यते=जागता है (समझता) है। प्रसादितेन=प्रसन्न किए गए। आस्पदे=स्थान पर।

पृष्ठ ६२—श्लाघ्यपदम्=प्रशंसनीय पद को। हन्तुम् इच्छति=मारना चाहता है। व्याघ्रतां प्राप्य=बाघ बनकर। नीयमानः=ले जाया जा रहा। स्वभाव दयात्मना=स्वभाव से ही दयालु। नीवारकणैः=नीवार (जंगली चावलों स्वांक) की कणियों से। संवर्धितः=बढ़ाया। मार्जारः=बिलाव। विभेति=डरता है। व्याघ्रतांनीतः=बाघ बना दिया है। स्वरूपाख्यानम्=स्वरूप की गाथा (कथा) को। सुकरम्=सहज।

पृष्ठ ६३—उद्विग्नम्+इव=उदास से। कुलीरेण=केंकड़े से। आहार त्याग=भोजन का छोड़ना। कैवर्तैः=धीवरों (मछेरों) से। नगरोपान्ते=नगर के समीप। वर्तनाभावात्=आजीविका (गुंजारा) न होने से। आलोचितम्=सोचा। पृच्छ्यताम्=सोचिए। उपकर्त्रा+अरिणा=भलाई करने वाले शत्रु के साथ। अपकारिणा=बुराई करने वाले। लक्ष्यम्=उद्देश्य जलाशयान्तराश्रयणम्=दूसरे सरोवर का सहारा लेना। एकैकशः=एक २ कर। अपूर्व कुलीर मांसार्थी=अपूर्व जो कभी न खाया हो, ऐसे केंकड़े के मांस को चाहने वाला। मत्स्यकण्टकाकीर्णम्=मछियों (मच्छों) के कांटों से भरे हुए। समयोचितम्=समयानुसार। चिच्छेद=काट दिया। आलोचितम्+अस्ति=सोचा है।

उपनेतव्यानि=भयरूप से लाई जाएंगी।

पृष्ठ ९४ प्रहृष्यति=प्रसन्न होता है। भग्नभाण्ड=जिसके बरतन टूट गए हों, टुटे बर्तनों वाला। महाविषुवत्सङ्क्रांत्याम्=वैशाख वा कार्तिक की पवित्र सङ्क्रान्ति में। सक्तुपूर्णः=सत्तुओं से भरा हुआ। भाण्डपूर्ण मण्डपैकदेशे=मिट्टी के बरतनों से भरे हुए मण्डप के एक कोने में। रौद्रेण=धूप से। विक्रीय=वेचकर। कपर्दकान्=कौडिएं। उपक्रीय=खरीद कर और बेचकर। पूंगवस्त्रादिकम्=सुपारी और वस्त्र वगैरा। सपत्न्यः=सौतनें। द्वन्दम्=लड़ाई झगड़ा। लगुडेन=दण्ड से। वहिष्कृतः=बाहर कर दिया, निकाल दिया। बलदर्पात्=बल के घमण्ड से। भग्नम्=तोड़ा।

पृष्ठ ९५—परभूमिष्ठानाम्=दूसरों की भूमि में ठहरे हुओं का। सन्धाय=सन्धि करके (मेलकर)। अन्योन्यम्=आपस में। प्रियाप्रिये=मीठी और कड़वी बातों को। पुरस्कृत्य=आगे रखकर। हित्वा=छोड़ कर। तथ्यानि=सच्ची। त्रैलोक्यकामनया=त्रिलोकी के राज्य की इच्छा से। तयोःसमधिष्ठिततया=उन दोनों में बैठी हुई। अन्यद्वक्तुकामौ=कुछ और कहने को इच्छा वाले। चन्द्रशेखरम्=जिसके मस्तक पर चन्द्रमा है (शिव) को। रूपलावण्य लुब्धाभ्यां=रूपकी सुन्दरता से ललचाए हुओं से। मनसोत्सुकाभ्याम्=मन से चाहने वालों। अन्योन्यकलहायमानाभ्याम्=आपस में झगड़ते हुओं से। मतौ कृतायाम्=सम्मतिकर लेने पर। क्षत्रधर्म्मानुगौ=क्षात्र धर्म्म के अनुयायी। अभिहिते सति=कहने पर।

पृष्ठ ९६—समकालम्—एक ही समय में। अन्योन्यघातेन=एक दूसरे पर चोट करने से। अवसानपर्य्यन्तं—अन्त तक।

विग्रहारम्भः—युद्ध का आरम्भ । विग्राह्यः – विग्रह करने के योग्य । भ्रातृसङ्घातवान्—वहुत भाइओं वाला । सन्धेयाः—सन्धि करने के योग्य । निदर्शनम् —नीतिशास्त्र की आज्ञा । प्रतिवातम्—वायु के विपरीत । उपसर्पति—चलता है । सन्धानं गच्छति—मेल कर लेती है । अवगतम्—जान लिया । ज्ञातिवहिष्कृतः—जाति वालों से निकाला हुआ । भीरुजनकः —डरपोक परिवार वाला । विरक्त प्रकृतिः – जिससे प्रजा के मनुष्य विरक्त हों । दैवोपहतकः —मन्दभाग्यवाला । दैवपरायणः —भाग्यके आश्रय पर ही रहने वाले । दुर्भिक्ष व्यसनोपेताः— दुर्भिक्षरूपी व्यसन से युक्त । बलव्यसनसंकुलः—सेना के दोषों से दुःखित । धर्मव्यपेतः—धर्म से गिरा हुआ । विगृह्णीयात—युद्ध करे ।

पृष्ठ ६७—यान—शत्रु पर चढ़ाई । आसन—बैठे रहना, समय की प्रतीक्षा । संश्रय—किसी बलवान का आश्रय लेना । द्वैधीभाव—फूट करा देना । पुरुषद्रव्यसम्पत्—पुरुषों तथा द्रव्यों खान पानादि की वस्तुओं । विनिपात प्रतिकारः—विपत्ति में उपाय । पञ्चांग—पांच अङ्गों वाला । विजिगीषवः—विजय चाहने वाले । विभक्तम्—बँटा हुआ । सन्निभृतः—गुप्त । सागरान्ताम्—समुद्र पर्यन्त । प्रशास्ति—हकूमत करता है ! जनयतु—पैदा करे । तत्रत्य—वहाँ का । चिरं + उषितः—देर तक रहा है । महाशयः—वड़ा उदार । वञ्चितः—ठगा गया ।

पृष्ठ ८८ - वञ्चने—ठगने में । विदग्धता—चतुरता । अंकम् + आरुह्य—गोद पर चढ़ कर । विप्रलब्धः—ठग लिया गया । आत्मौपम्येन—अपनी समानता से । प्रस्तुतयज्ञः—किये हुए यज्ञ बाला । उपक्रीय—खरीदकर । मतिप्रकर्षः—बुद्धि की उत्कृष्टता, अत्यधिक बुद्धिमत्ता । वृक्षत्रयतले—तीन

वृक्षों के नीचे। क्रोशान्तरेण—एक २ कोस के फासले पर। प्रतीक्ष्य—प्रतीक्षा (इन्तजार) कर। स्कन्धेनउह्यते—कन्धे से उठाया जा रहा है। निरीक्ष्य—देख कर। दोलायमानमतिः—डावाँ डोल विचार वाला। दोलायते—डोल जाती है। खलोक्तिभि—दुष्टों के वचनों से। सार्थाद्भ्रष्टः—समूह (काफले) से छुटा हुआ।

पृष्ठ ९९—शरीर वैकल्यात्—शरीर की निर्बलता के कारण। भूरिवृष्टिकारणात्—अत्यधिक वर्षा के कारण। कण्टकभुजा—काण्टे (तृणादि) खाने वाले से। परिक्षीणः—दुर्बल कमजोर। क्षुधार्ता—भूख से पीड़ित। महिला—स्त्री। भुजगी—सर्पणी। निष्करुणाः—दया से रहित, निर्दय। मत्तः—शराब से मस्त। प्रमत्तः—धन के धमण्ड से अन्धा। उन्मत्तः—पागल। श्रान्तः—थका हुआ। त्वरायुक्तः—जल्दी करने वाला। धर्म्मवित्—धर्म को जानने वाला। सिंहान्तिकं—सिंह के समीप। स्पृष्ट्वा—छूकर। भूप्रदानम्—पृथ्वी का दान। सर्वकामसमृद्धस्य—सब कामनाओं से बढ़े हुए। लब्धावकाशः—अवसर पाए हुए।

पृष्ठ १००—अनेकोपवासखिन्नः—कई उपवासों (फाकों) से दुखी। प्रकृतयः—प्रजा। खलु—निश्चय से। समूलेषु—जड़ सहित। प्रवृतिः—ख्याल करना। कुक्षिम्—पेट को। विदीर्य—फाड़ कर। व्यापादितः—मार दिया गया। चिरम् + उषितम्—देर तक निवास किया गया। अनुनयः—विनय। असाद्य—पा कर। विनिपातिताः—नष्ट कर दिए। अतिजीर्णतया—बहुत बूढ़ा होने के कारण। अन्वेष्टुम्—ढूँढने के लिए। अक्षमः—असमर्थ। मण्डूकेक—मैंडक से। अन्विष्यसि—ढूँढते हो।

पृष्ठ १०१—संजातकौतुकः—उत्कण्ठायुक्त, जिस से उत्सुकता उत्पन्न हो गई है। विंशतिवर्षदेशीयः—तकरीबन बीस वर्ष का। दुर्दैवात्—दुर्भाग्य से। नृशंसस्वभावात्—निर्दय स्वभाव होने के कारण। दष्टः—डस लिया गया। लुलोठ—लोटने लगा। दुर्भिक्षे—अकाल, (कहत) के समय। राष्ट्र विप्लवे—राजक्रान्ति (देश में गड़बड़) होने पर। स्नातकः—ब्रह्मचारी। कायः—शरीर। सन्निहितापाय—समीपमृत्यु अर्थात शीघ्र नाश होने वाला। समागमः—मेल। सापगमः—विछोड़े के साथ। भंगुरम्—नाश होने वाली। उत्पादि—उत्पन्न होने वाली (वस्तु)। द्रव्यसञ्चयः—धन का संग्रह (इकट्ठा करना)। प्रियसंवासः—मित्रों के साथ (सहवास)। समेयाताम्—मिल जाते हैं। व्यपेयाताम्—अलग हो जाते हैं। भूतसमागमः—प्राणियों का मेल जोल। पथिकः—मुसाफिर। विश्रम्य—आराम करके। निमिते—बने हुए। पञ्चत्वंगते—पाँच तत्वों में मिल जाने पर, अर्थात मर जाने पर। परिवेदना—शोक। गृहनरकवासने—गृहरूपी नरक में रहने से। रागिणाम—विषयों में अभिलाषा रखने वालों।

पृष्ठ १०२. अकुत्सिते—उत्तम (जो बुरा न हो) प्रवर्तते—लगता है। निवृत्तरागस्य—विषयवासना से रहित! चरेत—करे। लिंगम्—चिह्न (निशान)। सत्योदका - सत्य के जल वाली। दयोर्मि—जिस में दया ही लहरों के रूप में है। अभिषेकं—स्नान। जरा व्याधि वेदनाभिः—बुढ़ापा रोग तथा पीड़ाओं से। उपद्रुतम्—भरे हुए। उपलक्ष्यते—जाना जाता है। शप्तः—शाप दिया गया। शोकाविष्टम्—शोक से व्याप्त। सद्भिः—उत्तम पुरुषों के साथ। प्रशांतशोकानलः—जिस की शोकाग्नि शांत हो गई है। वोढुम्—उठाने के लिए। चित्रपदक्रमम्==विचित्र गति

(चाल से)। परेद्युः==दूसरे दिन। मन्दगतिः== धीरे २ चलने वाला।

पृष्ठ १०३, निर्मण्डूकम्==मेंडकों से रहित। आहार-विरहात्=भोजन न मिलने से। पुरावृत्ताख्यानकथनम्=पुरानी गाथाओं का वर्णन। सन्धीयताम्=सन्धि कर लीजिए। अत्रान्तरे==इसी बीच में। जम्बुद्वीपं आक्रम्य==जम्बु द्वीप पर आक्रमण कर।

स्वगतम्==अपने मन में। समूलम् उन्मूलयामि=जड़ सहित (जड़ से उखाड़ता हूं) नष्ट करता हूँ। अभिघातिनः== आक्रमण करने वाले शत्रुओं को। उरगः=सर्प। सन्धानम्= मेल। अविज्ञाय=न जान कर।

पृष्ठ १०४. अवस्थाप्य=ठहरा कर। आह्वानम्=बुलावा (निमन्त्रण)। सहजदारिद्र्यात्=स्वाभाविक दरिद्रता (गरीबी) के कारण। पुत्रनिर्विशेषम्=पुत्र के तुल्य। व्यवस्थाप्य=ठहरा कर। खण्डं खण्डं कृत्वा==टुकड़े २ करके। रक्त विलिप्तमुख-पादः=रुधिर से जिस के मुख और पैर लिपटे हुए हैं। लुलोठ== लोटने लगा। अवधार्य=समझ कर। उपसृत्य==समीप जाकर। षड्वर्गम्=काम, क्रोध आदि इन छः के समूह को। उत्सृजेत्== छोड़ दे। परमार्थेषु==धर्म के तत्वों में। वितर्कः==विचार। सुस्थः==सुखी। मन्त्रगुप्तिः==मन्त्र किए गए विचार की रक्षा।

पृष्ठ १०५. विदधीत=करे। अविवेकः=अज्ञान। अविमृश्यकारिणं=बिना सोचे करने वाले को। सम्पदः==सम्पत्तियाँ। वृणुते==चुनती हैं, पसन्द करती हैं। सन्धाय==सन्धि कर के। साध्य साधने==सिद्ध करने योग्य, कार्य के सिद्ध करने में। संख्यामात्रम्==गणना मात्र। अज्ञः=मूर्ख। आराध्यः==

आराधन करने के योग्य । सुखम् सुखपूर्वक । सुगमता==आसानी से । ज्ञानलवदुर्विदग्धम्==ज्ञान के लेश, थोड़े से ज्ञान से अभिमानी । कर्मानुमेयाः=कर्मों से अनुमान करने योग्य । अनुभाव्यते=जाना जाता है । यथाभिप्रेतम्=यथेष्ट, इच्छानुसार । अनुष्ठीयताम्==कीजिए । यथार्हम्=यथायोग्य । अभिसन्धिना==छल से । शङ्कास्पदम्==शङ्का का स्थान । पायसंदग्धः=दूध से जला हुआ । फूत्कृत्य==फूकें मार २ कर ।

पृष्ठ १०६. सुसज्जीक्रियताम=तैयार कीजिए । सत्कृत्य=सत्कार करके । आनीय=लाकर । युष्मदायतम्=आप के आधीन । स्वेच्छया=अपनी इच्छा से । सन्धातुम=संधि करने के लिए । काञ्चनाभिधानसंधिः=कांचन नाम की संधि बराबर की संधि । कांचनवस्त्रालंकारोपहारैः=वस्त्र और भूषण आदि की भेंटों से । प्रहृष्टमना=प्रसन्न मन । बहुमानदानपुरस्सरं =बड़े सन्मान दान पूर्वक । स्वीकृत्य=स्वीकार करके । प्रस्थापितः=भेज दिया । व्यावृत्य=लौट कर । प्रालेयाद्रे=प्रलय काल में भी रहने वाले (हिमालय पर्वत) । प्रणयनिवसति-प्रेमपात्र । चन्द्रमौलि=जिन के मस्तक पर चन्द्रमा है । (शिव) ससीहितम्=अभिलाषा (इच्छा) जलदे=बादल में । तडित्=बिजली । स्वर्णाचलः==सुवर्ण का पहाड़ (सुमेरु) । दवदहनसमः=बन की अग्नि के समान । स्फुलिङ्ग=चिङ्गारी ।

सन्धि-विच्छेद

१. सताम् + अस्तु—सतामस्तु
नरपतिः + आसीत् नरपतिरासीत् ।
भूपतिः + एकदा—भूपतिरेकदा ।
न + अस्ति + अंधः—नास्त्यन्धः ।
एक + एकम्—एकैकम् ।
कः + अर्थः—कोऽर्थः ।
एकः + चन्द्रः एकचन्द्रः ।
क + अपि—काऽपि ।
२. राजा + उवाच—राजोवाच
अत्र + अन्तरे—अत्रान्तरे
बृहस्पतिः + इव — बृहस्पतिरिव ।
न + अद्रव्ये—नाद्रव्ये ।
अस्मिन् + तु—अस्मिस्तु ।
कीटः + अपि—कीटोऽपि ।
पुनः + उवाच पुनरुवाच
३. विष्णुशर्मा + उवाच—विष्णुशर्मोवाच ।
साधयन्ति + आशु—साधयन्त्याशु ।
रात्रौ + अस्ताचलः—रात्रावस्ताचलः ।
आलोक्य + अचिन्तयत् ।
आलोक्याचिन्तयत् ।
प्रात + एव—प्रातरेव ।
तस्मिन् + एव—तस्मिन्नेव ।
इति + उक्त्वा — इत्युक्तवा ।
४. कुतः + ऽत्र—कुतोऽत्र ?
तद् + निरूप्यताम्—तन्निरूप्यताम् ।
प्रायेण + अनेन—प्रायेणानेन ।
सः + अब्रवीत्—सोऽब्रवीत्
चरन् + अपश्यम्—चरन्नपश्यम् ।
किंतु + अस्मिन् + आत्मसंदेहे—किंत्वस्मिन्नात्मसंदेहे ।
प्राक + एव—प्रागेव ।
५ केनचित् + धार्मिकेण—केनाचिद्धार्मिकेण ।
इज्या + अध्ययन—इज्याध्ययन ।
मार्गः + अयम्—मार्गोऽयम्
यथा + आत्मनः + अभीष्टाः
यथात्मनाऽभीष्टाः ।

प्रति + आख्याने—प्रत्याख्याने।
प्रिय + अप्रिय—प्रियाप्रियः।
च + अति + इव—चातीव
दीयते + अनुपकारिणे—
दीयतेऽनुपकारिणे—
६. अतः + त्वम्—अतस्त्वम
पठति + इति—पठतीति।
तत् + मया—तन्मया।
न + एव—नैव।
न + इतरे—नेतरे।
विधुः + अपि—विधुरपि।
चिंतयन् = एव—चिंतयन्नेव।
अतः + अहम्—अतोऽहम्।
७. हि + उपस्थिते—ह्युपस्थिते
सर्वत्र + एवम्—सर्वत्रैवम्
तु + असंतुष्टः—त्वसंतुष्टः
धियः + अपि—धियोऽपि।
प्रतीकारः + श्चिंत्यताम्—
प्रतीकारश्चिंत्यताम्।
अपि + एवम्—अप्येवम्
सर्वैः + एकचित्तीभूय—
सर्वैरेकचित्तीभूय।
८. अपहारकान् + तान्—
अपहारकांस्तान्।

धावन् + अचिंतयत्—
धावन्नचिंतयत्।
संहता + तु—संहतास्तु
ततः + तेषु—ततस्तेषु।
पाशान् = छेत्स्यति—पाशाँश्छेत्स्यति।
प्रति + अभिज्ञाय—
प्रत्यभिज्ञाय।
अस्मात् + न—अस्मान्न।
९. फलानि + एतानि—फलान्येतानि।
एतत् + श्रुत्वा—एतच्छ्रुत्वा।
मा + एवम्—मैवम्।
यावत + शक्यम्—यावच्छक्यम्।
धनैः + अपि—धनैरपि।
नीतिः + तावत्—नीतिस्तावत्।
ईदृशी + एव—ईदृश्येव।
इति + आकर्ण्य—इत्याकर्ण्य।
१०. स + आदरम्—सादरम्।
संपूज्य + आह—संपूज्याह।
पश्यति + इह + आमिषम्-
पश्यतीहामिषम्।

विधि + अहो = विधिरहो
संप्राप्नुवन्ति + आपदं =
संप्राप्नुवन्त्यापदम् ।
विहस्य + आह = विहस्याह
यथा + इष्ट=यथेष्ट ।
श्लाघ्यः + असि =श्लाघ्योऽसि
कः + त्वम् =कस्त्वम् ।

११.चिरात् + महता =
चिरान्महता ।
स्व + इच्छया =स्वेच्छया ।
केनचित् + शृगालेन =केनचिच्छृगालेन ।
एतत् ÷ मांसम =एतन्मांसम् ।
इति + आलोच्य + उपसृत्य =इत्यालोच्योपसृत्य ।
मृतवत् + निवसामि=मृतवन्निवसामि ।
अत्र + अरण्ये =अत्रारण्ये
मृगेण + उक्तम =मृगेणोक्तम् ।

२. तौ + आहतुः =तावाहतुः ।
तद + जीवनाय =तज्जीवनाय ।

स्व + आहारात्-स्वाहारात
कः + अयम-कोऽयम् ।
ततः + तम्-ततस्तम् ।
अधुना + अस्य —अधुनाऽस्य ।
यथा + उचितम्—यथोचितम् ।
सः + अवदत्-सोऽवदत ।
मार्जारः + अहम्— मार्जारोऽहम् ।
यदि + अहम्—यद्यहम् ।

१३. कश्चित + हन्यते— कश्चिद्धन्यते ।
पूज्यः + अथवा-पूज्योऽथवा
आचरन् + तिष्ठामि-आचरंस्तिष्ठामि ।
भवन्तः + च + एतादृशाः ।
भवन्तश्चैतादृशा
यत् + माम्—यन्माम् ।
अरौ + अपि —अरावपि ।
दुः + कृतम्—दुष्कृतम ।
नीचः + अपि-नीचोऽपि ।
च + अत्र—चात्र ।
इति + अत्र-इत्यत्र + एक

मत्यम्–इत्यत्रै कमत्यम् ।
सर्वसहाः + च–सर्वसहाश्च
उत्तर + उत्तरेण—उत्तरोत्तरेण ।
१४- कस्यचित् + मित्रम्–कस्यचिन्मित्रम् ।
शाकेन + अपि—शाकेनाऽपि ।
प्रति + अहम्—प्रत्यहम् ।
कोटरात् + निसृत्य— कोटरान्निसृत्य ।
अतः + अहम्—अतोऽहम्
सह + एतस्य सहैतस्य ।
सर्वैः + एकत्र—सर्वैरेकत्र ।
उदरस्य + अर्थं—उदरस्यार्थं ।
१५. काकेन + उक्तम् — काकेनोक्तम् ।
वन + एकदेशे—वनैकदेशे
पुनः + आगत;–पुनरागतः
तत्र + आगत्य + उपस्थितः + अचिन्तयत्–तत्रागत्योपस्थितोऽचिन्तयत् ।
एतस्य + उत्कृत्यमानस्य + एतस्योत्कृत्यमानस्य ।
लिप्तानि + अस्थीनि—लिप्तान्यस्थीनि ।
मृगः + तम्—मृगस्तम् ।
दृष्टा + ल्लासितः—दृष्टोल्लासित
मुहुः + मुहुः—मुहुर्मुहुः ।
तत् + मया—तन्मया ।
इतस्ततः + अन्विष्यन् + तम्–इतस्ततोऽन्विष्यंस्तम
मृगेण + उक्तम्—मृगेणोक्तम् ।
१६. मत् + मांसार्थी—मन्मांसार्थी ।
तिष्ठति + अत्र + एव—तिष्ठत्यत्रैव ।
मधुरैः + वचोभि—मधुरैर्वचोभिः ।
मिथ्या + उपचारैः—मिथ्योपचारैः ।
स्थितिः + इयम् — स्थितिरियम् ।
प्रविशति + अंशक;—प्रविशत्यशंक ।
जिह्वा + अग्रे – जिह्वाग्रे ।

काकेन + उक्तम् —काकेनोक्तम ।

१७. मासैः + त्रिभि—मासैस्त्रिभिः ।

भक्षितेन + अपि—भक्षितेनापि ।

न + आहारः—नाहारः ।

कापुरुषः + तथा—कापुरुषस्तथा ।

प्रभवन्ति + एते—प्रभवन्त्येते ।

चपलः + त्वम्—चपलस्त्वम्

सन्धिः + न + एव—संधिर्नैव

सुश्लिष्टेन + अपि—सुश्लिष्टेनापि ।

महता + अपि + अर्थसारेण—महताऽप्यर्थसारेण ।

१८. मृत् + घट—मृद्घट ।

निमित्तात् + मृगपक्षिणाम—निमित्तान्मृगपक्षिणाम् ।

बहिः + एव—बहिरेव ।

भंगे + अपि —भंगेऽपि ।

च + अनुरक्तिः + च—चानुरक्तिश्च ।

गुणैः + उपेत—गुणैरुपेतः ।

बहिः + निःसृत्य + आह—बहिर्निसृत्याह ।

भवता + अनेन—भवताऽनेन ।

प्रति + अङ्गम्—प्रत्यङ्गम् ।

भवतः + अभिमतम् —भवतोऽभिमतम् ।

१९. विदेशः + तथा विदेशस्तथा ।

तस्मिन् + एव - तस्मिन्नेव ।

रुधिरैः + तृष्णाम—रुधिरैस्तृष्णाम् ।

चलति + एकेन—चलत्येकेन

दण्डक + अरण्ये—दण्डकारण्ये ।

सुहृद् + मे—सुहृन्मे ।

२०. कथा + आलापैः—कथालापैः ।

यथा + उचितम्—यथोचितम् ।

स + आदरम्—सादरम् ।

नागदन्तके + अवस्थाप्य—नागदन्तकेऽवस्थाप्य ।

त्रास + अर्थम्—त्रासार्थम् ।

२१. भिक्षा + अन्नम्—भिक्षान्नम् ।
स्वल्पबलः + अपि—स्वल्पबलोऽपि ।
सत्व + उत्साहः—सत्वोत्साहः ।
उपसर्पन् + चूड़ाकर्णेन—उपसर्पश्चूड़ाकर्णेन ।
बलवान् + लोके – बलवांल्लोके ।
पश्य + एनम्—पश्यैनम ।
पुरुषस्य + अल्पमेधसः
पुरुषस्याल्पमेधसः ।
तानि + इन्द्रियाणि + अविकलानि—तानीन्द्रियाण्यविकलानि ।
तत् + अपि + अनुचितम—तदप्यनुचितम ।
२२. न + अनलः—नानलः ।
वने + अथवा – वनेऽथवा ।
अति + इव—अतीव ।
दारिद्र्यात् + ह्रियम—
दारिद्र्याद्ध्रियम् ।
परिभवात् + निर्वेदम्—
परिभवान्निर्वेदम् ।
वाक्येषु + अभिरुचिः—
वाक्येष्वभिरुचिः ।
एति + अहो – एत्यहो ।
वासः + अरण्ये – वासोऽरण्ये ।
पुनः + अपि + अर्थम्—
पुनरप्यर्थम् ।
बुद्धिः + चलति—बुद्धिश्चलति ।
ततः + अहम्—ततोऽहम् ।
२३. येन + आशाः—येनाशाः ।
करप्राप्ते + अपि + अर्थे—
करप्राप्तेऽप्यर्थे ।
ग्रामस्य + अर्थे—ग्रामस्यार्थे
इति + आलोच्य + अहम्—
इत्यालोच्याहम् ।
ततः + अस्मत् – ततोऽस्मत् ।
युष्माभिः + अतिसंचयः—
युष्माभिरतिसंचयः ।
२४. धन + अर्जनम्–धनार्जनम् ।
भारवाही + इव–भारवाहीव
संचयशीलः + असौ—
संचयशीलोऽसौ ।
च + एकदा – चैकदा ।
विन्ध्य + अटवीम्—
विन्ध्याटवीम् ।

थर + आकृतिः–घोराकृतिः

सर्पः + अपि—सर्पोऽपि ।

परिभ्रमन् + एकत्र—परिभ्रमन्नेकत्र ।

आहार + अर्थी—आहारार्थी

अहिः – एकम्–अहिरेकम् ।

२५. इति + उक्त्वा—इत्युक्त्वा ।

स + उत्साहेन–सोत्साहेन ।

शास्त्राणि + अधीत्य—शास्त्राण्यधीत्य ।

करोति + अरोगम्–करोत्यरोगम् ।

स + उद्योगम्—सोद्योगम्

व्यसनेषु + असक्तम् —व्यसनेष्वसक्तम् ।

अपि + अर्थैः—अप्यर्थैः ।

२६. अन्यत् + च—अन्यच्च ।

एतत् + न—एतन्न ।

सः + अर्थः—सोऽर्थो ।

कदाचित्—चित्राङ्गनामा —कदाचिच्चित्राङ्गनामा ।

तत् + श्रुत्वा—तच्छ्रुत्वा ।

स्वेच्छया + उदकादि — स्वेच्छायोदनादि ।स्व + इच्छा + आहारम्– स्वेच्छाहारम्

प्रातः + च—प्रातश्च ।

तेन + अत्र + आगत्य—तेनात्रागत्य ।

एति + आलोच्य—एत्यालोच्य ।

यथा + अवसरम्—यथावसरम् ।

जल + आशय + अन्तरम् जलाशयान्तरं । विमृश्याह + आह—विमृश्याह ।

२७. तत् + हितवचनम् –तद्धितवचनम् ।

ते + अपि—तेऽपि ।

ग्रहीत्वा + उत्थाप्य—ग्रहीत्वोत्थात्य ।

छिद्रेषु + अनर्थाः— छिद्रेष्वनर्थाः ।

अथवा × इत्थम् — अथवेत्थम् ।

एव + एतत—एवैतत ।

पुनः + विमृश्य—पुनविमृश्य ।

१८ काकः + च – काकश्च ।

तत + अहम् + ततोऽहम् ।

ततः + तत्र—ततस्तत्र ।

विलोक्य—उत्थाय—विलोक्योत्थाय ।

ततः + असौ – ततोऽसौ ।

विमुक्त+आपदः-विमुक्तापदा ।
विष्णु शर्मा + उवाच—विष्णुशर्मोवाच ।
२६. अतः+ तावत — अतस्तावत
राजपुत्रैः—उक्तम्—राजपुत्रैरुक्तम् ।
प्रचुरे+अपि—प्रचुरेऽपि ।
करणीया+ इति— करणीयेति ।
अधः+अधः — अधोऽधः
न+ उपचीयते — नोपचीयते ।
उपरि+उपरि —उपर्युपरि
यस्य+अस्ति—यस्यास्तिजनः ।
३२ न+अश्नुते— नाश्नुते
यः+च—यश्च ।
गच्छतः+तस्य—गच्छतस्तस्य ।
पुनः+तत्—पुनस्तत् ।
संजीवकः+ अपि—संजीवकोऽपि ।
जन्तुः+विद्धः— जन्तुर्विद्ध
३३ जीवति + अनाथः —जीवत्यनाथः ।
च+एकदा — चैकदा ।
आलोचयन्+इव—आलोचयन्नेव ।
किम्+इति+अयम्— किमित्ययम् ।
उदक+अर्थी—उदकार्थी ।
सेवा+इव—सेवैव ।
यतः+अनेन—यतोऽनेन ।
मूढैः+तदपि-मूढैस्तदपि ।
३४ मौनात्+ मूर्खः—मौनान्मूर्खः ।
अपि+ अगम्यः— अप्यगम्यः ।
अन्यत्+च—अन्यच्च ।
सर्वस्मिन + अधिकारे—सर्वस्मिन्नाधिकारे
यतः+अनुजीविना— यतोऽनुजीविना ।
हित+ इच्छया - हितेच्छया ।
३५ च+एकदा—चैकदा ।
कुक्कुर+च+उपविष्टः+अस्ति — कुक्कुरश्चोपविष्टोऽस्ति ।
चिरात्+निवृत्तः —चिरान्निवृत्त ।

तेन + अधुना + अपि= तेनाधुनापि ।

पापीयान् + त्वम् = पापीयांस्त्वम्

तत्+मया=तन्मया ।

उच्चैः + चीत्कारम—उच्चैश्चीत्कारम् ।

अस्मद्+नियोगः = अस्मन्नियोगः ।

बुधैः+जठरम्=बुधैर्जठरम्

आत्मा+अर्थे = आत्मार्थे

यस्मिन्+जीवति =यस्मिञ्जीवति ।

काकः+अपि = काकोऽपि

यत्+जीव्यते = यज्जीव्यते

तत्+नाम—तन्नाम

तत्+ज्ञा—तज्ज्ञाः

३७ उदारः+अभिमतः-उदारोऽभिमतः।

स्वचेष्टितानि+एव—स्वचेष्टितान्येत्र

उदीरितः+अर्थः उदीरितीऽर्थः

पर+इंगितः—परेंगितः

आकारैः+इंगितैः— आकारैरिंगितैः

लक्ष्यते + अन्तर्गतम् — लक्ष्यतेऽन्तर्गतम्

३८ यः+तुः—यस्तु

अस्तु+एवम् — अस्त्वेवम्

दोषभीते +अनारम्भ दोषभीतेरनारम्भः

तत्+ज्ञानम् -तज्ज्ञानम्

नृपतिः+भजति— नृपतिर्भजति ।

तथा+अपि+ अनुजीविना-तथाप्यनुजीविना

भावः+तेन—भावस्तेन

३९ संप्रश्नेषु+आदरः । संप्रश्नेष्वादरः ।

दोषे+अपि—दोषेऽपि

वक्तव्यः+तदा - वक्तव्यस्तदा ।

मम+अनुपपन्नम्-ममानुपपन्नम्

गुणाः+तेन—गुणास्तेन ।

प्रणिपत्य + उपविष्ट— प्रणिपत्योपविष्टः ।

४० भवति + ईश्वराणाम् - भवतीश्वराणाम्

राजन् + उत्तमाः — राजन्नुत्तमाः ।

एतान + त्रिविधेषु — एतां
स्त्रिविधेषु ।
बुधैः + त्यक्ते— बुधैस्त्यक्ते
रवेः + अविषये— रवेर—
विषये ।
खलवचनात् + आगतः —
खलवचनादागतः ।
कुतः + अपि — कुतोऽपि ।
४१ किन्तु + एतत — किन्त्वेतत्
विस्मितः + अस्मि — वि-
स्मितोऽस्मि ।
श्रुतः + त्वया - श्रुतस्त्वया ।
शब्द + अनुरूपेण + अस्य-
शब्दानुरूपेणास्य ।
आपत् + निकषपाषाणे—
आपन्निकषपाषाणे ।
ततः + तौ--ततस्तौ ।
४२ बालः + अपि—बालोऽपि
हि + एषा—ह्येषा ।
स्यात + दधिकर्णः—स्या-
द्दधिकर्णः ।
उत्तरापथे + अर्बुदशिखर-
उत्तरापथेऽर्बुदशिखर ।
कश्चित् + मूषिकः—कश्चिन्मू-
षिकः ।

तत्र + एव—तत्रैव ।
यः + तु—यस्तु ।
विक्रमात + न—विक्रमान्न ।
इति + आलोच्य—इत्या —
ओच्य ।
भयात् + मूषिक-भयान्मूषिक
४३ अथ + एकदा—अथैकदा ।
ततः + असौ-ततोऽसौ
करटक + तरुतले-करटकरु..
तरुतले-मतिः + एव-मतिरेव
घीषयति + इव—घोषयतीव
यदि + अत्र—यद्यत्र ।
४४ महती + एव—महत्येव ।
प्रणम्य + उपविष्टौ—प्रण—
म्योपविष्टौ ।
महावलः + असौ—महा -
बलोऽसौ ।
तत् + शिखरप्रदेशे — त -
च्छिखर प्रदेशे ।
कश्चित् + चौरः—कश्चिच्चौरः
वानराः + ताम्-वानरास्ताम्
इति + उक्त्वा—इत्युक्त्वा ।
फलानि + आदाय—फला -
न्यादाय ।

अतः+अहम् = अतोऽहम्
तत्र+एव =तत्रैव ।
न + अस्ति+ एव= नास्त्येव ।
प्रति+अहम् =प्रत्यहम्
४६ हि+अमात्यः = ह्यमात्यः
एतत्+च=एतच्च।
अपि++अर्थम् = अप्यर्थम
बन्धुः+ आक्रम्य = बन्धुराक्रम्य ।
चरेत्+च=चरेच्च।
किन्तु+एतौ=किन्त्वेतौ ।
सर्वथा + अनुचितम् = सर्वथानुचितम् ।
४७ नष्ट+इन्द्रियस्य=नष्टेन्द्रियस्य ।
अर्थ+अधिकार = अर्थाधिकारः ।
कालः+ अतिवर्तते = कालोऽतिवर्त्तते ।
४८ भृत्यः+च=भृत्यश्च ।
कुर्वन्+आस्ते=कुर्वन्नास्ते ।
एक+एकम =एकैकम् ।
विनीतः+तु=विनीतस्तु ।
४९ ततः+असौ=ततोऽसौ ।
यत्+शक्यं=यच्छक्यम् ।
प्रणम्य+उवाच= प्रणम्योवाच ।
५० आपदि + उन्मार्गगमने = आपद्युन्मार्गगमने ।
पादौ + उपतिष्ठते = पादावुपतिष्ठते ।
मोहात्+श्रयते = मोहाच्छ्रयते ।
मद + आलस्येन = मदालस्येन ।
५१ यदि+अपि+एवम्= यद्यप्येवम्
कुर्वन+अपि = कुर्वन्नपि ।
फलन्ति + अमृतसेके = फलन्त्यमृतसेके ।
सद्भिः + अभ्यर्च्यते = सद्भिरभ्यर्च्यते ।
५२ यथा+इष्टम्=यथेष्टम् ।
पूजयेत्+च=पूजयेच्च।
दोषात्+निवर्त्य = दोषान्निवर्त्य ।
५३. ननु + इदम्=नन्विदम् ।
अस्ति+इह=अस्तीह ।
ततः+टिट्टिभी = ततष्टिट्टिभी ।
तानि+अण्डानि = तान्यण्डानि ।

५४. कः+अर्थान्—कोऽर्थान्।

आपदः + अस्तम्—आपदोऽस्तम्।

पर+आधीनः—पराधीनः।

५५ प्रयत्नात्+न—प्रयत्नान्न।

तस्य+अपगमे — तस्यापगमे।

स्निग्धैः+उपकृतम्—स्निग्धैरुपकृतम्।

५६ यत् + न + आश्रितम् —यन्नाश्रितम्।

यत्र+अयुद्धे—यत्राऽयुद्धे।

किंचित् + हितम् —किंचिद्धितम्।

एतत्+चिन्तयित्वा+एतच्चिन्तयित्वा।

स्फटिकस्य+इव+ स्फटिकस्येव।

यदा+असौ—यदासौ।

नोचेत्+न—नोचेन्न।

इति+उक्त्वा—इत्युक्त्वा।

निष्पन्नः+असौ+अनन्यभेदः—निष्पन्नोऽसावनन्यभेदः।

सञ्जीवकः+अपि + आगत्य—सञ्जीवकोऽप्यागत्य।

हस्तिवधात् +इव— हस्तिवधादिव।

कः+अयम् —कोऽयम्।

यत् +अरातिम् — यदरातिम्

५८ राज्यलोभात् +अहङ्कारात् इच्छेत् +यः—राज्यलोभादहङ्कारादिच्छेद्यः।

विष्णुशर्मा+उवाच — विष्णुशर्मोवाच।

श्रुतः+तावत+भवद्भिः।

श्रुतस्तावदभवदभिः।

भवत्प्रसादात+श्रुत.—भवत्प्रसादाच्छ्रुतः।

सुखिनः+भूता.+ वयम् —सुखिनोभूतावयम्।

५९ राजपुत्रैः+उक्तम्—राजपुत्रैरुक्तम्।

तत्+विग्रहम्— तद्विग्रहम्

यत्+एवम—यदेवम्।

यस्य+अयं + आद्यः-यस्यायमाद्यः।

पट्टिराज्ये+ अभिषिक्तः —पट्टिराज्येऽभिषिक्तः।

स्यात्+नरपतिः—स्यान्नरपति।

सत्+अपि+असत् —सदप्यसत्।

प्रणम्य + उपविष्टः—प्रणम्योपविष्टः ।

६०. देशान्तरात् + आगतः + असि—देशान्तरादागतोऽसि ।

सत्वरं + आगतः + अहम्-सत्वरमागतोऽहम् ।

ततः + अस्मद् वचनम् + आकर्ण्य – ततोऽस्मद्वचनमाकर्ण्य ।

न + अविद्वान + तु–नाविद्वांस्तु ।

नीलपटलैः + इव —नीलपटलैरिव ।

६१. वानरान् + तरुतले + अवस्थितान्—वानरांस्तरुतलेऽवस्थितान् ।

पक्षिभिः + उक्तम्—पक्षिभिरुक्तम् ।

पक्षिणः + अस्मान + निन्दन्ति - पक्षिणोऽस्मान्निन्दन्ति ।

तै + वानरैः + वृक्षम् + आरुह्य—तैवानरैर्वृक्षमारुह्य ।

अतः + अहम्—अतोऽहम् ।

कोपात् + उक्तम्—कोपादुक्तम् ।

ततः + तैः—ततस्तैः ।

आत्मनः + च—आत्मनश्च ।

६२. गर्दभः + अतिवाहनात्—गर्दभोऽतिवाहनात् ।

मुमूर्षुः + इव + अभवत्—मुमूर्षुरिवाभवत् ।

ततः + तेन—ततस्तेन ।

करतलगतम् + अपि + अर्थं—करतलगतमप्यर्थम् ।

मत्वा + उच्चैः–मत्वोच्चैः ।

६३. स्पृशन् + अपि–स्पृशन्नपि ।

जिघ्रन् + अपि–जिघ्रन्नपि ।

शशकः + अहम्—शशकोऽहम् ।

कः + त्वम् + कस्त्वम् ।

६४. यूथपतिः + आह—यूथपतिराह ।

उद्यतेषु + अपि—उद्यतेष्वपि ।

अज्ञानात् + अनेन—अज्ञानादनेन ।

भयात + इदम् + आह—भयादिदमाह ।

इति – अभिधाय—इत्यभिधाय ।

कः + अयम्—कोऽयम् ।

६५. राज्ञा + अपि + उक्तम्—राज्ञाप्युक्तम् ।

सन्ति + एव + सन्त्येव ।

गत्वा + अस्मत् + अभिलषितम्—गत्वास्मदभिलषितम् ।

६६. तु + अयम्—त्वयम् ।

काकसङ्घात् + हतः—काकसङ्घाद्धतः ।

हंसः + तिष्ठन्—हंसस्तिष्ठन् ।

गच्छन् + च—गच्छंश्च ।

पुनः + तन्मुखे—पुनस्तन्मुखे

उत्थाय + ऊर्ध्वम्—उत्थायोर्ध्वम् ।

६७. वर्तकः + चलितः—वर्तकश्चलितः

निधाय + ऊर्ध्वं + अवलोकते—निधायोर्ध्वमवलोकते ।

मया + उक्तम्—मयोक्तम् ।

वाक्यात् + एव + वाक्यादेव

पश्चात् + आगच्छन् + आस्ते—पश्चादागच्छन्नास्ते ।

तावत् + देशान्तरम् + अपि—तावद्देशान्तरमपि ।

दद्यात + न्—दद्यान्न ।

विवदेत् + इति—विवदेदिति ।

६८. अपि + ऊहन्ति—अप्यूहन्ति

धीराः + तस्मात् + रहसि—धीरास्तस्माद्रहसि ।

वकेन + इदम् + अनुष्ठितम्

वकेनेदमनुष्ठितम् ।

प्रणिधिः + तावत् + तत्र—प्रणिधिस्तावत्तत्र ।

ततः + असौ + एव—ततोऽसावेव ।

इति + आत्मना—इत्यात्मना ।

शक्यः + ते—शक्यस्ते ।

प्राप्तः + तावत् + मया + उत्तमः—प्राप्तस्तावन्मयोत्तमः

६७. प्रणम्य + उवाच—प्रणम्योवाच ।

शुकः + तिष्ठति—शुकस्तिष्ठति ।

चक्रवाकेण + ऊक्तम्—चक्रवाकेणोक्तन् ।

विग्रहः + तावत् + उपस्थितः—विग्रहस्तावदुपस्थितः ।

प्रयतेत + अरीन् + न—प्रयतेतारीन्न ।

विशेषतः + च — विशेषतश्च
अतः + तद्दूतः — अयम् — अतस्तद्दूतोऽयम् ।
शुकः + अत्र + आश्वास्य — शुकोऽत्राश्वास्य ।
७०. प्रवेशः + च + अपसारः + च — प्रवेशश्चापसारश्च ।
शास्त्रज्ञः + अपि — शास्त्रज्ञोऽपि ।
किन्तु + अत्र — किन्त्वत्र ।
अस्ति + एवम् — अस्त्येवम्
७१. कश्चित् + शृगालः — कश्चिच्छृगालः ।
पश्चात् + ततः + उत्थातुम् — पश्चात्तत उत्थातुम् ।
प्रातः + आत्मानम् — प्रातरात्मानम् ।
ततः + असौ — ततोऽसौ ।
इति + आलोच्य — इत्यालोच्य ।
प्रणम्य + ऊचुः — प्रणम्योचुः
तत् + अद्य + आरभ्य + अरण्ये — तदद्यारभ्यारण्ये ।
तत् + यथा + अयम् — तद्यथायम् ।
७२. शब्दम + आकर्ण्य = शब्दमाकर्ण्य ।
कृत्वा + आहूतः — कृत्वाहूतः
शुकः + च — शुकश्च ।
सत्वरम् + आगत्य — अस्मच्चरणौ — सत्वरमागत्यास्मच्चरणौ ।
कः + अपि + अस्माकं — कोऽप्यस्माकम् ।
७३. तत् + यत् + छलम् + अभ्युपैति — तद्यच्छलमभ्युपैति
म्लेच्छः + अपि + अवध्यः — म्लेच्छोऽप्यवध्यः ।
शुकः + अपि + उत्थाय — शुकोऽप्युत्थाय ।
पश्चात् + चक्रवाकेण + आनीय-पश्चाच्चक्रवाकेणानीय
देशः + च + असौ — देशश्चासौ ।
पुनः + अवश्यम् — पुनरवश्यम् ।
यदा + एतत् + निश्चितम् — यदैतन्निश्चितम् ।
७४. ये + अविचार्य — येऽविचार्य
राजादेशः + च + अनतिक्रमणीयः — राजादेशश्चानतिक्रमणीयः ।

यायात् + विषमम्—यायाद्विषमम् ।

७५. कोषात् + न—कोषन्न ।

भृत्येभ्यः + ततः + दद्यात्—भृत्येभ्यस्ततोदद्यात् ।

दासः + तु + अर्थस्य—दासस्त्वर्थस्य ।

अन्यत् + उच्छृङ्खलम्—अन्यदुच्छृङ्खलम् ।

यतः + असौ—यतोऽसौ ।

कः + अपि + अस्मद्दुर्गे—कोऽप्यस्मद्दुर्गे ।

चिरात् + अत्र + आस्ते—चिरादत्रास्ते ।

७६. तथा + अपि + आगन्तुः—तथाप्यागन्तुः ।

कुतश्चित् + देशात् + आगत्य—कुतश्चिद्देशादागत्य ।

ततः + तेन + असौ—ततस्तेनासौ ।

तदा + अस्मत् + वर्तनन्—तदाऽस्मद्वर्तनम् ।

तृतीयः + च — तृतीयश्च ।

मन्त्रिभिः + उक्तम्—मन्त्रिभिरुक्तम्

७७. वचनात् + आहूय—वचनादाहूय ।

विनियोगः + च—विनियोगश्च ।

ब्राह्मणेभ्यः + च—ब्राह्मणेभ्यश्च ।

कः + अत्र—कोऽत्र ।

न + एतत् + उचितम—नैतदुचितम् ।

नगरात् + वहिः + निर्जगाम
नगराद्बहिर्निर्जगाम ।

रोदिषि + इति—रोदिषीति ।

तत्र + उपायः + अपि + अस्ति—तत्रोपायोऽप्यस्ति ।

पुनः + इह + आवासः + भगवत्याः—पुनरिहावासोभगवत्याः ।

७८. इति + उक्त्वा + अदृश्या—अभवत्—इत्युक्त्वादृश्याभवत् ।

परित्यज्य + उत्थाय + उपविष्टौ—परित्यज्योत्थायोपविष्टौ ।

धन्यः + अहम् + एवंभूतः—धन्योऽहमेवंभूतः ।

यदि + एतत् + न—यद्येतन्न ।

७९. स्वशिरः + छेतुम + उल्ला-

सितः—स्वशिरश्छेत्तुमुल्लासितः ।

यदि + अहम् + अनुकम्पनीयः + तदा—यद्यहमनुकम्पनीयस्तदा ।

भगवती + उवाच—भगवत्युवाच ।

माम् + अवलोक्य + अदृश्या + अभवत्—मामवलोक्यादृश्याभवत् ।

का + अपि + अन्या—काप्यन्या ।

कार्यवत् + शास्ति—कार्यवच्छास्ति ।

८०. पुण्यात् + लब्धम्—पुण्याल्लब्धम् ।

तत् + मम + अपि—तन्ममापि ।

चूड़ामणिः + चिरं + आराधितः = चूड़ामणिश्चिरमाराधितः ।

क्षीणपापः + असौ – क्षीणपापोऽसौ ।

ततः + तथा + अनुष्ठिते—ततस्तथानुष्ठिते ।

तत् + अहम् + अपि

एवम्—तदहप्येवम् ।

राजपुरुषैः + ताड़ितः—राजपुरुषैस्ताड़ितः ।

८१. चेत् + चित्रवर्णः + तदा—चेच्चित्रवर्णस्तदा ।

अतः + तस्य + अतस्तस्य ।

किमिति + अस्मदुपेक्षा—किमित्यस्मदुपेक्षा ।

८२. मन्त्रेषु + अनवधानम् — मन्त्रेष्वनवधानम् ।

अस्तु + अयम् –अस्त्वयम् ।

तथा + उपदिश –तथोपदिश

८३. प्रतापात् + एव–प्रतापादेव

कोटिषु + अपि—कोटिष्वपि।

कदाचित् + च – कदाचिच्च ।

चलेत् + लक्ष्मीः—चलेल्लक्ष्मीः ।

सम्यक् + विजयन्ते—सम्यग्विजयन्ते ।

८४. अमात्याः + तावत् + अवश्यं + एव—अमात्यस्तावदवश्यमेव ।

स्यात् + धनदा–स्याद्धनदा

गृध्रम् + उवाच – गृध्रमुवाच ।

८५. उपजापः + चिरारोधः — उपजापश्चिरारोधः ।
अवस्कन्द + तीव्रपौरुषम् — अवस्कन्दस्तीव्रपौरुषम् ।
ततः + अनुदिते + एव — ततोऽनुदितएव ।
चतुर्षु + अपि — चतुर्ष्वपि ।
कुर्यात् + न — कुर्यान्न ।
यावत् + चन्द्रार्कौ — यावच्चन्द्रार्कौ ।
तिष्ठतः + तावत् + विजयताम् — तिष्ठतस्तावद्विजयताम् ।
सत्यम् + एव + एतत् — सत्यमेवैतत् ।
भृत्यः + अपि — भृत्योऽपि ।
८६. युक्तम् + इतः + अन्यतः — युक्तमितोऽन्यतः ।
उदेति + उदीयमाने — उदेत्युदीयमाने ।
रवौ + इव — रवाविव ।
राजपुत्रै + ःउक्तम् — राजपुत्रैरुक्तम् ।
स्वांगेन + आच्छाद्य — स्वांगेनाच्छाद्य ।
८७. अपरम् + अपि + एवं + अस्तु — अपरमप्येवमस्तु ।
८८. श्रुतः + अस्माभिः + श्रुतोऽस्माभिः ।
विचिंत्य + आह – विचिंत्याह
उक्तम् + एव + एतत् — उक्तमेवैतत् ।
कर्मदोषान् + च — कर्मदोषांश्च ।
जानाति + अपण्डितः – जानात्यपण्डितः ।
८९. धीवरैः + आगत्य — धीवरैरागत्य ।
हंसौ + आहतुः — हंसावाहतुः ।
पुनः + तावत् — पुनस्तावत् ।
दृष्टव्यतिकरः + अहम् + अत्र — दृष्टव्यतिकरोऽहमत्र ।
यत् + अत्र + अस्माभिः + अद्य + उषित्वा — यदत्रास्माभिरद्योषित्वा ।
प्रातः + यत् + उचितम् — प्रातर्यदुचितम् ।
यत् + अभावि — यदभावि ।
यथाशक्ति + उत्प्लुत्य – यथाशक्त्युत्प्लुत्य ।

६०. तत् + यथा + अहम् + अन्यत् + इदम् + तद्यथाहमन्यद्इदम् ।

सम्भवति + एषः + उपायः — सम्भवत्येषउपायः ।

नकुलैः + आगत्य—नकुलैरागत्य ।

पश्चात् + तैः + वृत्तम् + आरुह्य—पश्चातैर्वृत्तमारुह्य ।

तत् + आकर्ण्य—तदाकर्ण्य ।

सर्वथा + अत्र + एव—सर्वथात्रैव ।

किम् + अहं + अप्राज्ञः—किमहमप्राज्ञः ।

६१. तथा + अनुष्ठिते—तथानुष्ठिते ।

खादितव्यः + अयम्—खादितव्योऽयम् ।

पश्चात् + धावन्ति—पश्चाद्धावन्ति ।

महत् + एव—आश्चर्यम्—महदेवाश्चर्यम् ।

तदा + अत्र + एव—तदात्रैव

वदन् + एव—वदन्नेव ।

पतितः + तै + व्यापादितः + च—पतितस्तैर्व्यापादितश्च ।

प्रणिधिः + वकः + तत्र + आगत्य + उवाच — प्रणिधिर्वकस्तत्रागत्योवाच ।

युष्माभिः + न—युष्माभिर्न

प्रणिधिः + उवाच =प्रणिधिरुवाच ।

च + उक्तम्—चोक्तम् ।

६२. महर्षेः + तपोवने —महर्षेस्तपोवने ।

विडालः + तम् विडालस्तम

कुक्कुरात् | विभेषि —कुक्कुराद्विभेषि ।

ततः + तेन—ततस्तेन ।

इति + ओलोच्य—इत्यालोच्य ।

६३. पृष्ठः + च--पृष्ठश्च ।

आहारे + अपि + अनादरः —आहारेऽप्यनादरः ।

मत्स्यैः + आलोचितम् — मत्स्यैरालोचितम् ।

कुलीरः + तम + उवाच—

कुलीरस्तमुवाच ।
हतः + अस्मि—हतोऽस्मि ।
तावन्ति—अस्माकम् + उपनेतव्यानि + तावन्त्यस्माकमुपनेतव्यानि ।

६४. तदा + अत्र + एव—तदात्रैव ।
कोपाकुलः + अहम्—कोपाकुलोऽहम् ।
वहिष्कृतः + च—बहिष्कृतश्च ।
इति + अभिधाय—इत्यभिधाय ।
किम् + अस्माभिः + बलदर्पात्—किमस्माभिर्बलदर्पात् ।

६५. सति + अस्माकम्—सत्यस्माकम् ।
अप्रियाणि + आह—अप्रियाण्याह ।
ततः + तयो—ततस्तयोः ।
तौ + अन्यत् + वक्तुकामौ—तावन्यद्वक्तुकामौ ।
कस्य + इयं + आवयोः + भवति—कस्येयमावयोर्भवति ।

६६. प्राक् + एव—प्रागेव ।
कदाचित् + उपसर्पति—कदाचिदुपसर्पति ।
बहुभिः + गुणैः + उपेतः—बहुभिर्गुणैरुपेतः ।
पुनः + आगमिष्यसि—पुनरागमिष्यसि ।
तान् + श्रोतुम् + इच्छामि—ताञ्छ्रोतुमिच्छामि ।

६७. सिद्धिः + च—सिद्धिश्च ।
शक्तिः + च + इति—शक्तिश्चेति ।
दर्पात् । न—दर्पान्न ।
कीदृशः + असौ—कीदृशोऽसौ ।
क्व + अपि + अवलोक्यते—क्वाप्यवलोक्यते ।

६८. महाशयः + असौ—महाशयोऽसौ ।
ग्रामान्तरात् + छागम् + उपक्रीय—ग्रामन्तराच्छागमुपक्रीय ।
केन + अपि + उपायेन—केनाप्युपायेन ।
ब्राह्मणः + अभिहित—ब्राह्मणोऽभिहितः ।

मुहु + निरीक्ष्य — मुहुर्निरीक्ष्य ।

विश्वासितः + च + असौ—विश्वासितश्चासौ ।

ततः + तैः + नीत्वा —ततस्तैर्नीत्वा ।

भूरिवृष्टिकारणात् + च + आहारं + अलभमानाः + ते—भूरिवृष्टिकारणाच्चाहारमलभमानास्ते ।

प्रमत्तः + च + उन्मत्तः—प्रमत्तश्चोन्मत्तः ।

तैः—उक्तम्—तैरुक्तम् ।

कः + अधुना—कोऽधुना—

सर्वनाशः + अयं + उपस्थितः— सर्वनाशोऽयमुपस्थितः ।

अब्रवीत् + च—अब्रवीच्च ।

धृतः + अयम् + अस्माभिः-धृतोऽयमस्माभिः ।

तत् + श्रुत्वा—तच्छ्रुत्वा ।

ततः + असौ—ततोऽसौ ।

१००. यत्नात् + अपि + आहारः + न—यत्नादप्याहारो न ।

भवन्ति + एव—भवन्त्येव ।

कदाचित् + एवम् + उचितम् —कदाचिदेवमुचितम् ।

छागः + तैः + धूर्तैः—नीत्वा छागस्तैर्धूर्तैर्नीत्वा ।

वहेत् + शत्रून् - वहेच्छत्रून्

आहारम् + अपि + अन्वेष्टुम् + अक्षमः—आहारमप्यन्वेष्टुमक्षमः ।

१०१. दुर्दैवात + मया — दुर्दैवान्मया ।

तत्र + आगत्य + उपविष्टाः —तत्रागत्योपविष्टः ।

भूमिः + अद्यः + अपि—भूमिरद्यापि ।

कश्चित् + छायाम् + आश्रित्य—कश्चिच्छायामाश्रित्य

१०२. दुखितः + अपि—दुखितोऽपि ।

दुखम् + एव + अस्ति—दुःखमेवास्ति ।

ततः + असौ + आगत्य—ततोऽसावागत्य ।

परेद्युः + चलितुम् + असमर्थम् — परेद्युश्चलितुमसमर्थम् ।

वहेत्+शत्रून्- वहेच्छत्रून्

कः+अयम् —कोऽयम ।

द्वीपम् +आक्रम्य + अवतिष्ठते — द्वीपमाक्रम्यावतिष्ठते ।

१०४. ततः+तेन — ततस्तेन ।

यावत् +उपसृत्य + अपत्यम — यावदुपसृत्यापत्यम्

यः—अर्थतत्वम् + अविज्ञाय -योऽर्थतत्वमविज्ञाय

१०५. यद्यपि + उपायाः + चत्वारः — यद्यप्युपायाश्चत्वारः ।

विशेषतः×च + अयम्— विशेषतश्चायम् ।

वकेन+आगत्य—वकेनागत्य ।

यतः+असौ —यतोऽसौ ।

कदाचित्+शंका+एव— कदाचिच्छंकैव ।

१०६. तत् + अपि+उच्यताम् — तदप्युच्यताम् ।

सत्कृत्य + आनीय — सत्कृत्यानीय ।

तथापि+अपरम् + अपि +इदम् + अस्तु—तथाप्यपरमपीदमस्तु ।

यावत् +लक्ष्मीः—यावल्लक्ष्मीः ।

तावत् — नारायणेन — तावन्नारायणेन ।

संग्रहः+अयम्—संग्रहो—ऽयम् ।

समास

पृष्ठ १—जान्हवीफेनलेखेव—जान्हव्याः फेनस्य लेखा (षष्ठी तत्पुरुष)। यस्यमूर्ध्नि—यन्मूर्ध्नि (ष० तत्पुरुष)। अनधिगतानि शास्त्राणि यैः अनधिगत शास्त्राः तान् अनधिगत शास्त्रान् बहुव्रीहि। उद्विग्नं मनः यस्य स उद्विग्नमनाः। बहुव्रीहि। मूर्खाणाम् शतम्—मूर्खशतम्। ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ २—नीति शास्त्रस्य उपदेशेन—नीतिशास्त्रोपदेशेन। ष० तत्पुरुष। काञ्चनस्य संसर्गात्—काञ्चन संसर्गात् ष० तत्पुरुष। महान् चासौ पंडितः—महापंडितः। कर्मधारय। प्रासादस्य पृष्टे—प्रासादपृष्टे। ष० तत्पुरुष। काकाश्च कूर्माश्च—काककूर्मौ, द्वन्द्व समास।

पृष्ठ ३—मित्रस्य लाभः—मित्रलाभ ष० तत्पुरुष। वित्तेन हीनाः—वित्तहीनाः तृ० तत्पुरुष। लघु पतनकः नाम यस्य—लघुपतनक नामा, बहुव्रीहि। तण्डुलस्य कणान्—तण्डुलकणान्, ष० तत्पुरुष। कपोतानाम् राजा—कपोत राजः ष० तत्पुरुष। परिवारेण सह—सपरिवारः वहुव्रीहि।

पृष्ठ ४—वृद्धश्चासौ व्याघ्रः—वृद्धव्याघ्र, कर्म धारय। कंकणस्य लोभी—कंकणलोभी, ष० तत्पुरुष। लोभेनाकृष्टः—लोभाकृष्टः, तृ० तत्पुरुष। कुशा हस्ते यस्य—कुशहस्तः, बहुव्रीहि। यौवनस्य दशा—यौवनदशा, ष० तत्पुरुष। गावश्च मानुषाश्च—गोमानुषाः द्वन्द्व।

पृष्ठ ५—गलिता नखा दन्ताश्च यस्य सः—गलित नखदन्तः—

पहले भाग में द्वन्द्व समास दूसरे भाग में बहुव्रीहि है। लोभस्य विरहः—लोभ विरहः। ष० तत्पुरुष। प्रियञ्च अप्रियञ्च प्रियाप्रियम् यस्मिन् प्रियाप्रिये, समाहार द्वन्द्व। सुवर्णस्य कङ्कणं —सुवर्णकंकणम्, ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ ६ - महान् चासौ पंकः—महापंकः। कर्म धारय। वेदस्य अध्ययनं वेदाध्ययनं ष० तत्पुरुष। गगने विहारी—गगनविहारी। स० तत्पुरुष। न विचारितं—अविचारितं। नञ तत्पुरुष। शस्त्र पाणीनां—शस्त्राणि पाणौ यस्य स शस्त्र पाणि बहुव्रीहि।

पृष्ठ ७—परस्य भाग्येन उपजीवी—परभाग्योपजीवी। तत्पुरुष। हेम्नः मृगः—हेममृगः। ष० तत्पुरुष। कार्यस्य विपत्तिः—कार्यविपत्तिः ष० तत्पुरुष। प्रकृत्या सिद्धं—प्रकृतिसिद्धं। तृ० तत्पुरुष। भुवनानां त्रयं—भुवनत्रयं। ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ ८—मत्ताश्च ते दन्तिनः—मत्तदन्तिनः। कर्म धारय। जालस्य अपहारका—जालापहारकाः। ष० तत्पुरुष। मूषिकाणां राजा—भूषिकराजः ष० तत्पुरुष। गण्डक्याः तीरे—गण्डकीतीरे। ष० तत्पुरुष। अवपातस्य भयात्—अवपात भयात्, ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ ९—रोगश्च शोकश्च परितापश्च बंधनञ्च व्यसनञ्च—रोग शोकपरितापवंधनव्यसनानि। इतरेतर द्वन्द्व। अल्पा शक्तिः यस्य सः—अल्पशक्तिः बहुव्रीहि। शक्तिमनतिक्रम्य वर्तते इति—यथाशक्तिः अव्ययीभाव। प्राणस्य व्ययेन—प्राणव्ययेन ष० तत्पुरुष। प्रहृष्टं मनः यस्य सः—प्रहृष्टमनाः बहुव्रीहिः। हृष्टपुष्टानि अङ्गानि यस्य स—हृष्टपुष्टाङ्गः, बहुव्रीहि।

पृष्ठ १०. आश्रितेषु वात्सल्यं यस्य सः—आश्रितवात्सल्यः। बहुव्रीहि। पाशस्य बन्धम् — पाशबन्धम्। ष० तत्पुरुष। सर्वस्य वृत्तान्तस्यदर्शी सर्ववृत्तान्तदर्शी ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ ११. भक्ष्यश्च भक्षकश्च भक्ष्य भक्षकौ। इतरेतर द्वन्द्व। काकेन रक्षितस्य—काकरक्षितस्य। तृ० तत्पुरुष। बन्धुभिः हीनः बन्धुहीनः। तृ० तत्पुरुष। चम्पकस्य वृक्षस्यशाखायाम्— चम्पकवृक्षशाखायाम् ष० तत्पुरुष। वासस्य भूमिः —। वासभूमीः ष० तत्पुरुष। सुबुद्धिः नाम यस्य सः—सुबुर्द्धिनामा। बहुव्रीहि।

पृष्ठ १२. न ज्ञातं कुलं शीलञ्च यस्य, तस्य— अज्ञातकुलशीलस्य। बहुव्रीहि। पक्षिणां शावकाः पक्षिशावकः। षष्ठी तत्पुरुष। भयेन आर्त्ता — भयार्त्ताः। तृ० तत्पुरुष। दीर्घौ कर्णौ यस्य सः— दीर्घकर्णः बहुव्रीहि। भागीरथ्याः तीरे भागीरथीतीरे। ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ १३. गङ्गाया तीरे—गङ्गातीरे। षष्ठी तत्पुरुष। भग्ना आशा यस्य स — भग्नाशः बहुव्रीहि। मांसे रुचोर्यस्य सः— मांसरुचिः बहुव्रीहि।

पृष्ठ १४. तरोः कोटरे—तरुकोटरे। षष्ठी तत्पुरुष। अहः अहः प्रति—प्रत्यहम् अव्ययीभाव। शोकेन आर्त्तः—शोकार्तः। तृ० तत्पुरुष। उदारं चरितं येषां—तेषां—उदारचरितानाम् बहुव्रीहि। शावकानाम् अस्थीनि= शावकास्थीनि। ष० तत्पुरुष। स्नेहस्य अनुवृत्तिः—स्नेहानुवृत्तिः। ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ १५. सस्येन पूर्णम् सस्यपूर्णम्। तृ० तत्पुरुष। मनोरथस्य सिद्धिः—मनोरथसिद्धिः। ष० तत्पुरुष। प्रदोषस्य कालः

प्रदोषकालः । ष० तत्पुरुष । स्नायुभिः निर्मितम्स्नायुनिर्मितम् । तृ० तत्पुरुष । कालस्य पाशः—कालपाशः । ष० तत्पुरुष ।

पृष्ठ १३. मांसस्य अर्थी — मांसार्थी, षष्ठी तत्पुरुष । विश्वासस्य कारणम्—विश्वास कारणम् ष० तत्पुरुष । लगुड़ः हस्ते यस्य स लगुड़हस्तः, बहुव्रीहि । क्षेत्रस्य पतिः— क्षेत्रपतिः, ष० तत्पुरुष । हर्षेण उत्फुल्ले लोचने यस्य सः = हर्षोत्फुल्ललोचनः, बहुव्रीहि ।

पृष्ठ १७. काकस्य शब्दम्—काकशब्दम्, ष० तत्पुरुष । अत्युग्राणि पुण्यानि पापानि च — येषां तेषां अत्युग्रपुण्य पापानां, बहुव्रीहि । पुण्यमेव एकं कर्म येषांतेषां—पुण्यैक कर्मणां बहुव्रीहि ।

पृष्ठ १८. नारिकेलेन समः आकारः येषां ते — नारिकेल समाकाराः, बहुव्रीहि । स्नेहस्य छेदे— स्नेहच्छेदे, ष० तत्पुरुष । धर्मेण आर्तम्—धर्मार्तं, तृतीया तत्पुरुष । अंग, अंगं प्रति—प्रत्यङ्गम् । अव्ययीभाव ।श्रीखण्डस्य विलेपनम्— श्रीखण्ड विलेपनम्, ष० तत्पुरुष ।

पृष्ठ १९. स्थानात् भ्रष्टाः—स्थानभ्रष्टाः, पञ्चमी तत्पुरुष । दंष्ट्रानखलांगूलानि प्रहरणं यस्य स — दंष्ट्रानखलांगूल प्रहरणः, बहुव्रीहि । चिरकालेन उपार्जितः — चिरकालोपार्जितः तृ० तत्पुरुष ।

पृष्ठ २० कारुण्यस्य रत्नाकरः—कारुण्य रत्नाकरः ष० तत्पुरुष मूषिकानां राजा —मूषिक राजः, ष० तत्पुरुष । चित्रग्रीवस्य उपाख्यानं—चित्रग्रीवोपाख्यानं, ष० तत्पुरुष । प्रियश्चासौ सुहृत-प्रिय सुहृत्, कर्मधारय । कथायाः विरक्तः—कथा विरक्तः, पंचमी तत्पुरुष ।

पृष्ठ २१. स्वल्पं बलं यस्य स— स्वल्पबलः, बहुव्रीहि । अर्थस्य उष्मणा —अर्थोष्मणा, ष०त त्पुरुष । न युक्तम् अयुक्तम्, नञ् तत्पुरुष । वृत्तान्तस्य कथनम्—वृत्तान्तकथनम् , ष० तत्पुरुष ।

अर्थस्यनाशम्—अर्थनाशम्, ष० तत्पुरुष । मनसः तापं-मनस्तापं ष० तत्पुरुष ।

पृष्ठ २२. कुसुमस्य स्तवकः कुसुमस्तवकः तस्य =षष्ठी तत्पुरुष । शोकेन निहतः= शोकनिहतः = तृतीया तत्पुरुष । प्राणानां त्यागः प्राणत्यागः= षष्ठीतत्पुरुष । परेषांधनम् परधनं= परधनास्वादनस्य सुखम् परधनास्वादनसुखम्= षष्ठी तत्पुरुष । न जितानि = इन्द्रियाणि येन स अजितेन्द्रियः बहुव्रीहि ।

पृष्ठ २३. करे प्राप्ते, करप्राप्ते =सप्तमी तत्पुरुष । व्याघ्रैः गजेन्द्रैः सेवितम्—व्याघ्रगजेन्द्रसेवितम् = तृतीया तत्पुरुष । स्नेहस्य अनुवृत्या, स्नेहानुवृत्या = षष्ठी तत्पुरुष । काव्य मेव= अमृतम् काव्यामृतम् (कर्म धारय) काव्यामृत्तस्य रसस्य, आस्वादः = काव्यामृतरसास्वादः षष्ठी तत्पुरुष । जरयापरिगतः जरा परिगतः, तृतीया तत्पुरुष ।

पृ० २४. संचय एव शीलं यस्य स संचयशीलः, बहुव्रीहि । मृगाश्च व्याघ्राश्च सर्पाश्च शूकराश्च मृगव्याघ्रशूकराः, इतरेतर द्वन्द्व । संछिन्नः द्रुमः=संछिन्नद्रुम, कर्मधारय ।

पृ० २५. उत्साहेन सम्पन्नम,=उत्साह सम्पन्नम्, तृतीया तत्पुरुष । दृढं सौहृदम्=दृढसौहृदम् = कर्मधारय । निवासस्य हेतोः, निवास हेतोः, षष्ठी तत्पुरुष ।

प० २६. लब्धस्य नाशः लब्धनाशः, षष्ठी तत्पुरुष । श्लाघ्याः गुणः यस्य स श्लाघ्यगुणः बहुव्रीहि । आशायाः अभिभङ्गात् आशाभिभङ्गात् षष्ठी तत्पुरुष । आपदामुद्धरणे क्षमाः, आपदुद्धरण क्षमाः, षष्ठी और सप्तमी तत्पुरुष । भयस्य हेतुः= भयहेतुः, षष्ठी तत्पुरुष ।

पृ० २७. कृतः सम्बन्धः येन स कृतसम्बन्धस्तं कृतसम्बंधम्, बहुव्रीहि । तरोः छायायाम्= तरुच्छायायाम्, षष्ठीतत्पुरुष । जलस्य आशयः जलाशयः जलाशयस्य अन्तरे जलाशयान्तरे षष्ठी तत्पुरुष समास ।

पृ० २८. हितस्यबचनम् हितवचनम्=षष्ठी तत्पुरुष । क्षुत् च पिपासाच ताभ्यां आकुलः क्षुत् पिपासाकुलः=द्वन्द्व और तृतीया समास ।अकृत्रिमं सौहृदम्=अकृत्रिमसौहार्दम्= कर्मधारय संनिहितः अपायः यस्य स सन्निहितापायः, बहुव्रीहि। भयात् त्राणं भयत्राणम्, पञ्चमी तत्पुरुष ।

पृ० २९. चित्राङ्गः च लघुपतनकश्च, चित्राङ्गलघुपतनकौ ताभ्यां, (द्वन्द्व) द्रव्यस्य अभिलाषया आकुला द्रव्याभिलाषाकुला (षष्ठी और तृताया तत्पुरुष) । मृगस्य मांसस्य आर्थिना, मृगमांसार्थिना, षष्ठी तत्पुरुष ।

पृ० ३० विमुक्ता आपदः येषां ते विमुक्तापदः, बहुव्रीहि। राज्ञ पुत्रैः, राजपुत्रैः, षष्ठी तत्पुरुष । सुखं यथा स्यात् तथा, यथा सुखम्, अव्ययी भाव। सुखेन सम्पन्नाः सुख सम्पन्नाः तृतीया तत्पुरुष ।

पृ० ३१. सुहृत्सु भेदः सुहृद्भेदः सप्तमी तत्पुरुष । सुहृदां भेदः सुहृद्भेदः षष्ठी तत्पुरुष । तुल्यः वंशः यस्य स तुल्यवंशः, बहुव्रीहि । अर्थस्य वृद्धिः अर्थ वृद्धिः षष्ठी तत्पुरुष । स्वल्पः व्ययः यस्य सस्वल्पव्ययः, बहुव्रीहिः । महान् चासौ स्नेहः महास्नेहः कर्मधारय ।

पृ०. ३२. जलस्य विन्दूनां निपातेन, जलबिन्दु निपातेन, षष्ठी तत्पुरुष । नानाविधै द्रव्यैः पूर्णम तृतीया तत्पुरुष । पयसां राशौ, पयोराशौ, षष्ठी तत्पुरुष । प्राप्त :

कालः यस्य स प्राप्तकालः--बहुव्रीहि। शराणां शतैः शर शतैः, ष० तत्पुरुषः।

पृष्ठ ३३. स्वभुजाभ्यां उपार्जितस्य राज्यस्य सुखम् स्वभुजोपार्जित राज्य सुखम्--तृतीया ष० तत्पुरुष। विक्रमेण अर्जितं राज्यं तस्य विक्रमार्जितराज्यस्य, बहुव्रीहि। पिपासया आकुलितः—पिपासाकुलितः, तृतीया तत्पुरुष। उदकस्य अर्थी उदकार्थी, ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ ३४. शीतश्च, वातश्च, आतपश्च। शीत वातातपा स्तेषां क्लेशान् शीत वातातप क्लेशान् (प्रथम में द्वंद्व ष० तत्पुरुष) प्रवचनेषु पटुः, प्रवचन पटुः, सप्तमी तत्पुरुष। स्वामिनः चेष्टायाः निरूपणं स्वामि चेष्टानिरूपणं ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ ३५. तस्य गृहस्य द्रव्याणि, तद्गृहद्रव्याणि—ष० तत्पुरुष। मंदः आदरः यस्य स मन्दादरः—बहुव्रीहि समास। स्वामिनः कार्यस्य उपेक्षां स्वामिकार्योपेक्षां—ष० तत्पुरुष।

परश्चासौ लोकः परलोकः, कर्मधारय समास। निद्राया भङ्गस्य कोपात्, निद्राभङ्ग कोपात्, ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ ३६. क्षुधायाः शांतये, क्षुधा शांतये—ष० तत्पुरुष। कृच्छ्रे गतः कृच्छ्र गतः—सप्तमी तत्पुरुष समास। मनुष्याणां लोके, मनुष्य लोके—ष० तत्पुरुष। जीवितस्य फलेन, जीवित फलेन—ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ ३७. अहितहित विचारेण शून्या बुद्धिर्यस्य, तस्य अहिताहित विचार शून्य बुद्धेः बहुव्रीहि। पुरुष एव पशुः पुरुष पशुस्तस्य पुरुषपशोः, कर्मधारय। नेत्रपक्त्र्योः विकारेण—नेत्र वक्त्र विकारेण—ष० तत्पुरुष।

पृष्ठ ३८. दोषस्य भीतेः, दोष भीतेः, षष्ठी तत्पुरुष । अजीर्णस्य भयात्, अजीर्ण भयात्, षष्ठी तत्पुरुष । विद्यया विहीनम् विद्याविहीनम् - तृतीया तत्पुरुष । भूम्याः पतिः भूमिपतिः, बहुवचन में भूमिपतयः ष० तत्पुरुष ।

पृष्ठ ३९. ज्ञानस्य लक्षणम्—ज्ञानलक्षणम्—ष० तत्पुरुष । गुणानां संग्रहः, गुणसंग्रहः ष० तत्पुरुष ।

पृष्ठ ४०. उद्यमे समर्थानां, उद्यम समर्थानाम्—सप्तमी तत्पुरुष । उत्तमाः च मध्यमाः च अधमाः च उत्तम मध्यमाधमाः (इतरेतर द्वंद्व) कनकभूषणस्य संग्रहणे, उचितः कनकभूषण संग्रहणोचितः—तत्पुरुष समास । प्रधानश्चासौ अमात्यः प्रधानामात्यः—कर्म धारय ।

पृष्ठ ४१. प्रधानामात्यस्य पुत्रः प्रधानामात्य पुत्रः, ष० तत्पुरुष । अपूर्वश्चासौ सत्वः अपूर्व सत्वः—कर्मधारय । अपूर्व सत्वेन अधिष्ठितम्—अपूर्वसत्वाधिष्ठितम्, तृतीया तत्पुरुष । भूम्याः त्यागं भूमित्यागम्—ष० तत्पुरुष । आपदेवनिकष आपन्निकषः (कर्मधारय) ।

पृष्ठ ४२. पर्वतस्य कंदरम् पर्वत कंदरम्—ष० तत्पुरुष समास । क्षुद्रः शत्रुः क्षुद्र शत्रुः—कर्म धारय समास । अक्षतानि केसराणि यस्य सोऽक्षत केसरः—बहुव्रीहि । स्वामिनः त्रासः स्वामित्रासः—ष० तत्पुरुष, बलीवर्दस्य नर्दितम्—वलीवर्दनर्दितम—ष० तत्पुरुष । मूषिकस्य शब्दं मूषिकशब्दम् ष० तत्पुरुष ।

पृष्ठ ४३. क्षुधया पीड़ितः—क्षुधा पीड़ितः—तृ० तत्पुरुष । आहारस्य दाने, आहार दाने—ष० तत्पुरुष । देशव्यवहारस्य

अनभिज्ञः देशव्यवहारानभिज्ञः = षष्ठी तत्पुरुष । हस्तिपकेन आहतः हस्तिपकाहतः = तृतीया तत्पुरुषः ।

पृष्ठ ४४. घनस्य ध्वनिम् घन ध्वनिम् = षष्ठी तत्पुरुष । गोमायोः रुतानि गोमायुरुतानि, षष्ठी तत्पुरुष । वानराणां घण्टायाः कथा वानरघण्टा कथा = षष्ठी तत्पुरुष । पाणिभ्यां पतिता, पाणिपतिता, तृतीया तत्पुरुष । नगरस्य जनैः, नगर जनैः, षष्ठी तत्पुरुष ।

पृष्ठ ४५. धनस्य उपचयः धनोपचयः, षष्ठी तत्पुरुष । वानरेभ्यः प्रियाणि फलानि = वानर प्रियफलानि = चतुर्थी तत्पुरुष, प्रिय फलानि कर्मधारय । गणेशादेः पूजायाः गौरवं = षष्ठी तत्पुरुष सर्वेषां जानानां पूज्याः सर्वजन पूज्याः = षष्ठी तत्पुरुष । हतः मृगाः तेषाम् हतमृगाणाम् कर्मधारय ।

पृष्ठ ४६. जगत्यापतेः जगतीपते = षष्ठी तत्पुरुष । कुलस्य आचारैः, कुलाचारैः, षष्ठी तत्पुरुष । धनेन हीनः धनहीनः, तृतीया तत्पुरुष ।

पृष्ठ ४७. प्रमत्तः सचिवः यस्य स प्रमत्तसचिव स्तस्य प्रमत्तसचिवस्य, बहुव्रीहि । जातः स्नेहः, जातस्नेहः कर्मधारय कृष्णाश्वासौ सर्पः कृष्णसर्पस्तं कृष्ण सर्प कर्म धारय । कनकस्य सूत्रेण, कनक सूत्रेण = शष्ठी तत्पुरुष । कोटरे अवस्थितेन, कोटरावस्थितेन, सप्तमी तत्पुरुष ।

पृष्ठ ४८. उत्तरस्य दायकः उत्तरदायकः, षष्ठी तत्पुरुष । मदेन उन्मत्तः मदोन्मत्तः, तृतीया तत्पुरुष । सिंहश्च शशकश्च सिंहशशकौ, तयोः सिंहशशकयोः इतरेतर द्वन्द्व । बहूनां पशूनां घातः बहु पशुघातः, षष्ठी तत्पुरुष । वृद्धः शशकः वृद्धशशक स्तस्य वृद्ध शशकस्य कर्म धारय ।

पृष्ठ ४६. कोपेन आत्तम्=कोपात्तम्=तृतीया तत्पुरुष । गम्भीरः कूपः गम्भीरकूप स्तं गम्भीर कूपम् कर्मधारय। क्रोधेन आध्मातः, इति क्रोधाध्मातः, तृतीया तत्पुरुष । तीर्थस्य शिलाया निहितं तीर्थं शिला निहितम् सप्तमी तत्पुरुष। तरोः कोटरे, तरुकोटरे=षष्ठी तत्पुरुष ।

पृष्ठ ५०. न सदृशः व्यवहारः यस्य सः=असदृश व्यवहारी, बहुव्रीहि । अमात्यानां परित्यागम् अमात्यपरित्यागम्, षष्ठी तत्पुरुष । स्वातंत्रस्य स्पृहया=स्वातंत्र्य स्पृहया=षष्टी तत्पुरुष। स्त्रियाः स्वभावत् स्त्रीस्वभावात् षष्ठी तत्पुरुष । विषेनदिग्धस्य=विष दिग्धस्य=तृतीया तत्पुरुष ।

पृ० ५१. सचिवेन आयत्तां सचिवायत्तां=तृतीया तत्पुरुष । अशैषैः दोषैः दुष्टः=अशेष दोषदुष्टः=तृतीया तत्पुरुष । स्वेदनस्य अभ्यञ्जनस्य च उपारैः स्वेदनाभ्यञ्जनोपायैः, षष्ठी तत्पुरुष ।

पृ० ५२. संजीवकस्य व्यसनेन अर्दितः संजीवकव्यसनार्दितः, षष्ठी, तृतीया तत्पुरुष समास । गुणश्च दोषश्च, गुणदोषौ=इतरेतर द्वंद्व समास। भेदस्य शंकया, भेदशंकया=षष्ठी तत्पुरुष। दृष्ठ दोषः यस्य स दृष्टदोषः= बहुव्रीहि । सर्वाणि अंगानि = सर्वाङ्गाणि तैः सर्वाङ्गैः=कर्मधारय।

पृ० ५३. सामर्थ्यस्यनिर्णय सामर्थ्य निर्णयः = षष्ठी तत्पुरुष । टिट्टिभः च समुद्रः च टिट्टिभ समुद्रौ, तयोः टिट्टिभ समुद्रयोः=इतरेतर द्वंद। आसन्न प्रसवः यस्याः सा आसन्न प्रसवा बहुव्रीहि ।

प० ५४. स्वगृहे अवस्थितः = स्वगृहावस्थितः = सप्तमी तत्पुरुष । तस्य वचनं=तद्वचनं=षष्ठी तत्पुरुष । अंडानांदानाय

अण्डदानाय, ष० तत्पुरुष। दुर्जनानां वागुरासु=दुर्जन वागुरासु ष० तत्पुरुष। मन्दं भाग्यं यस्य स=मंद भाग्य; बहुव्रीहि समास।

पृ० ५५. परलोकस्य अर्थिना = परलोकार्थिना = षष्ठी तत्पुरुष। विकृता बुद्धिः यस्य स=विकृतबुद्धिः, बहुव्रीहि समास। राज्ञः विश्वासः=राज विश्वासः ष० तत्पुरुष। नृणांपतिः=नृपतिः ष० तत्पुरुष।

पृ० ५६. चन्दनस्य पादपः = चन्दनपादपः तस्य, ष० तत्पुरुष। आर्द्रेनयने यस्य स=आर्द्रनयनः, बहुव्रीहि समास। प्रोत्सारितं अर्धं आसनं येन स=प्रोत्सारितार्धासनः, बहुव्रीहि। गाढ़े आलिङ्गने तत्परः—गाढ़ालिङ्गन तत्परः, सप्तमी तत्पुरुष।

पृ० ५७. (१) उन्नतचरणः=उन्नतौ चरणौ यस्य सः बहुव्रीहि। (२) विवृतास्य=विवृत आस्य यस्य स, बहुव्रीहि।

पृ० ५८. राज्य लोभात्=राज्यस्य लोभ=तस्मात्, ष० तत्पुरुष। प्रहृष्टमना=प्रहृष्टं मनः यस्य सः, बहुव्रीहि।

पृ० ५९. कथारम्भकाले=कथायाः आरम्भः। कथारम्भः=कथारम्भस्य कालः=तस्मिन् षष्ठी तत्पुरुष। राजपुत्राः=राज्ञः पुत्राः। तत्पुरुष। अरिमन्दिरे=अरेः मन्दिरं, अरिमंदिरं, तस्मिन्, ष० तत्पुरुष। सुखासीनः=सुखेन आसीनः तृ० तत्पुरुष।

पृ० ६०. पयःपानम्=पयसः पानं, ६तत्पुरुष। अविद्वान्—न विद्वान् अविद्वान् नञ् तत्पुरुष। नभतले=नभसः तलम्, नभस्तलम् =तस्मिन् षष्ठी तत्पुरुष।

पृ० ६१. शीतार्तान=शीतेन आर्ताः शीतार्ताः, तान् ३या तत्पुरुष। उपजातकोपेन=उपजातः कोपः यस्यतेन, बहुव्रीहि।

पृ० ६२. व्याघ्रचर्म्मणा=व्याघ्रस्य चर्म तेन, ष० तत्पुरुष। दीर्घमुखः=दीर्घमुखं यस्य सः बहुव्रीहि। सकोपा=कोपेन सह सकोपाः बहुव्रीहि।

पृ० ६३. तृषार्तः=तृषया आर्तः, ३या तत्पुरुष। निमञ्जनस्थानाभावात्=निमञ्जनस्यस्थानाम्, निमज्जनस्थानम्, तस्य अभावः निमज्जनस्थानाभावः, तस्मात्, ३ तत्पुरुष। पिपासाकुलितेन=पिपासया आकुलितः तेन ३या तत्पुरुष। प्रत्यहम्=अहः अहः प्रति प्रत्यहम् अव्ययीभाव।

पृ० ६४. सरोरक्षकाः=सरसः रक्षकाः सरोरक्षकाः ६ तत्पुरुष। यूथपतिः=यूथस्यपतिः, ६ तत्पुरुष।

पृ० ६५. व्यभिचारविवर्जितम् =व्यभिचारेण विवर्जितः तम् ३या तत्पुरुष। अधीतव्यवहारांगम् =अधीतः व्यवहारस्य अंगः येन तम् बहुव्रीहि। अप्राप्यम् न प्राप्यम् अप्राप्यम् नञ् तत्पुरुष।

पृ० ६६. दशाननः=दश आननानि यस्य सः=बहुव्रीहि। ग्रीष्मसमये=ग्रीष्मस्य समयः, तस्मिन्=६ तत्पुरुष। असहिष्णुः न सहिष्णुः असहिष्णुः नञ् तत्पुरुष।

पृ० ६७. मन्दागतिर्यस्य सः मन्दगतिः=बहुव्रीहि। यथाशक्ति=शक्तिमनतिक्रम्य करोति यथाशक्ति--अव्ययीभाव। समुद्रतीरे=समुद्रस्यतीरम, समुद्रतीरम, तस्मिन्, ६ तत्पुरुष।

पृ ६८. राजद्वारे=राज्ञः द्वारम, राजद्वारम तस्मिन्, ६ ततपुरुष। पृथिवीपतेः=पृथिव्याः पतिः=पृथिवीपतिः, तस्य ६ ततपुरुष। संग्रामविजयः=संग्रामे विजयः, ७ ततपुरुष।

पृ० ६९. अल्पोपायात् = अल्पः उपायः अल्पोपायः, तस्मात्। विशेषणपूर्वपद कर्मधारय। कृतावासे=कृतः आवासः,

कृतावासः तस्मिन् विशेषण पूर्वपदकर्म्मधारय ।

पृष्ठ ७०—दुर्गानुसन्धाने=दुर्गस्य अनुसन्धानम्, तस्मिन् ६ तत्पुरुष । सपरिवारः=परिवारेण सह वर्तमानः सपरिवारः= बहुव्रीहि । द्रव्यसंग्रहः=द्रव्यस्य संग्रहः ६ तत्पुरुष ।

पृष्ठ ७१—असमर्थः=न समर्थः, नञ् तत्पुरुष । विशिष्टवर्णम्=विशिष्टः वर्णः यस्य तम्, बहुव्रीहि । अनभिज्ञेन=न अभिज्ञः अनभिज्ञस्तेन, नञ् तत्पुरुष ।

पृष्ठ ७२—जातिस्वभावात्=जात्याः स्वभावः, जातिस्वभावः, तस्मात् ६ तत्पुरुष । वीर समन्वितः=वीरैः समन्वितः, ३या तत्पुरुष ।

पृष्ठ ७३—दूतमुखः=दूतः मुखं यस्य सः बहुव्रीहि । दृढभक्तयः=दृढा भक्तिर्येषां ते, बहुव्रीहि ।

पृष्ठ ७४—द्विषद् बलम्=द्विषतां बलम, द्विषद्बलम् ६ तत्पुरुष । औषधपरिज्ञानात्=औषध्याः परिज्ञानात् तस्मात् ६ तत्पुरुष । समहीधरम्=महीधरैः सह वर्तमानम् बहुव्रीहि ।

पृष्ठ ७५—अनधिष्ठानम्=न अधिष्ठानम् , नञ् तत्पुरुष । सुखसाध्यम्=सुखेन साध्यम् ३या तत्पुरुष । स्थिरात्मनः=स्थिरः आत्मा यस्य स. स्थिरात्मा, तस्य बहुव्रीहि । पर्वताधित्यकायाम्= पर्वतस्य अधित्यका, पर्वताधित्यका, तस्याम् ६ तत्पुरुष । प्रणिधि प्रहितः=प्रणिधिनां प्रहितः प्रणिधिप्रहितः तेन ३या तत्पुरुष ।

पृष्ठ ७६—अहितः=न विद्यमानं हितं यस्मिन् सः, बहुव्रीहि । दिनचतुष्टयस्य=दिनानां चतुष्टयम् तस्य, ६ तत्पुरुष । अनुपयुक्तः=न उपयुक्तः, नञ् तत्पुरुष ।

पृष्ठ ७७—खड्गपाणिः=खड्गं पाणौ यस्य सः बहुव्रीहि ।

अलङ्कारभूषिता=अलङ्कारैः भूषिता ३या तत्पुरुष ।

पृष्ठ ७८—सानन्दः=आनन्देन सह वर्तमानः, बहुव्रीहि । शोकार्तया—शोकेन आर्ता शोकार्ता, तया ३या तत्पुरुष । गृहीतराजवर्तनस्य=गृहीतं राजवर्तनम् गृहीतराजवर्तनम् तस्य विशेषण पूर्वपद कर्मधारय ।

पृष्ठ ७९—भृत्यवात्सल्येन=भृत्ये वात्सल्यम भृत्यवात्सल्यम् तेन, ७मी तत्पुरुष । धीवरालापाः=धीवराणां आलापः, ६ तत्पुरुष । प्राप्त जीवनः=प्राप्तं जीवनं येन सः, बहुव्रीहि ।

पृष्ठ ८०—क्षीणपापः=क्षीणः पापः यस्य सः बहुव्रीहि । लगुड़हस्तः लगुड़ः हस्ते यस्य सः, बहुव्रीहि । कायाक्लेशेन=कायस्य क्लेशः तेन, ६ तत्पुरुष ।

पृष्ठ ८१—अनादरः=न आदरः अनादरः, नञ्तत्पुरुष । सुखेच्छेद्यः=सुखेन उच्छेद्यः तृतीया तत्पुरुष , दीर्घवर्त्मपरिश्रान्तम्=दीर्घेणवर्त्मना परिश्रान्तम् , ३या तत्पुरुष । अग्निभयसंत्रस्तम्=अग्नेः भयम्, अग्निभयं, अग्निभयेन संत्रस्तम् ६ष्ठी तत्परुष तथा ३ तत्पुरुष । निद्राव्याकुलसैनिकम्=निद्राव्याकुलाः सैनिका-यस्यतम् , ३या तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि ।

पृष्ठ ८२—अविद्वान्=न विद्वान् नञ् तत्पुरुष । प्रज्ञाहीनः=प्रज्ञया हीनः=प्रज्ञाहीनः, ३या तत्पुरुष ! बद्धाञ्जलिः=बद्धाञ्जलिः येन सः बहुव्रीहि ।

पृष्ठ ८३—स्वल्पबलः=स्वल्पं बलं यस्य सः बहुव्रीहि । दानमानाभ्याम्=दानञ्च मानञ्च दानमाने, ताभ्याम् द्वन्द्व ।

पृष्ठ ८४—पवनक्षिप्तः=पवनेन क्षिप्तः ३या तत्पुरुष । दुर्गाश्रयणम् =दुर्गस्य आश्रयणम् दुर्गाश्रयणम् तस्य ६ तत्पुरुष ।

पृष्ठ ८५—अनुदिते=न उदितेः=अनुदितेः तस्मिन् नञ्-

तत्पुरुष । चन्द्राकौं=चन्द्रश्च अर्कश्च तौ चन्द्राकौं द्वंद्व । द्वारवर्त्मना=द्वारस्य वर्त्म, द्वारवर्त्म तेन ६तत्पुरुष । गतायुषि=गतं आयुः यस्य सः गतायुस्तस्मिन् बहुव्रीहि । विद्याधरीपरिवृतः=विद्याधरीभिः परिवृतः ३या तत्पुरुष । त्यक्तजीविताः=त्यक्तम् जीवितम् यैः ते बहुव्रीहि । भर्तृभक्ताः=भर्तुः भक्ताः ६तत्पुरुष ।

पृष्ठ ८७. करितुरंगपत्तिभिः=करयश्च तुरङ्गाश्च पत्तयश्च करितुरङ्गपत्तयस्तैः द्वन्द्व । राजपुत्रैः=राज्ञः पुत्राः राजपुत्राः तैः षष्ठी तत्पुरुष ।

पृष्ठ ८८. कथारम्भकाले=कथायाः आरम्भः कथारम्भः कथारम्भस्य कालः कथारम्भकालः, तस्मिन् ६ तत्पुरुष । निहितसेनयो=निहिता सेना यस्य सः निहितसेनः तयोः बहुव्रीहि । निष्कारणबन्धुः=निष्कारणः बन्धुः निष्कारणबन्धुः कर्मधारय । दुर्बुद्धिः=दुष्टा बुद्धिर्यस्य सः दुर्बुद्धि. बहुव्रीहि ।

पृष्ठ ८६. धीवरालापः=धीवराणां आलापः धीवरालापः ६तत्पुरुषः । अनागतविधाता=न आगतं अनागतम अनागतस्य विधाता ६ तत्पुरुष । अभावि=न भावि अभावि नञ् तत्पुरुष ।

पृष्ठ ६०. शोकार्तानाम्=शोकेन आर्तास्तेषां ६ तत्पुरुष । बकशावकरावः=बकानां शावकः बकशावकः, बकशावकानां रावः बकशावकरावः ६ तत्पुरुष । अप्राज्ञः=न प्राज्ञः अप्राज्ञः नञ् तत्पुरुष ।

पृष्ठ ६१. गोरक्षकाः=गवां रक्षकाः गोरक्षकः ६तत्पुरुष । अनवधानस्य=न अवधानम् अनवधानं तस्य नञ् तत्पुरुष । प्रधानमन्त्रिणा=प्रधानः मन्त्री प्रधान मन्त्री तेन, विशेषणपूर्वपद कर्मधारय ।

पृष्ठ ६२. स्वभावदयात्मना=स्वभावेन दयात्मा तेन ३या तत्पुरुष । नीवारकणैः=नीवाराणां कणाः नीवारकणाः षष्ठी तत्पुरुष ।

पृष्ठ ६३. सामर्थ्यहीन=सामर्थ्येन हीनः सामर्थ्यहीनः ३या तत्पुरुष । वर्तनाभावात्=वर्तनस्य अभावः वर्तनाभावः तस्मात् । षष्ठी तत्पुरुष । मत्स्यकण्टकाकीर्णम्=मत्स्यानां कण्टकाः मत्स्यकण्टकाः मत्स्यकण्टकैः आकीर्णम=मत्स्यकण्टकाकीर्णम् =६ तथा ३ या तत्पुरुष । अनादरः=न आदरः अनादरः नञ् तत्पुरुष ।

पृष्ठ ६४. सक्तुपूर्णः=सक्तुभिः पूर्णः ३ या तत्पुरुष । कोपाकुलः=कोपेन आकुलः=कोपाकुलः ३या तत्परुष ।

पृष्ठ ६५. वर्षाकाले=वर्षायाः काले वर्षाकाले, ६ तत्परुष सुन्दोपसुन्दौ=सुन्दश्च उपसुन्दश्च तौ द्वन्द्व । तुल्यबलौ=तुल्यं वलम् ययोः तौ वहुब्रीहि । रूपलावण्यलुब्धाभ्याम्=रूप लावण्याभ्यां लुब्धौ रूपलावण्य लुब्धौ तौ ३या तत्पुरुष । स्वबललब्धा=स्ववलेनलब्धा स्वबललब्धा ३या तत्पुरुष ।

पृष्ठ ६६. अनार्घः=न आर्घः अनार्घः=नञ् तत्पुरुष । लुब्धजनः=लुब्धः जनः यस्य सः लुब्ध जनः वहुब्रीहि । देव ब्राह्मणनिन्दकः=देवाश्च ब्राह्मणाश्च=देव ब्राह्मणाः तेषां निन्दकाः—देव ब्राह्मणनिन्दकाः द्वन्द्व तथा ६ तत्पुरुष ।

पृष्ठ ६७. अप्रियम=न प्रियम् अप्रियम् । नञ् तत्पुरुष । भूतजयदर्पात्=भूतानां जय भूतजयः भूतजयस्य दर्पः भूतजये । दर्पः=६ तत्पुरुष । तत्रत्यप्रस्ताव=तत्रत्यः प्रस्तावः विशेषण पूर्वपद कर्मधारय । युधिष्ठिरसमः युधिष्ठिरेण समः ३या तत्पुरुष । चक्रवाकसमः=चक्रवांकेनसमः ३ तत्पुरुष ।

पृ० ९८. प्रस्तुतयज्ञः—प्रस्तुतं यज्ञं येन सः बहुव्रीहि। यज्ञ छागः=यज्ञस्य छागः—६ तत्पुरुष । खलोक्तिभिः खलानां उक्तयः=खलोक्तयः, ताभिः ३ तत्पुरुष ।

पृष्ठ ९९. क्षुधार्ता=क्षुधया आर्ताः ३ या तत्पुरुष । त्वरायुक्ताः—त्वरयायुक्ताः ३या तत्पुरुष। शरणागतः=शरणं आगतः शरणागतः २या तत्पुरुष । लब्धः अवकाशः येन सः=बहुव्रीहि ।

पृष्ठ १००. जातविश्वासः=जातः विश्वासः यस्य सः बहुव्रीहि । मन्दभाग्यश्च मन्दं भाग्यं यस्य सः=बहुव्रीहि ।

पृष्ठ १०१. सञ्जात कौतुकः=सञ्जातं कौतुकं यस्य सः वहुव्रीहि । अनित्यम्=न नित्यं अनित्यम् नञ् तत्पुरुष । भूतसमागमः=भूतानां समागमः भूत समागमः ६ तत्पुरुष ।

पृष्ठ १०२. असहिष्णुः=न सहिष्णुः असहिष्णुः नञ् तत्पुरुष । दुखार्तस्य=दुःखेन आर्तस्य दुखार्तस्य ३या तत्पुरुष । शोकाकुलेन=शोकेन आकुलः शोकाकुलः, तेन ३या तत्पुरुष । यथाविधि=अव्ययीभाव । मन्दगतिः=मन्दागति र्यस्य सः बहुव्रीहि ।

पृष्ठ १०३. घनगर्जितम्=घनस्य गर्जितम् ६ तत्पुरुष । सदर्प=दर्पेण सह वर्तमानः बहुव्रीहि । अर्थतत्वम्=अर्थस्य तत्वम् ६ तत्पुरुष ।

पृष्ठ १०४. रक्तविलिप्तमुखः=रक्तेन विलिप्तम, रक्तविलिप्तम् मुखं यस्य सः, ३यातत्पुरुष मिश्रित बहुव्रीहि । अक्रियमाणस्य=न क्रियमाणम् अक्रियमाणम्, तस्य नञ् तत्पुरुष ।

पृ० १०५. अविवेकः=न विवेकः अविवेकः नञ् तत्पुरुष । साध्यसाधने=साध्यस्य साधनम साध्यसाधनम् तस्मिन् ६तत्पुरुष ।

महाशयः=महान् आशयो यस्य सः बहुव्रीहि । मन्दमतीनाम् = मन्दाः मतयः येषाम् ते मन्द मतयः तेषाम् बहुव्रीहि । दुर्जन दूषित मनसः=दुर्जनैः दूषितम्, दुर्जन दुषितम्, दुर्जन दूषितं मनोयेषां ते बहुव्रीहि ३या तत्पुरुष सहित । पायसंदग्धः=पायसेन दग्धः ३या तत्पुरुष ।

पृ० १०६. यथाशक्ति=अव्ययीभाव । चन्द्रमौलि=चन्द्रः मौलौ यस्य सः=बहुव्रीहि । दवदहनसमः=दवदहनेनसमः ३या तत्पुरुष । प्रहृष्टमना=प्रहृष्टं मनो यस्य सः बहुव्रीहि ।

सुभाषित का सरलार्थ

(प्रस्तावना)

१. परिवर्तिनि संसारे मृतः को व न जायते ।
इस परिवर्त्तित संसार में मर कर कौन दुबारा पैदा नहीं होता ।

२. यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ।
यत्न करने पर भी यदि कार्य सिद्ध न हो तो कौनसा दोष है ?

३. न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।
सोते हुए सिंह के मुख में मृग अपने आप नहीं घुसते ।

मित्रलाभ

१. लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ।
मस्तक में बिधाता ने जो लिख दिया है, उसे कौन मेट सकता है ?

२. प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनाः भवन्ति ।
विपत्ति काल के आने पर पुरुषों की बुद्धियां प्रायः मलिन हो जाती हैं ।

३. निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ।
वृक्षरहित देशमें एरंड का पौधा भी वृक्ष माना जाता है ।

४. विपत्काले विस्मयएव कापुरुषलक्षणम् ।
आपत्तिकाल में घबरा जाना ही डरपोक का लक्षण है ।

५. अल्पानामपि वस्तूना संहति कार्य साधिकाः ।
छोटी वस्तुओं का मेल भी कार्य को बनाने वाला होता है ।

६. अज्ञातकुल शीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।
जिसके कुल और स्वभाव का नहीं पता, उसे स्थान न देना चाहिए

७. अहिंसा परमो धर्मः ।
अहिंसा परम धर्म है ।

८. उदार चरितानां वसुधैव कुटुम्बकम् ।
महान चरित्र वालों के लिए सम्पूर्ण भूमि ही परिवार है ।

९. व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ।
व्यवहार से मित्र और शत्रु होते हैं ।

१०. उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायतेकरम् ।
गरम अङ्गारा हाथ को जलाता है, ठंडा होने पर हाथ काला करता है ।

११. सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम् ।
गरम पानी भी आग को बुझाता ही है ,

१२. मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनः ।
सज्जनों के मनमें, वाणी और काम में एक बात होती है

१३. अपरिच्छेदकर्तॄणां विपदः स्युः पदे पदे ।
बिना विचारे काम करने वालों को पद पद में विपत्तियां हैं ।

१४. कृपणस्य धनं याति वह्नितस्कर पार्थिवैः ।
कंजूस का धन या तो जल जाता है, या चोर ले जाते हैं या उसे राजा छीन लेता है ।

१५. सोद्योगं नरमायान्ति विवशः सर्वसम्पदः ।
सब सम्पत्तियां अपने आप उद्योगी पुरुषके पास आती हैं

१६. चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ।
सुख और दुःख पहिये की तरह घूमते हैं ।

१७. सन्तएव सतां नित्यमापदुद्धरणक्षमाः ।
सज्जन ही सज्जनों की आपत्ति को सर्वदा दूर करने के योग्य होते हैं ।

१८. दुर्जनः प्रियावादि च नैतद्विश्वास कारणम् ।
दुर्जन चाहे कितना मीठा बोलने वाला हो, उसका विश्वास न करो ।

१६. आपत्सु मित्रं जानीयात् ।
आफ़तों में मित्र को जाने ।

२०. दुर्जनेन समं सौख्यं प्रीतिं चाऽपि न कारयेत् ।
दुर्जन के साथ मित्रता और प्रेम को कभी न करे ।

२१. साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम् ।
गुस्से हुए हुए भी साधु का मन डांवाडोल नहीं होता ।

२२. सर्वत्राऽभ्यागतोऽतिथिः ।
सभी स्थानों पर अतिथि की पूजा करनी चाहिए ।

२३. तत्सुखं यत्र निर्वृतिः ।
वहीं सुख है जहां सन्तोष है ।

२४. करनिहतकन्दुकसमाः पातोत्पाताः मनुष्याणाम् ।
हाथ से उछाली जाती हुई गेंद के समान मनुष्यों का उत्थान और पतन होता है ।

२५. छिद्रेष्वनर्थाः बहुली भवन्ति ।
एक कष्ट के बाद दूसरे कष्ट आते हैं ।

२६. यदि कार्यविपत्तिः स्यात् मुखरः तत्रहन्यते ।
यदि काम बिगड़ जाए तो बोलने वाला मारा जाता है,

२७. यानि कानि च मित्राणि कर्त्तव्यानि शतानि च ।
कोई हो, मनुष्य को सैंकड़ों मित्र बनाने चाहिएँ ।

२८. परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ,
दूसरों को उपदेश करना सब मनुष्यों को सहज है ।

सुहृद्भेद

१. उपर्युपरि पश्यंतः सर्व एव दरिद्रतः ।
अपने से ऊपर देख कर सब लोग अपने को दरिद्र समझते हैं ।

२. ब्रह्महाऽपि नरः पूज्यायस्यास्ति विपुलं धनं ।
जिस के पास धन है, उस ब्रह्मघातक का भी सत्कार होता है ।

३. जलबिन्दुनिपातेन क्रमश पूर्यते घटः ।
जल की एक एक बूंद के गिरने से धीरे धीरे घड़ा भर जाता है ।

४. अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितम् ।
जाको राखे साइयां ताको मार सकै न कोय ।

५. नाभिषेको न संस्कारो सिंहस्य क्रियते मृगैः ।
जंगली पशुओं ने सिंह का न तो राज्यतिलक किया, न संस्कार किया है ।

६. सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।
सेवाधर्म बड़ा कठिन है, जो तपस्वी योगियों से भी नहीं होता ।

७. पृष्टतः सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम् ।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोककामयया ॥
पीठ के बल धूप खाये, पेट के बल अग्नि तापे, स्वामी की सब प्रकार से और परलोक की बिना कपट से सेवा करनी चाहिए ।

८. जठरः कोन विभर्त्ति केवलम् ।
केवल पेट कौन नहीं भर लेता ।

९. सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वांछति जनः सत्त्वानुरुपंफलम् ।
सब प्राणी क्लेश को सह कर भी अपने पराक्रम के अनुसार फल चाहा करते हैं ।

१०. काकोऽपि जीविति चराय बलिञ्च भुंक्ते ।
कौआ भी देर तक जीता है और बलि खाता है ।

११. लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टतान्येव नर नयन्ति ।
मनुष्य को अपने कार्य ही बड़प्पन को या नीचपन को पहुंचाते हैं ।

१२. अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः ।
पण्डित बिना कहे मन की बात का अनुमान कर लेता है ।

१३. प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च य पार्श्वतो वसति तं परिवेष्टयन्ति ।
राजा, स्त्री और वेल ये बहुधा जो पास होता है, उसी का आश्रय लेते हैं ।

१४. अधः कृतस्यापि तनूनपातो नाधः शिखा याति कदाचिदेव ।

जैसे नीचे की ओर की गई भी अग्नि की ज्वाला कभी नीचे नहीं जाती, ऊपर ही जाती है।

१५. स्थान एव नियोज्यन्ते भृत्याश्चाभरणानि च।

सेवक और आभरण अपने स्थानों पर ही लगाये जाते हैं।

१६. बालादपि गृहीतव्यं युक्तमुक्तं मनीषिभिः।

पण्डितों को भी बालक से योग्य बात ग्रहण करनी चाहिए।

१७. अनुहुंकुरुते घनध्वनि न हि गोमायुरुतानि केसरी।

सिंह मेघ की गर्जना को सुन हुंकार कर गर्जता है न कि गीदड़ के चिल्लाने को सुनकर।

१८. महान्महत्येव करोति विक्रमम्।

बड़ा बड़े ही पर विक्रम दिखाता है।

१९. धनहीनः स्वपत्न्याऽपित्यज्यते, किं पुनः परैः।

धनहीन को उसकी स्त्री भी छोड़ देती है, फिर दूसरों की क्या कहे।

२०. उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः।

उपाय से जो कुछ हो सकता है, वह पराक्रम से नहीं हो सकता।

२१. मतिरेव बलाद् गरीयसि।

भैंस से अक्ल बड़ी। बल से बुद्धि बड़ी है।

२२. बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्?

जिस को बुद्धि है उसको बल है, निर्बुद्धि को बल कहां से आवे।

२३. कुर्वन्नपि व्यलीकानि यः प्रियः प्रियः एव स।

बुराइयाँ करता हुआ भी जो प्यारा है, सो प्यारा ही है।

२४. निश्शंकं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम्।

मनुष्य तेज हीन राख के ढेर में निडर हो कर पैर रखता है।

२५. नष्टापि भूमि सुलभा न भृत्याः।
भूमि नष्ट हुई भी सहज में मिल जाती है, परन्तु सेवक नहीं मिलते।

२६. को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेन यातः पुमान्।
कौन पुरुष दुर्जनों के फन्दे में पड़ कर सकुशल आया है।

कहानी-सारांश

मित्रलाभ

कंकण के लोभी पथिक की कथा

एक बूढ़ा बाघ एक तालाब के किनारे नहा धोकर बैठा यात्रियों को कह रहा था—अरे यात्रियो! इस सोने के कंकण को ले लो। उस समय लोभ के वशीभूत हो किसी यात्री ने सोचा—यद्यपि यह हिंस्र पशु है, फिर भी शायद यह दान दे रहा हो, अतः विश्वास करने में कोई डर नहीं है उसने बाघ से कहा—कि तुझ हिंसक स्वभाव वाले वन्य पशु में विश्वास कैसे किया जाए।

तो उस कपटी बाघ ने उत्तर दिया—कि यह सत्य है कि मैं युवावस्था में नीच था। मैंने अनेकों गौओं और मनुष्यों की हत्या की है, परन्तु अब तो मेरी स्त्री और बच्चे मर चुके हैं। इस पाप का प्रायश्चित किसी ने यह बताया है कि मैं दान करूँ। सो तुम पास वाले तालाब में स्नान करके इस दान को ले सकते हो।

यात्री ने उस पर विश्वास कर ज्योंही कपड़े उतार कर तालाब में स्नान करने के लिये प्रवेश किया, तो वहां दलदल में फंस गया और बाघ द्वारा मारकर खा लिया गया।

काक रक्षित मृग की कथा

मगधदेश की चम्पकवती नाम की बनस्थली में बड़ी देर से कौआ और हरिण मित्र बनकर रहते थे। एक दिन उस हृष्ट पुष्ट हरिण को किसी गीदड़ ने देख कर सोचा—कि यदि इसका ताजा मांस खा सकूँ तो बड़ा अच्छा होगा। यह तभी हो सकता है कि यदि मैं इससे कपट रूप में मित्रता करूँ। वह हरिण के पास गया और कहने लगा—कि—"मैं यहां किसी भी मित्र के बगैर रहता हुं, परन्तु आज मैं तुम्हें मित्र बनाना चाहता हूं।" हरिण ने उसको मित्रवत् मान लिया। जब दोनों सुबुद्धि कौए के पास गये तो उसने कहा — कि मित्र नवागत को इतनी शीघ्रता से मित्र न बनाना चाहिये" परन्तु हरिण ने उसकी बात न मानी। गीदड़ उसे एक अनाज से भरे खेत में ले जाता रहा। एक दिन किसान ने तंग आकर जो जाल लगाया तो हरिण उस में फंस गया। उस ने गीदड़ से जाल को काटने को कहा, तो गीदड़ ने आनाकानी की। पीछे कौआ उसे ढूँढता हुआ आया तो उसने कहा कि तुम मरे से पड़े रहना और मेरे इशारा करने पर उठकर भाग जाना। सबेरे प्रसन्नचित किसान ने उस हरिण को मरा समझ जाल का फंदा छुड़ा आप जाल समेटना जो शुरु किया, तो कौवे का इशारा पाकर हरिण भाग गया हरिण को लक्ष्य बांध जो डंडा किसान ने फैंका, उससे मांस का लोभी पास ही में छिपा हुआ गीदड़ मारा गया।

जरद्गव गिद्ध की कथा

गंगातट पर गृध्रकूट पर्वत में पर्कटी के वृक्ष पर बूढ़ा गिद्ध रहता था, जिस को वहाँ रहने वाले पक्षी अपने भोजन में से थोड़ा थोड़ा अंश दे देते थे, बदले में गीध उन के बच्चों की रखवाली का काम करता था।

एक दिन एक चालाक बिल्ला पक्षियों के बच्चों को खाने के लिए पेड़ पर चढ़ा, तो पक्षियों के बच्चों ने शोर मचाया। गीध ने कहा—कौन है ? तो भागने में असमर्थ बिल्ले ने मौत को सम्मुख देख सोचा—कि डर कर क्या करना ? उस कपटी ने कहा—मैं एक भक्त हूँ जो नित्य प्रतिगङ्गा में स्नान कर निरामिष भोजी होकर चान्द्रायण मास के कठोर व्रत का पालन करता हूँ। सभी पक्षी मेरा आदर करते हैं। मैंने आप जैसे बृद्ध धर्मात्मा की प्रसिद्धि सुनी; सो आप का उपदेश सुनने चला आया हूँ।

इस प्रकार विश्वास दिला कर तरुकोटर में रहने लगा और नित्यप्रति पक्षियों के बच्चों को पकड़ कर वहां खाने लगा। जिन पक्षियों के बच्चे मारे गए थे, वे खूब रोये पीटे, पीछे उन्होंने फैसला किया 'कि इस खाने वाले का पता लगाया जाए'। बिल्ले ने जब यह सुना, तो जंगल में भाग गया। पक्षियों ने तरुकोटर में बच्चों की हड्डियां देख बूढ़े गीध को ही हिंसक समझ कर जान से मार डाला।

संचय शील गीदड़ की कथा

कल्याण कटक बस्ती में रहने वाले भैरव नाम के बहेलिये ने एक दिन विध्याटवी में शिकार खेलते समय हरिण को मारा। हरिण को वह पीठ पर लाद कर ले जा रहा था तो उसे सामने

से एक भयानक सूअर जाता दिखाई दिया। उसने हरिण को नीचे रख कर धनुष साध कर बाण से सूअर को मारा, परन्तु मरते हुए सूअर ने भी गुस्से में उस की कमर में इतनी ज़ोर से पंजा मारा कि वह वहीं गिर कर मर गया। इन दोनों के नीचे आ कर एक सांप भी मर गया। वहां एक दीर्घराव नाम का गीदड़ आया, उसने सोचा—"मेरे तीन महीने अच्छी तरह गुज़रेंगे। एक महीना मनुष्य के मांस को खा कर, दो महीने, सूअर और हिरण के मांस को खा कर तथा एक दिन सांप को खाकर आराम से गुज़रेगा। परन्तु आज इस निःस्वादु धनुष की डोरी को खाकर ही गुज़ारा करता हूँ।"

यह सोचकर यों ही धनुष की डोरी को तोड़ने लगा तो धनुष उछल कर उस के पेट में लगा, जिस से उस का पेट फट गया और वह मर गया।

कौआ, कछुआ, हरिण, चूहे की कथा

गोदावरी के तट पर शीशम के पेड़ पर एक लघुपतनक कौआ रहता था। उसने देखा कि व्याध ने कुछ चावल के दाने बिछा कर जाल बिछाया, तो कपोतराज चित्रग्रीव ने आकाश में अपने दल के साथ उन दानों को देखा। उसके दल के लोगों ने राजा के हटाने पर भी लोभ किया, और सभी दानों के लालच में जाल में फँस गए। पीछे कपोतराज के कहने से सभी जाल उड़ा कर दूसरे जंगल में गए और वहां हिरण्यक चूहे ने सभी के जाल को काट दिया। इस दृश्य को देख लघुपतनक ने हिरण्यक के साथ मित्रता की।

पीछे वे दोनों इस बन में गुज़ारा न देख कर दण्डकारण्य

कर्पूर गौर तालाब में रहने वाले मन्थर नाम कछुये के पास जाकर सानन्द रहने लगे। एक दिन वहाँ चित्राङ्ग नाम का हरिण डरता हुआ भागा आया, परन्तु वह खतरे से बाहिर हो चुका था। उस को भी उन्होंने मित्र बनाया। परन्तु उसने बताया "कि रुक्माङ्गद नाम का राजकुमार दिग्विजय के निमित्त यहाँ कर्पूरसर में डेरा डालेगा" तो सभी ने यहाँ से चलने की ठानी।

मार्ग में धीरे धीरे चलते हुए मन्थर कछुये को किसी बहेलिये ने पकड़ कर धनुष की डोरी से बाँध लिया और घर की ओर चल दिय। सो सभी मित्र बड़े दुःखी हुए। हिरण्यक ने उपाय सुझाया—कि मन्थर को छुड़ाने का एक ही उपाय है। इस पास वाले तालाब के समीप हरिण मरा सा पड़ जाए और कौवा उसे चोंच से खरोचे। तो हरिण का लोभी यह शिकारी कछुए को छोड़ इधर जायगा, तो मैं मन्थर के बन्धनों को काट दूंगा"। उन्होंने ऐसा ही किया। जब शिकारी हरिण के पास गया, तो हरिण दौड़ गया, इधर हिरण्यक के पाश काटने पर मन्थर तालाब में घुस गया और चूहा बिल में घुस गया। बहेलिया पछतावा करके चला गया। और इधर यह मित्र सानन्द रहने लगे।

प्रथम आदर्श पत्र पृष्ठ १ से ३० तक (मित्रलाभ प्रकरण)

अङ्क ७५

१. निम्ननिर्दिष्ट उदाहरणों में से किन्हीं चार का अर्थ लिखो।

(क) अथकदाचिदवसन्नायां रात्रावस्ताचल चूड़ावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतांतमिव द्वितीयमायान्तं व्याधमपश्यत् । तमवलोक्याचिन्तयत् अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनं जातम् । न जाने (तत्) किमनभिमतं दर्शयिष्यति । इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः ।

(ख) ततो हिरण्यकः कपोतावपातभयच्चकितस्तूष्णीं स्थितः। चित्रग्रीव उवाच—सखे हिरण्यक । किमस्मान्न संभाषसे । ततोहिरण्यक स्तद्वचनं प्रत्यभिज्ञाय स संभ्रमं वहिर्निसृत्याब्रवीत्। आः पुण्यवानस्मि। प्रियसहृन्मे चित्रग्रीवः समायातः पाशबद्धांश्चैतान् दृष्ट्वा सविस्मयः क्षणं स्थित्वोवाच—सखे ! किमेतत् । चित्रग्रीवोऽवदत्—सखे ! अस्माकं प्राक्तनजन्मकर्मणः फलमेत्तत्।

(ग) अथ कदाचिद्दीर्घकर्णनामा मर्जारः पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्रागतः। तत्रस्तमायांतं दृष्ट्वा पक्षिशावकैर्भयार्तैः कोलाहलः कृतः। तच्छ्रुत्वा जरद्गवेनोक्तम—कोऽयमायाति। दीर्घकर्णो गृध्रमवलोक्य सभयमाह—हाहतोऽस्मि। अधुनास्य संनिधाने पलायितुमक्षमः । तद्यथा भवितव्यं तद् भवतु । तावद् विश्वासमुत्पाद्यास्य समीपमुपगच्छामि।

(घ) जम्बुको मुहुर्मुहुः पाशं विलोक्याचिन्तयत्—दृढ़स्तावदयं बन्धः ब्रूते च सखे। स्नायुनिर्मिता ऐते पाशाः तदद्य भट्टारक वारे कथमेतांदन्तैः स्पृशामि। मित्र ! नान्यथा मन्तव्यम्, प्रभाते यत्त्वया वक्तव्यं तन्मयाकर्तव्यमेव, इत्युक्त्वा तत्समीप आत्मानमाच्छाद्यस्थितः।

(ङ) वायसोऽवदत्—सखे मन्थर ! सविशेषपूजामस्मै विधेहि। यतोऽयं पुण्यकर्मणा धुरीणः कारुण्यरत्नाकरो हिरण्यकनामा मूषिकराजः। एतस्य गुणस्तुतिं जिह्वासहस्रद्वयेनापि सर्पराजः कदाचित् कथयितुं समर्थः स्यात्" इत्युक्त्वा चित्रग्रीवोपाख्यानं वर्णितवान्।

(च) हिरण्यको ब्रूते चित्राङ्गो जलसमीपं गत्वा मृतमिवात्मानं दर्शयतु। काकश्च तस्योपरि स्थित्वा चञ्चवा किमपि विलिखतु। नूनमनेन लुब्धकेन तत्र कच्छपं परित्यज्य मृगमांसार्थिना सत्वरं गन्तव्यम्। ततोऽहम् मन्थरस्य बंधनं छेत्स्यामि। संनिहिते लुब्धके भवद्भ्यां पलायितव्यम्॥

६, ६, ६, ६

२. निम्ननिर्दिष्ट श्लोकों में से केवल चार का अर्थ लिखो।

(क) न धर्म्मशास्त्रं पठतीति कारणम्,
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः॥
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते।
यथा प्रकृत्या मधुरं गवांपयः॥

(ख) स हि गगन विहारी कल्पमध्वंसकारी।
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी॥
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणासौ।
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः॥

(ग) विपदि धैर्य्यमथाभ्युदयेक्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्

(घ) संलापितानां मधुरैः वचोभिः ।
मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम ॥
आशावतां श्रद्दधतां च लोके ।
किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति ॥

(ङ) दरिद्रयाद् ह्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्वात परिभ्रश्यते ॥
निःसत्वः परिभूयते, परिभवान्निर्वेदमापद्यते ॥
निर्विण्णः शुचमेति, शोक निहतो बुद्धया परित्यज्यते ।
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥

(च) श्लाध्यः स एको भूवि मानवानाम् ।
स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः ॥
यस्यार्थिनो वा शरणागता वा ।
नाशाभिभङ्गाद् विमुखाः प्रयान्ति ॥ ४, ४, ४, ४

३. अधोनिर्दिष्ट पदों का अर्थ लिखो ।
सन्दर्श्य । स्तब्धीकृत्य । संदध्यात । वहिर्निसृत्य । सविशेषपूजाम् ।
अप्रतिहता । कुसरितः । पुण्यपरम्परया । ८

४. जरद्गवगृध्र की कथा लिखो ।
सञ्चय करने वाले शृगाल की कथा लिखो । ६

५. निम्ननिर्दिष्ट में केवल चार का प्रकरण निर्देश पूर्वक भावार्थ लिखो ।

१. अनिष्टादिष्टलाभेऽपि शुभागतिर्न जायते ।
२. स एव प्राप्त कालस्तु पाशबन्धं न पश्यति ।
३. योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम् ।
४. उष्णो दहति चङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ।
५. अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् । ३, ३, २, ३,

६. मित्र कितने प्रकार का है ।

अथवा

मित्र के दूषण कौन से हैं ।

७. अर्थ लिखो ।

(क) यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

(ख) परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

द्वितीय आदर्श पत्र पृष्ठ ३१ से ५८ तक

(सुहृद्भेद में से)

अङ्क ७५

१. अधोनिर्दिष्ट में केवल चार का अर्थ लिखो।

(क) यतो लब्धुमनिच्छतोऽनुद्योगादर्थस्य प्राप्तिरेव न। लब्धस्याप्यरक्षितस्य निधेरपि स्वयं विनाशः। अवर्धमानश्चार्थः काले स्वल्प व्ययोऽप्यञ्जनवत्क्षयमेति। अनुपभुज्यमानश्च निष्प्रयोजन एव सः।

(ख) तच्छ्रुत्वा पानीयमपीत्वा सचकितः परिवृत्य स्वस्थानमागत्य किमिदमित्यालोचयन्नेवायं तूष्णीं स्थितः। स च तथाविध करटक दमनकाभ्यामस्य मन्त्रि पुत्राभ्यां शृगालाभ्यां दृष्टः। तं तथाविधं दृष्ट्वा दमनकः करटकमाह—सखे करटक किमित्ययमुदकार्थी स्वामी पानीयमपीत्वा सचकितो मन्दं मन्दमवतिष्ठते।

[ग) भद्र ! मम नियोगस्य चर्चा त्वया न कर्तव्या। त्वमेव किं न जानासि। यथाहमस्याहर्निशं गृहरक्षां करोमि। यतोऽयं चिरान्निवृतो ममोपयोगं न जानाति। तेनाधुनापि ममाहारदाने मंदादरः। यतो बिना विधुरदर्शनं स्वामिन उपजीविषु मन्दादरा भवन्ति।

(घ) भद्रमुक्तं त्वया ! किंत्वेतद्रहस्यं वक्तुं कश्चिद्विश्वासभूमिर्नास्ति। तथापि निभृतं कृत्वा कथयामि। शृणु सम्प्रति वनमिदमपूर्व सत्वाधिष्ठितम्। अतोऽस्माकं त्याज्यम्। अनेन

हेतुना विस्मितोऽस्मि । तथा च श्रुत स्त्वयापि अपूर्वः शब्दो महान् । शब्दानुरूपेणास्य प्राणिनो महता बलेन भवितव्यम् ।

(ङ) यद्यपि राजविश्वासो न कथनीयस्तथापि भवानस्मदीय प्रत्ययादागतः मया पर लोकार्थिनावश्यं तव हितमाख्येम् । शृणु ! अयं स्वामी तवोपरि विकृतबुद्धिः रहस्युक्तवान् ! "सञ्जीवकमेव हत्वा स्वपरिवारं तर्पयामि" । ६, ६, ६, ६.

२. अधोनिर्दिष्ट में से किन्हीं चार का सरल हिन्दी में अर्थ लिखो ।

(क) अरक्षितं तिष्ठति दैव रक्षितम् ।
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ॥
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः ।
कृत प्रयत्नो ऽपि गृहे न जीवति ॥

(ख) मौनान्मूर्खः प्रवचनपटु वातुलो जल्पको वा ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः ॥
धृष्टः पार्श्वे वसति नियतं दूरतश्चाप्रगल्भः ।
सेवा धर्मः परमगहनो योगिनामप्यमम्यः ॥

(ग) यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै ।
विज्ञान विक्रमयशोभिरभग्नमानम् ॥
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
काकोऽपिजीवति चिराय बलिं च भुक्ते ॥

(घ) आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यम् ।
विद्याविहीनमकुलीनमकसंगतं वा ॥
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदाः लताश्च ।
यः पार्श्वतोवसति तं परिशोष्टयन्ति ॥

(ङ) अवज्ञानाद् राज्ञो भवति न समीपे परिजनः ।
ततस्तत्प्रामाण्याद् भवति न समीपे बुधजनः ।।
बुधैस्त्यक्ते राज्ये न हि भवति नीतिर्गुणवती ।
विपन्नायां नीतौ सकलमवशं सीदति जगत् ।। ४,४,४,

३. अधोलिखित पदों का अर्थ लिखो ।

वचनीयता । कृत प्रयत्नः । सचकितः । दुःखीयति । वाजि
वारण वाहिनी । अस्मिन्नियोगः । सत्वानुरुपम् ! परेङ्गित
ज्ञानफलाः । अनुजानीहि । अनुजीविना । ८

४. अर्थ लिख कर सम्बन्ध रखने वाली कथा लिखो ।
शब्दमात्रान्न भेतव्यमज्ञात्वा शब्दकारणम् ।
शब्दहेतुं परिज्ञाय कराला गौरवं गता ।।

अथवा

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
पश्य सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ।। ६

५. अधोनिर्दिष्ट में से केवल चार की प्रकरण निर्देश पूर्वक व्याख्या करो ।

(क) अलब्धं चैव लिप्सेत् लब्धं रक्षेदवेक्षया ।

(ख) पृष्ठतः सेबयेदर्कं जठरेण हुताशनम् ।

(ग) सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येब पाबकम् ।

(घ) चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ।

(ङ) न बन्धुमध्ये धनहीन जीबनम् । ३,३,३,३,

६. करटक ने सेबाधर्म के बिरुद्ध क्या विचार प्रकट किये ?

अथवा

दमनक ने किस प्रकार सञ्जीवक तथा पिङ्गलक में विरोध उत्पन्न किया ? इस को विस्तार से वर्णन करो । ५

७. अर्थ लिखो ।

पुनरपि जननं, पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनम्
इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपयापारे पाहि मुरारे ॥

अथवा

अयमेव ईश्वर इति वा भगवान् इति वा प्रसिद्धः ।
एष एव विश्वं रचयति, पालयति, संहरति च ।
भक्ता एव चैनं पश्यन्ति ॥

तृतीय आदर्शपत्र (पृ० ५९ से ८७ तक) अंक ७५

(विग्रह प्रकरण में से)

१. अधोनिर्दिष्ट पद्यों में से केवल चार का अर्थ लिखो—

(क) न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः ।
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मं न सो यत्र न सत्यमस्ति,
सत्यं न तद् यच्छलमभ्युपैति ॥

(ख) न साहसैकांतरसानुवर्तिना,
न चाप्युपायोपहतांतरात्मना ।
विभूतयः शक्यमवाप्तुमूर्जिता-
नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदा ॥

(ग) मुदं विषादः शरदं हिमागमः ।
तमो विवस्वान्सुकृतं कृतघ्नता ॥
प्रियोपपत्तिः शुचमापदं नयः,
श्रियं समृद्धामपि हन्ति दुर्नयः ॥

(घ) यः काकिनी मप्यपथप्रपन्नाम्,
समुद्धरेन्निष्क सहस्रतुल्याम् ।
कालेषु कोटिष्वपि मुक्तहस्तः,
तं राजसिंह न जहाति लक्ष्मीः ॥

(ङ) यदि समर मपास्य नास्ति मृत्यो-
र्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः,
किमिति मुधा मलिनंयशः क्रियते ॥ ४, ४, ४, ४,

२. निम्ननिर्दिष्ट में से केवल चार का अर्थ लिखो—

(क) तदा मयोक्तन्—कर्पूर द्वीपस्य राजचक्रवर्तिनो हिरण्यगर्भस्य राजहंसस्यानुचरोऽहम् । कौतुकादेशान्तरं द्रष्टुमागतोऽस्मि । एतच्छ्रुत्वा पक्षिभिरुक्तम् । अनयोर्देशयोः को देशो भद्रतरो राजा च । मयोक्तम् आः ! किमेवमुच्यते । महदन्तरम् । यतः कर्पूरद्वीपः स्वर्ग एव । राहंसश्च द्वितीयः स्वर्गपतिः । अत्रमरुस्थले पतिता यूयं कि कुरुथ अस्मद्देशे गम्यताम् ।

(ख) इत्युक्त्वा सर्वे मां चंचुभिर्हत्वा सकोपा ऊचुः—पश्य रे मूर्ख, स हंसस्तव राजा मृदुः तस्य राजयेऽधिकार एव नास्ति । यत एकान्ततो मृदुः करतल गतमप्यर्थं रक्षितुमक्षमः । कथं स पृथवीं शास्ति ? राज्यं वा तस्य किम् ? त्वं च कूपमण्डूकः तेन तदाश्रयमुपदिशसि ।

(ग) कदाचिद् वर्षास्वपि वृष्टेरभावत्तृषार्तो गजयूथो यूथपतिमाह नाथ ! कोऽभ्युपायोऽस्माकं जीवनाय। अस्त्यत्र क्षुद्रजन्तुनां निमज्जनस्थानम् । वयं तु निमज्जनस्थानाभावादन्धा इव। क यामः कि कुर्मः ?

ततो हस्तिराजो नातिदूरं गत्वा निर्मलं ह्रदं दर्शितवान् । ततो दिनेषुगच्छत्सु तत्तीरावस्थिता गजपादाहतिभिश्चूर्णिताः क्षुद्रशशकाः ।

(घ) एवमुक्तवति दूते यूथपतिर्भयादिदमाह— इदमज्ञानतः कृतम् । पुनर्न कर्तव्यम् ।

दूत उवाच—यद्येवं तदत्र सरसि कोपात्कम्पमानं भगवन्तं शशाङ्क प्रणम्य प्रसाद्य च गच्छ ।

ततो रात्रौ यूथपतिं नीत्वा जले चञ्चलं चन्द्रबिम्बं दर्शयित्वा यूथपतिः प्रणामं कारितः । उक्तंच तेन देव ! अज्ञानादनेनापराधः कृतः । ततः क्षम्यताम् । नैवं वारान्तरं विधास्यते । इत्युक्त्वा प्रस्थापितः ।

(ङ) ततो विषण्णान् शृगालानवलोक्य केनचिद् वृद्ध शृगालेनैतत् प्रतिज्ञातम् । मा विषीदत । यदनेनानभिज्ञेन नीतिविदोमर्मज्ञा वयं स्वसमीपाद् दूरीकृताः तद्यथायं नश्यति तथा विधेयम् । यतोऽयं व्याघ्रादयो वर्णमात्रविप्रलब्धाः शृगालमज्ञात्वा राजानमिमं मन्यन्ते । तद् यथायं परिचितो भवति तथा कुरुत् ।

(च) अथ प्रणिधि प्रहितश्चरो हिरण्यगर्भ समीपमागत्योवाच देव ! समागतप्रायो राजा चित्रवर्णः । सम्प्रति मलय पर्वताधित्यकायां समवासितकटको वर्त्तते । दुर्गशोधनं प्रतिक्षणमनुसंधातव्यम् । यतोऽसौगृध्रो महामन्त्री । किञ्च केनचित् सह तस्य विश्वासकथाप्रसङ्गे नैवर्तादिङ्गितमवगतं मयायदनेन कोऽप्यस्मद्दुर्गे प्रागेव नियुक्तः । ६, ६, ६, ६.

३. अथ लिखोः—

प्रस्थितः । विग्रहोत्साहः । उपगम्य । दिन चतुष्टयस्य । सुनिभृतम् । तद्विनियोगः । उल्लासितः । द्वारवर्त्मना । ८

४. वीरवर की कथा अपने शब्दों में लिखो—

अथवा

नीलवर्ण शृगाल की कथा सरल हिन्दी में लिखो—

५. पूर्वापर सम्बन्ध प्रदर्शित करते हुए केवल चार का भावार्थ लिखोः—

(क) पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विष वर्धनम् ।

(ख) सेवितव्यो महावृक्षः फलच्छाया समन्वितः ।

(ग) हसन्नपिनृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः ।

(घ) उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा ।

(ङ) निक्षिप्तं हि मुखे रत्नं न कुर्यात प्राणधारणम् । ३,३,३,३.

६. राजा को कैसा मन्त्री बनाना चाहिए ।

अथवा

राजा किस प्रकार सेना को व्यूह के रूप में बना कर आक्रमण करे ।

७. अर्थ लिखो—

(क) कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ ।
कश्चाहं का च मे शक्तिः इति चिन्तयतः, सुखम् ॥

(ख) कोकिलानां स्वरोरूपम् स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम् ।
विद्या रूपं कुरूपाणाम्, क्षमारूपं तपस्विनाम् ॥ ४

चतुर्थ आदर्शपत्र (पृ० ८८ से १०६ तक) अङ्क ७५

(सन्धि प्रकरण में से)

१. अर्थ लिखो

(क) वित्तं यदा यस्य समं विभक्तं, गूढ़श्चरः सन्निभृतश्च मन्त्रः ।
न चाप्रियं प्राणिषु योब्रवीति, स सागरान्तं पृथ्वीं प्रशास्ति ॥

(ख) न भू प्रदान न सुवर्णदानं न गोप्रदानं न तथान्न दानम् ।
यथावदन्तीह महाप्रदानं सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ॥

(ग) वनेऽपिदोषाः प्रभवन्ति रागिणां ।
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रिय निग्रह स्तपः ॥
अकुत्सिते कर्म्मणि यः प्रवर्तते ।
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

(घ) आत्मा नदी संयम पुण्यतीर्था ।
सत्योदका शीलतटाद योर्मिः ॥
अकुत्सिते कर्म्मणि यः प्रवर्तते ।
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

(ङ) सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुतेहि विमृश्य कारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

४, ४, ४, ४, ४,

२. अर्थ लिखो ।

(क) आवाभ्यां नीयमानं त्वामवलोक्य लोकैः किञ्चिद्वक्तव्यमेव । तदाकर्ण्य यदि त्वमुत्तरं दास्यसि तदात्वन्मरणम् । तत्सर्वथात्रैव स्थीयताम् । कूर्म्मोवदति किमहमज्ञः । नाहमुत्तरं दास्यामि । न किमपि वक्तव्यम् ।

(ख) एतच्छ्रुत्वा स व्याघ्रोऽचिन्तयत् -यावदनेन मुनिना स्थीयते तावदिदं मे स्वरूपाख्यानमकीर्तिकरं न पलायिष्यते, इत्या,

लोच्य मूषिकस्तं मुनिं हन्तुः गतः। ततो मुनिना तज्ज्ञात्वा "पुनर्मूषिकोभव" इत्युक्त्वा मूषिक एव कृतः।

(ग) शृणु देव। किमस्माभिर्बलदर्पाद् दुर्गं भग्नम्? तव प्रतापाधिष्ठितेनोपायेन? राजाह भवतामुपायेन। गृध्रोब्रूते यद्यस्मद्वचनं क्रियते, तदा स्वदेशे गम्यताम्। अन्यथा वर्षाकाले प्राप्ते पुनर्विग्रहे सत्यस्माकं परभूमिष्ठानां स्वदेशगमनमपि दुर्लभं भविष्यति। सुखशोभार्थं सन्धाय गम्यताम्। दुर्गं भग्नम्। कीर्तिश्चलब्धा। मम सम्मतं तावदेतदेव।

(घ) अथ प्रणिधिरागत्योबाच देव! श्रूयतां तत्रत्य प्रस्तावः। एवं तत्र गृध्रेणोक्तम्—देव! यन्मेववर्णस्तत्र चिरमुषितः। से वेत्ति कि सन्धेयगुण युक्तो हिरण्यगर्भो नवा? इति। ततोऽसौ राज्ञा तमाहूय पृष्टः—वायस! कीदृशोऽसौ हिरण्यगर्भः? चक्रवाकोमन्त्री वा कीदृशः? वायस उवाच देव? हिरण्यगर्भो राजा युधिष्ठिरससो महाशय;। चक्रवाकसमो मन्त्री न काप्यवलोक्यते। राजाह यद्येवं तदा कथमसौ त्वया वञ्चितः?

(ङ) अलमुत्तरोत्तरेण, यथाभिप्रेतमनुष्ठीयताम्। एतन्मन्त्रयित्वा गृध्रो महामन्त्री "तत्र यथार्हं कर्तव्यम्, इत्युक्त्वा दुर्गाभ्यन्तरं चलितः। ततः प्रणिधिबकेनागत्य राज्ञो हिरण्यगर्भस्य निवेदितम्—देव! सन्धि कर्तुं महामन्त्री गृध्रोऽस्मत्समीपमागच्छति। राजहंसो ब्रूते—मन्त्रिन्! पुनः अभिसन्धिना केनचिदत्रागन्तव्यम्। सर्वज्ञो विहस्याह—देव! न शङ्कास्पदमेतत्—यतोऽसौ महाशयो दूरदर्शी। ४, ४ ४, ४, ४,

३. ब्राह्मण नकुल अथवा सुन्दोपसुन्द की कथा में से एक कथा विस्तार से लिखो।

४. प्रकरण निर्देश पूर्वक अपने शब्दों में भाव प्रदर्शित करो।

(क) यदभावि न तद्भावि भावि चेन्नतदन्यथा।
(ख) उपकर्त्राऽरिणा सन्धिर्न मित्रेणोपकारिणा।
(ग) विश्वास प्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता।
(घ) स्वामिमूला भवन्त्येव सर्वाः प्रकृतयः खलु।
(ङ) समागमाः सापगमा; सर्वमुत्पादि भङ्गुरम्।

३, ३, ३, ३, ३,

५. वे कौन से हैं जिन के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिये।

अथवा

कपिल नामक स्नातक ने कौण्डिन्य को क्या उपदेश दिया? उसका सार अपने शब्दों में वर्णन करो। ६

६. अन्वय पूर्वक अर्थ लिखो।

दुःखितोऽपि चरद्धर्म्मं यत्र कुत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्म्मकारणम्॥

७. अर्थ लिखो।

(क) गेयम् गीतानामसहस्रम्, ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जननिकटे चित्तम्, देयं दीनजनाय च वित्तम्॥
(ख) भजगोविन्दम्, भज गोबिन्दम् गोविन्दंभज मूढ़मते।
प्राप्तेहि संनिहिते मरणे, नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे॥ ४

मुद्रकः—सी. डी. शर्मा, मैनजिंग डारैक्टर, भारत प्रिंटिङ्ग प्रैस,
रेलवे रोड जालन्धर शहर।
प्रकाशकः—सरदारी लाल जैन, आवां दी हट्टी माई
हीरां गेट, जालन्धर शहर